CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3568

2.1 VHP

अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियाँ

•

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
३५६८
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियाँ

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, साहित्याचार्य
एम. ए., पी-एच. डी.

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक : ३२७
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण : जुलाई १९७२
मूल्य : चौदह रुपये

अपभ्रंश भाषा और साहित्य की
शोध-प्रवृत्तियाँ
(शोध-अध्ययन)
डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

©
BHARATIYA JNANPITH
3620/21, Netaji Subhash Marg, Delhi-6

Price : Rs 14.00

APABHRAṀSHA BHASHA AUR SAHITYA KI SHODH PRAVRITTIYAN :
RESEARCH-STUDY : DR. DEVENDRA KUMAR SHASTRI

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय आर्यभाषाओं

के

अध्येताओं, जिज्ञासुओं, पाठकों

तथा

अनुसन्धित्सुओं को

उन की

रुचि-सम्पन्नता के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

FOREWORD

The importance of the study of Apabhraṃśa and its literature for the comprehension of the development of the Indo-Aryan languages and their literature's is an established fact. At the same time the need for tools to undertake such studies has often been expressed. The appearance of Dr. Devendra Kumār Śāstrī's work begins to answer that need. The first chapter provides an excellent historical survey of Apabhraṃśa scholarly activity linguistic and literary; the subsequent chapters contain bibliographies of publications—books as well as articles—and descriptive lists of manuscripts including the names of the collections where they repose. Dr. Śāstrī in so many words reports the work done, the work in progress, and meticulously describes the data available, pin-pointing their location. What more is required than enthusiastic pursuit ? Indological scholarship established and neophyte are in Dr. Śāstrī's debt.

—*Ernest Bender*

Professor, Indo-Aryan
Languages & Literatures,
University of Pennsylvania;
Editor, Journal of the
American Oriental Society.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक

अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अनुशीलन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से ही नहीं, अध्ययन-क्रम में भी प्राकृत भाषा और उस के साहित्य के अध्ययन के साथ आरम्भ हुआ। इस के अध्ययन का इतिहास लगभग डेढ़ सो वर्षों का है। सन् १८३६ में आधुनिक युग में सर्वप्रथम होएफर ने 'डे प्राकृत डिआलेक्टो लिब्रिदुओ' नामक जरमन भाषा में प्रकाशित अपने अध्ययन से प्राकृत भाषा की अध्ययन-दिशा को प्रशस्त किया था। तब से आज तक देश-विदेशों में विभिन्न विद्वानों के द्वारा जो अध्ययन-अनुशीलन किया गया, उस से केवल इस भाषा और साहित्य के नये आयाम ही उद्घाटित नहीं हुए, वरन् शोध तथा अनुसन्धान के भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं। अपभ्रंश के सम्बन्ध में प्राचीनों और नवीनों की जो भ्रान्त धारणाएँ तथा मान्यताएँ थीं उन के परिमार्जन के लिए यह अनुसन्धानमूलक साहित्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। यद्यपि अभी तक कतिपय विद्वान् उन पुरानी भ्रान्त धारणाओं से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाये, किन्तु अब इस विपुल साहित्य को देख कर उन की धारणा बदलेगी, ऐसी आशा है।

इस पुस्तक में सन् १८३६ से ले कर १९७०–७१ तक अपभ्रंश भाषा और साहित्य विषयक प्रकाशित शोध निबन्धों, पुस्तकों तथा प्रबन्धों के विवरण के साथ भारत के विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची एवं उपलब्ध अपभ्रंश-साहित्य के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी दी गयी है। सभी विवरण ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत किया गया है। अभी तक किसी भी भाषा में अनुसन्धान की दृष्टि से इस प्रकार का कार्य नहीं किया गया। यद्यपि प्राच्य-विद्याओं की शोध-पत्रिकाओं, परिषदों के विवरण तथा वार्षिकी आदि में इस प्रकार की सूचनाएँ एवं विवरण प्रकाशित किये जाते रहे हैं, किन्तु समग्र रूप में किसी एक साहित्य से सम्बन्धित सभी प्रकार की प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत करने वाली कोई पुस्तक इस के पूर्व आज तक नहीं लिखी गयी।

इस में लगभग आठ सौ प्रकाशित शोध निबन्धों, प्रबन्धों और पुस्तकों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न भण्डारों में उपलब्ध अपभ्रंश के डेढ़ सौ कवियों की लगभग तीन सौ रचनाओं की एक सहस्र हस्तलिखित प्रतियों का विवरण संकलित किया गया है। अधिकतर विवरण स्वयं ग्रन्थ-भण्डारों को देख कर तथा हस्तलिखित रचनाओं को पढ़ कर तैयार किया गया है। इस कार्य में लेखक को पर्याप्त श्रम और लगभग सात वर्षों का समय भोगना पड़ा है। परिणामतः अपभ्रंश भाषा और साहित्य पर अब तक शोध-कार्यों के विवरण के अतिरिक्त अपभ्रंश के अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों के अंश भी प्रकाशित किये जा रहे हैं। अपभ्रंश के अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों में उन रचनाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के वे अंश भी उद्‌धृत किये गये हैं, जो किन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु जयपुर और दिल्ली से प्रकाशित अपभ्रंश के प्रशस्ति-संग्रह में प्रकाशित नहीं हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में अपभ्रंश शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। अपभ्रंश से हमारा अभिप्राय एक ओर प्राकृत का पल्ला (आँचल) पकड़ कर विकसित होने वाली किंचित् प्राकृतमिश्रित तथा शुद्ध अपभ्रंश भाषा से है, दूसरी ओर अपभ्रंश के मूल रूप का त्याग किये बिना आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की अवस्था में ढलती हुई पुरानी हिन्दी, जूनी गुजराती, प्राचीन राजस्थानी, तथा प्राचीन बांग्ला एवं मराठी भाषा से है। प्रायः सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की यह एक सामान्य अवस्था थी, इस लिए प्रान्त-भेद से नाम-भेद हो सकता है, परन्तु अवस्था-भेद नहीं था। यह केवल आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के सम्बन्ध में ही सत्य नहीं है, प्रत्युत प्राचीनतम आर्य-ईरानी भाषाओं की भी एक ऐसी सामान्य अवस्था रही है, जिस से विकसित हो कर बोली जाने वाली प्राकृतों तथा देशी एवं वैदिक भाषा–(साहित्यिक भाषा) का विकास हुआ था। इस लिए परम्परा के रूप में हमें आज भी वैदिक शब्द-सम्पत्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार यह विवरण केवल अपभ्रंश और हिन्दी को ही ध्यान में रख कर नहीं, वरन् आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं और उन के साहित्य को ध्यान में रख कर प्रस्तुत किया गया है। इस लिए यह पुस्तक केवल अनुसन्धाताओं के लिए ही नहीं, प्रत्युत समस्त भारतीय आर्यभाषाओं और उन के साहित्य-प्रेमी पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक के लिखने में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ भेज कर डॉ. एच. सी. भायाणी जी ने जो सहायता प्रदान की, उस के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल का भी आभार मानता हूँ, जिन्होंने प्रकाशित होने वाली हस्तलिखित ग्रन्थ-सूचियों के उपयोग करने की सुविधा प्रदान की। पं. भँवरलाल जी पोल्याका का सदा कृतज्ञ रहूँगा, जिन्होंने पाटोदी मन्दिर के नष्टप्राय सभी हस्तलिखित ग्रन्थों को दिखाने का सहयोग प्रदान किया। डॉ. भोगीलाल जे. संडेसरा, डॉ. उमाकान्त प्रे. शाह और अगरचन्द नाहटा का भी आभार है, जिन सब ने सामग्री संकलित करने में मुझे बराबर सहयोग दिया। पेनीसिलवानिया के भारोपीय भाषा और साहित्य के प्रोफ़ेसर वेन्डर का भी कृतज्ञ हूँ—अपने विचार लिख कर देने के लिए भाई डॉ. गोकुलचन्द जी का असीम आभार—जिन की प्रेरणा आदि से अन्त तक ग्रन्थ-रचना के साथ सम्बद्ध है।

पुस्तक के प्रकाशन में ज्ञानपीठ के अधिकारियों ने जिस रुचि और तत्परता का परिचय दिया है वास्तव में उस से उन के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

देवेन्द्रकुमार शास्त्री

श्रुतपंचमी,
२९ मई, १९७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

प्रथम अध्याय : अपभ्रंश भाषा और साहित्य का शोध-सर्वेक्षण १–६६

अपभ्रंश भाषा १

प्राकृत ३; संस्कृत-विकृति बनाम प्राकृत ५; अपभ्रंश क्या है ८; प्राकृत अपभ्रंश नहीं है ९; अपभ्रंश और देशी ११; अपभ्रंश और अवहट्ठ १८; आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ २०।

अपभ्रंश साहित्य का प्रारम्भिक काल २२

अपभ्रंश : काव्यभाषा २४; अपभ्रंश साहित्य का काल-विभाजन २८; प्राकृत का कथा-साहित्य ३२; अपभ्रंश कथाकाव्य ३४; अपभ्रंश चरितकाव्य ३५; अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य ३६; अपभ्रंश के खण्डकाव्य ३७; अपभ्रंश का रासा-साहित्य ३८; अपभ्रंश के रूपककाव्य ३९; अपभ्रंश के सन्धिकाव्य ४०; स्फुट रचनाएँ ४१।

प्राच्य विद्याओं का अध्ययन ४२

प्राकृत के पाणिनि ४७; अपभ्रंश साहित्य के प्रथम अन्वेषक ४९; अपभ्रंश साहित्य का सम्पादन-काल ५३; भाषाविषयक अनुशीलन ५५; अपभ्रंश-साहित्य में शोध-कार्य ५७; प्रगति की दिशा में ५९; अपभ्रंश तथा जैन साहित्य के अध्ययन-केन्द्र ६१; अपभ्रंश में शोध की दिशाएँ ६२; वर्तमान और भविष्य ६५।

द्वितीय अध्याय : अपभ्रंश विषयक प्रकाशित शोध-निबन्ध, पुस्तकें तथा प्रबन्ध ६७–११२

अपभ्रंश विषयक प्रकाशित शोध-निबन्धों, पुस्तकों तथा प्रबन्धों की सूची ६७

तृतीय अध्याय : अपभ्रंश के हस्तलिखित ग्रन्थ ११३–१७६

विभिन्न भण्डारों में प्राप्त अपभ्रंश के हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण ११३

चतुर्थ अध्याय : उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य १७७–१९०

अपभ्रंश का उपलब्ध साहित्य १७७

पंचम अध्याय : अपभ्रंश के अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों के अंश १९१–२३२

परिशिष्ट

१. संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कतिपय अपभ्रंश पद्य २३३–२३६
२. प्राकृत साहित्य में उपलब्ध कतिपय अपभ्रंश पद्य २३७–२३८
३. अपभ्रंश के शिलालेख २३९–२४८
४. अपभ्रंश गद्य २४९
५. विशिष्ट शोध-निबन्धों तथा पुस्तकों की सूची २५०–२५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम अध्याय

अपभ्रंश भाषा और साहित्य का शोध-सर्वेक्षण

अपभ्रंश भाषा

भाषावैज्ञानिकों ने भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के तीन स्तरों का निर्देश किया है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार ये तीन स्तर हैं—प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत तथा तृतीय प्राकृत। प्राकृत का अर्थ है—नैसर्गिक एवं अकृत्रिम भाषा।[1] प्राकृत जनसाधारण की बोली अथवा बोलियों को कहा जाता था। शताब्दियों तक आर्य-भाषा इसी नाम से प्रचलित रही है। अतएव प्रथम स्तर की प्राकृत के अन्तर्गत प्राचीन वैदिक मन्त्रों की उन ऋचाओं की परिगणना की जाती है, जिन की भाषा वैदिक युग में जनसाधारण की थी। वस्तुतः साहित्यिक भाषाओं का विकास तत्कालीन बोलियों के आधार पर हुआ है। इस लिए यह स्वाभाविक ही था कि परवर्ती वैदिक साहित्य में साहित्यिक सौष्ठव तथा कृत्रिमता परिलक्षित होती।

आदि काल से ही प्राकृत भाषाओं की जड़ें जनता की बोलियों के भीतर जमी हुई हैं।[2] यद्यपि आज उस बोलचाल की प्राकृत का मूल रूप नहीं मिलता, क्योंकि बोली जाने वाली भाषा सदा विकासशील रहती है और बोल-चाल की भाषाओं में बहुत कम साहित्य लिखा गया है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन से यह भली भाँति सिद्ध हो चुका है कि प्राकृत संस्कृत का विकृत रूप नहीं है। जो लोग 'प्रकृतिः संस्कृतम्' कह कर उस से उत्पन्न होने वाली प्राकृत का निर्वचन करते हैं उन का अभिप्राय उस साहित्यिक प्राकृत से होता है, जिस का 'मॉडल' (आकार-प्रकार) संस्कृत-व्याकरण की समता में प्रस्तुत किया गया, और जिस का व्याकरण सदा संस्कृत-व्याकरण को ध्यान में रख कर लिखा गया है। इतना ही नहीं, प्राकृत भाषा को वैयाकरणों ने संस्कृत के आधार पर समझाया है, इस लिए प्राकृत के नियम संस्कृत के व्याकरण के आधार पर बने और यह निर्देश किया गया कि जहाँ संस्कृत में यह विभक्ति होती है, उस के स्थान पर प्राकृत में यह अमुक विभक्ति हो जाती है।

साहित्यिक प्राकृतों का भी एक आदर्श स्तर रहा है, जिस के प्रमाण प्राचीन अभिलेखों में मिलते हैं। यद्यपि प्राचीन समय में प्राकृत राजसभा की भाषा थी और

---

१. ग्रियर्सन, सर जॉर्ज अब्राहम, अनु. डॉ. उदयनारायण तिवारी : भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड १, भाग १, पृ. २३६-३७।

२. पिशेल, रिचर्ड, अनु. डॉ. हेमचन्द्र जोशी : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ. १४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिन्ध से ले कर मध्य देश तथा मगध तक बोली जाती थी, किन्तु समय-समय पर अन्य भाषाओं का प्रभाव भी इस पर अपना पानी चढ़ाता रहा। जब से प्राकृत में साहित्यिक रचना आरम्भ हुई, तभी से यह संस्कृत की प्रतिस्पर्धा में आ गयी और संस्कृत के समानान्तर ही इस का साहित्यिक विकास होने लगा। परन्तु कालान्तर में जन-भाषा से इस का सम्पर्क हटता ही गया। यहाँ तक कि भाषा को कृत्रिम एवं साहित्यिक बनाने के लिए अनेक संस्कृत शब्दों को विकृत कर उन का प्रयोग भरती के शब्दों के साथ किया गया। वास्तव में भाषा शब्द का प्रयोग कालान्तर में साहित्यिक भाषा के लिए किया गया। भारतीय आर्यभाषा का सर्वप्राचीन यह रूप ऋग्वेद में लक्षित होता है। इसे एक प्रकार की साधुभाषा भी कहा गया है। प्रो. एण्टोने मैलेट ने ऋग्वेद की भाषा का मूल आर्यभाषी प्रदेश की एक पश्चिमी बोली को ही बताया है। उन के अनुसार मूल वैदिक भाषा में ईरानी की भाँति केवल 'र' ध्वनि ही थी।[१] अवेस्ता और वैदिक भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रमाणित हो चुका है कि वैदिक भाषाओं का समय ई. पू. २००० से प्राचीनतर नहीं हो सकता।[२] अतएव भाषा-विकास के स्तर की प्रथम अवस्था का समय ई. पू. २,००० से ६०० ई. पू. माना जा सकता है।

ई. पू. आठवीं शताब्दी के लगभग ही भाषा की वह संक्रमणशील अवस्था परिलक्षित होने लगती है, जिस में साहित्यिक भाषा विभिन्न बोलियों के सम्पर्क में आने लगती है तथा उत्तरीय जनों की बोली को आदर्श माना जाने लगता है। भाषा का प्रवाह मूलतः जनबोलियों के संगम से विकसित हुआ और इस लिए परवर्ती संस्कृत रचनाओं में इतना अन्तर बढ़ता गया कि बाद में यह समझना भी एक प्रकार से कठिन सा हो गया कि संस्कृत वैदिक भाषा से विकसित हुई है। न जाने भाषागत कितने संक्रमण इस काल ने देखे और परिणामतः जब बोलियों को महत्त्व प्रदान किया गया तो पालि और प्राकृत जैसी भाषाएँ साहित्यिक आदर्श के रूप में अवस्थित हो गयीं। यही वह समय था, जब कि भ्रमणशील अन्य जातियों की भाँति व्रात्य वैदिक परम्पराओं से हट कर जिस भाषा का जैसा प्रयोग करते थे, वह सामाजिकों को मान्य था। यद्यपि वे वैदिक धर्म में दीक्षित नहीं थे, किन्तु दीक्षा पाने वालों की भाँति भाषा बोलते थे।[३] बोलचाल की यह भाषा वैदिक काल में आम जनता की भाषा थी, जो कुछ बातों में संहिताओं की साहित्यिक भाषा से भिन्न थी।[४] वेदों में अधिकतर शिष्ट भाषा को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु अनायास ही कुछ बोलियों के रूपों का भी समावेश हो गया है। यह भी कहा जाता है कि भारत में आर्यों के विस्थापित होने के अनन्तर भारतीय आर्य भाषा का विकास तीव्र गति से हुआ। वैदिक युग में बोलियाँ अत्यन्त विकसित हो चली थीं। विभिन्न जातियों के सम्पर्क से विविध बोलियों

---

१. द्रष्टव्य है—डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ. ६३।
२. वहीं, पृ. ७०। ३. वहीं, पृ. ७१।
४. सरकार, दिनेशचन्द्र : ए ग्रामर ऑव द प्राकृत लैंग्वेज, भूमिका पृ. १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में समावर्तन हुआ और परिणामतः साहित्य की भाषा को शिष्ट रूप देना पड़ा। अतएव यथार्थ में आर्यबोली के स्वरूप का पता ऋग्वेद से नहीं चलता।[1] यह बात अवश्य है कि जिस रूप में वेदों की भाषा आज हमारे सामने है, निश्चित ही उस का मूल रूप उस से पुराना रहा होगा। क्योंकि विभिन्न पीढ़ियों के परिवर्तन से ध्वनि-विषयक कुछ न कुछ परिवर्तन आ ही जाते हैं। यद्यपि मन्त्रोच्चार की विधि अत्यन्त पवित्र और सुरक्षात्मक रूप में रही, किन्तु निश्चित ही मूल भाषा इस से भिन्न रही होगी।[2] भाषा-विकास के इतिहास में एक समय ऐसा भी आता है, जब वेदों की भाषा को समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है। वह केवल पुरोहित वर्ग तक सीमित हो जाती है। किन्तु वैदिक बोलियों का प्रवाह रुकता नहीं है, वह सब कुछ समेट कर शिष्ट और सामान्य जीवन के दो तटों के बीच अबाध गति से विकसित धाराओं में सतत वृद्धिगत होता रहता है। इन्हीं बोलियों की विकसित अवस्था से प्राकृत भाषा का जन्म हुआ।

प्राकृत

तीर्थंकर महावीर और भ० गौतमबुद्ध की भाषा वर्तमान में ज्यों की त्यों नहीं मिलती है, किन्तु अशोक के शिलालेखों (२५० ई. पू.) तथा पालि साहित्य के कुछ प्राचीन अंशों में उपलब्ध होती है। प्राकृत के विकास की चार अवस्थाएँ कही गयी हैं। प्राचीनतम प्राकृत—अशोक के अभिलेख, जो पश्चिमी (शौरसेनी) तथा पूर्वी (मागधी) प्राकृतों में निबद्ध हैं। डॉ. चटर्जी ने बुद्ध के समय की उदीच्य, मध्य-देशीय तथा प्राच्य विभाग की तीन प्रादेशिक बोलियों का उल्लेख किया है। इन के अतिरिक्त ई. पू. तीसरी शताब्दी की खोतन प्रदेशीय भारतीयों की पश्चिमोत्तरी गान्धारी प्राकृत तथा ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग की तुर्किस्तान की निय प्राकृत एवं ई. पू. छठी शताब्दी के मध्य की काठियावाड़ से सोलोन पहुँचायी गयी प्राकृत विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[3] इस देश में ईसा पूर्व शताब्दी में मुख्य रूप से भारतीय आर्यबोलियों के चार विभाग प्रसिद्ध थे—(१) उदीच्य (उत्तरी-पश्चिमी बोली), (२) प्रतीच्य (दक्षिणी-पश्चिमी बोली), (३) प्राच्य-मध्य (मध्यपूर्वी बोली) तथा (४) प्राच्य (पूर्वी बोली)। अशोक के शिलालेखों तथा पतंजलि के महाभाष्य के उल्लेखों से भी यह प्रमाणित होता है।[4]

विकास की दूसरी अवस्था में प्रथम ईसवी के लगभग के पंजाब से खोतान में ले जाये गये धर्मपद के अंश तथा मध्य एशिया के खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए अभिलेख (निय प्राकृत) एवं उत्तर-पश्चिम भारत के खरोष्ठी अभिलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन के अतिरिक्त अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत भी इसी युग की देन है। अश्वघोष की

---

१. पण्डित, डॉ. प्रबोध बेचरदास : प्राकृत भाषा, पृ. १४।
२. देखिए, भारत का भाषा-सर्वेक्षण, पृ. २२५।
३. चाटुर्ज्या, डॉ. सुनीतिकुमार : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ. ८३।
४. सेन, डॉ. सुकुमार : ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑव मिडिल इण्डो-आर्यन, पृ. ७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत बोलचाल के अधिक निकट है। भरतमुनि ने नाटक में वर्णित विभिन्न पात्रों की बोली को भाषा कहा है, न कि प्राकृत। वस्तुतः अश्वघोष की भाषा, भास के नाटकों के कुछ प्राकृत अंश तथा भरत मुनि की नाटचगीतियाँ संस्कृत के शास्त्रीय (क्लैसीकल) नाटकों से पूर्व की है।[1] यही नहीं, लोकनाटच पहले प्राकृत में लिखे जाते थे और अभिनीत किये जाते थे। अभिनय केवल आम जनता की भाषा में हाव-भावों के द्वारा किया जाता था। अतएव भरतमुनि ने भी उस का विधान किया है।[2] भरतमुनि के समय में हिमालय, सिन्ध तथा उत्तर-पश्चिम पंजाब से ले कर गुजरात तक सामान्य रूप से एक ही बोली प्रचलित थी, जो जातीय संस्कार, भौगोलिक प्रभाव तथा उच्चारण आदि के भेद से कालान्तर में निरन्तर कई रूपों में विकसित होती रही और जातिभाषा के रूप में इस युग में आ कर संस्कृत तथा प्राकृत प्रतिष्ठित हो गयी।[3] यद्यपि संस्कृत भाषा साहित्य में मुख्य थी और प्राकृत गौण, किन्तु जन-सामान्य की समझ संस्कृत से परे थी। भारत की जनता अपनी बोलियों में ही माता की गोद से समझती-सोचती आ रही है। शिष्ट जन उस युग में भी संस्कृत के पक्षपाती थे, क्योंकि वह संस्कारयुक्त भाषा थी।

प्राकृत की साज-सँभाल तो बहुत हुई, पर उस का संस्कार कभी नहीं हो सका। वास्तव में बोली जाने वाली भाषा का संस्कार तब तक नहीं होता जब तक वह साहित्य में एक निश्चित आदर्श रूप को ग्रहण कर स्थिर नहीं हो जाती। प्राकृत की आरम्भ से साहित्य में कई साहित्यिक बोलियाँ रही हैं, जिस में समय-समय पर सुन्दर रचनाएँ लिखी गयीं। यद्यपि इन बोली-विभागों में कभी कम और कभी अधिक अन्तर रहा है, किन्तु प्रान्तीय बोली-भेद उन में स्पष्ट लक्षित होते हैं। फिर भी, समय-समय पर संस्कृत का पानी प्राकृतों पर अवश्य चढ़ता रहा है। इतना ही नहीं, संस्कृत की समता में अपना साहित्यिक प्रभाव अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक भी था कि प्राकृत का विकास संस्कृत की पद्धति पर हो; और ऐसा हुआ भी। जहाँ प्राकृत-साहित्य में प्राकृत भाषा स्वाभाविक रूप से चलती हुई दिखाई पड़ती है वहाँ वह ठेठ बोली है, किन्तु जहाँ वह काव्यात्मक अनुबन्धों से युक्त तथा संस्कृत से प्रभावापन्न है वहाँ कृत्रिम प्रतीत होती है। श्री रिचर्ड पिशेल का मत है: "यह जनता के द्वारा बोली गयी किसी भाषा के आधार पर बनी थी और राजनीतिक या धार्मिक इतिहास की परम्परा के कारण यह भारत की सामान्य साहित्यिक भाषा बन गयी। भेद इतना

---

१. ब्लॉख, ज्यूल, अनु. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : भारतीय आर्यभाषा, पृ. १०।

२. ऋजुस्वभावसंस्थानं प्राकृतं तु स्वभावजम्।
मंगव्याध्ययनध्यानस्वभाव-जय-कर्मसु ॥ ८, ३८।
एम्योऽन्ये बह्वो भेदा लोकाभिनयसंश्रयाः।
ते च लोकस्वभावेन प्रयोक्तव्याः प्रयोक्तृभिः ॥ ८, ३६ नाट्यशास्त्र (भरत), द्वितीय जिल्द।

३. संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सम्यङ्, न्याय्यप्रतिष्ठिताः।
द्विविधा जातिभाषा च प्रयोगे समुदाहृताः ॥ वहीं, १७, २८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि यह पूर्णतया असम्भव है कि सब प्राकृत भाषाओं को संस्कृत की भाँति एक मूल भाषा तक पहुँचाया जाये। केवल संस्कृत को ही इस का मूल समझना, जैसा कि कई विद्वान् समझते हैं और इन में होएफर, लास्सन, भण्डारकर, याकोबी भी शामिल हैं, भ्रमपूर्ण हैं। सब प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण और शब्दों का नाना स्थलों में साम्य है, जो बातें संस्कृत में नहीं पायी जातीं।"[1] अतएव साहित्य के रूप में भले ही प्राकृतों को अधिक प्रसिद्धि न मिली हो, पर जन-जन की बोली के रूप में वह भाषा के आदि काल से ही इस देश में प्रचलित रही है।

संस्कृत-विकृति बनाम प्राकृत

भारतीय वैयाकरण तथा शिक्षाशास्त्रियों का एक मत है कि प्राकृत संस्कृत का ही विकृत रूप है। उन का यह मत वैयाकरणों के इस निर्देश पर आधारित है कि संस्कृत प्रकृति है, उस से उत्पन्न होने वाली प्राकृत है।[2] सभी प्राकृतों का एक मात्र उत्पत्तिस्थान संस्कृत है।[3] वस्तुतः यह मान्यता केवल संस्कृत की उद्धरणी करने वाले उन शब्दों को ले कर है, जिन में संस्कृत शब्दों का विकार या अपभ्रष्ट रूप लक्षित होता है। अतएव एक ओर जहाँ वैयाकरण संस्कृत से इतर भाषाओं को अपभ्रंश कह कर उपेक्षणीय तथा असाधु बताते हैं, वहीं शब्द की प्रकृति अपभ्रंश का भी निर्देश करते हैं। उन का कथन है[4]—शब्द की प्रकृति ही अपभ्रंश है। सभी स्थलों पर निमित्त के भेद से शब्दों के साधुत्व की व्यवस्था की गयी है। इस लिए शिष्ट जन उन साधु शब्दों के पर्याय रूपों को नहीं मानते। उन की दृष्टि में अश्व शब्द ही साधु है, अस्व नहीं। वस्तुतः उन का यह नियम भाषा की संकीर्ण प्रवृत्ति का परिचायक है। क्योंकि भाषा का स्वभाव है—परिवर्तनशीलता। संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रत्येक समय जाने-अनजाने कुछ न कुछ परिवर्तन की क्रिया होती रहती है। फिर, भौगोलिक तथा जातीय कारणों से कहीं-कहीं कुछ विशिष्ट ध्वनियों का उच्चारण समान रूप से नहीं किया जाता। यही कारण है कि आज भी बंगाली 'साला' को 'शाला' और पंजाबी असाड़ (आषाढ़) को 'हाड़' तथा मारवाड़ी सात को 'हात' बोलता है। उत्तर-प्रदेश के शिक्षित व्यक्ति भी 'भाषा' को 'भासा' और दिशा को 'दिसा' बोलते हैं। अतएव भाषावैज्ञनिक भाषागत प्रक्रियाओं तथा उन के कार्य-कारण भावों को ध्यान में रख कर यह विचार करते हैं

---

१. पिशेल, रिचर्ड : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, अनु. डॉ. हेमचन्द्र जोशी, पृ. ८।
२. प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्रभवं प्राकृतम् उच्यते। मार्कण्डेय : प्राकृतसर्वस्व, १, १।
प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता। नरसिंह : प्राकृतशब्दप्रदीपिका,
—लक्ष्मीधर : षड्भाषाचन्द्रिका, १, २५।
३. प्राकृतस्य तु सर्वं एव संस्कृतं योनिः। वासुदेव : कर्पूरमंजरी की संजीवनी टीका।
४. शब्दः संस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशनम्॥ यथाह संग्रहकारः – 'शब्दप्रकृतिरपभ्रंश' इति।
अस्वगोण्यादयः शब्दाः साधवो विषयान्तरे।
निमित्तभेदात् सर्वत्र साधुत्वं च व्यवस्थितम्॥ वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड, १४८—१४६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि अमुक परिवार की अमुक भाषा का विकास किन परिस्थितियों में और कैसे हुआ तथा उस भाषा की प्रकृति क्या है? भारतीय वैयाकरणों की दृष्टि में जो भाषागत विकार लक्षित होता है, उसे ही भाषावैज्ञानिक भाषा का विकास कहते हैं। बिना परिवर्तन हुए किसी भाषा का विकास कैसे हो सकता है?

यह कहना कि प्राकृत का जन्म संस्कृत से हुआ है, नितान्त भ्रमपूर्ण भी है। क्योंकि भाषाविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी भाषा के बल पर कोई स्वतन्त्र भाषा जन्म नहीं लेती। जो भाषाएँ आज विद्यमान हैं, उन का मूल रूप अवश्य किसी न किसी बोली में प्रतिष्ठित है। यदि भाषाविज्ञान की दूरबीन लगा कर देखी जाये तो आज की बोलियों में घुले-मिले तत्त्व किसी न किसी रूप में पूर्वकालिक भाषा से सम्बन्धित होंगे। इस लिए भाषा की मध्य अवस्था में से किसी अन्य भाषा का जन्म मान लेना उचित नहीं है। वस्तुतः तथ्य यह है कि बोली और भाषा एक साथ जन्म लेतीं और विकसित होती हैं। यद्यपि व्यवहार में उन दोनों के समय में बहुत अन्तर होता है, किन्तु सहस्राब्दियों के इतिहास में वह समय नगण्य ही होता है। उन में से जो भाषा सभी प्रकार से नियमबद्ध हो जाती है, उस का विकास रुक जाता है और गति (परिवर्तन) हीनता के कारण कालान्तर में वह मृतप्राय हो जाती है, किन्तु जो बोली मन्थर गति से भाषा की पद्धति पर चलने लगती है और जिस में साहित्य-रचना होने लगती है वह साहित्यिक 'भाषा' बन जाती है। वैदिक बोलियाँ इसी प्रकार विकसित हो कर विविध नाम-रूपों में प्रतिष्ठित हुई। केवल वैदिक भाषा में ही नहीं, आर्मेनियन, ग्रीक और लैटिन आदि में भी बोलियाँ सुरक्षित हैं।[1] बोलियों की विविध संक्रमण अवस्थाएँ भाषा के इतिहास में परिलक्षित होती हैं, और विशेषकर यह प्राचीनतम अवस्था २५०० ई. पू. से ले कर २,००० ई. तक रही है।[2] यद्यपि महर्षि पाणिनि ने भाषा को अबाधगति को रोकने का महान् प्रयत्न किया, और उस में बहुत कुछ सफल भी हुए, किन्तु भाषा के विकास को वे भी पूरी तरह नहीं रोक पाये। अन्ततः उन्हें 'पृषोदरादिगण' बना कर लोक भाषा से समझौता करना पड़ा था। फिर भी भाषा का बहुत कुछ संस्कार व्यवस्थित रूप से किया, इस में कोई सन्देह नहीं है। उन के इस भाषा-संस्कार के कारण संस्कृत के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ के समकालीन लक्ष्मीधर ने कुमार तथा पाणिनि आदि वैयाकरणों के द्वारा संस्कारित भाषा को संस्कृत कहा है।[3] परन्तु संस्कृत अपशब्दों तथा म्लेच्छ-भाषाओं से अछूती नहीं रह सकी। समय-समय पर संस्कृत भाषा में असीरियाई, मिस्री, चीनी, ईरानी तथा अन्य कई देश-प्रदेशों की भाषाओं के शब्द आते रहे, और आज भी सुरक्षित हैं। संस्कृत के महाकवि भी अपनी

---

१. ग्रे, लुइस एच. : फाउण्डेशन्स ऑव लैंग्वेज, १९५८, पृ. ३०४।
२. वहीं, पृ. ३१०।
३. भाषा द्विधा संस्कृता च प्राकृती चेति भेदतः।
कौमारपाणिनीयादिसंस्कृता संस्कृता मता॥ षड्भाषाचन्द्रिका, १, २३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषा को सर्वथा पाणिनि के नियमों के अनुसार नहीं ढाल सके, इस लिए पाणिनि-व्याकरण की दृष्टि से कालिदास और हर्ष जैसे महाकवियों की रचनाओं में अनेक व्याकरणिक अशुद्धियाँ मिलती हैं। अतएव चाहे कोई वैयाकरण हो या साहित्यकार, उसे लोक भाषा का ध्यान अवश्य रखना पड़ता है, फिर जो प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध होने पर भी यदि जन-जन में प्रचलित हैं, वे परम्परा से साहित्य में भी प्रयुक्त होने लगते हैं। शब्दरूपों तथा प्रयोगों में प्रत्येक युग में कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। यह निश्चित है कि संस्कृत भाषा एक होने पर भी वाल्मीकि की भाषा से कालिदास और उन की भाषा से बाणभट्ट की भाषा में अन्तर है। इस से प्रकट है कि भाषा में विकार (विकास) होना ही उस का जीवन है। जब तक भाषा अपने जीवन-काल में रहती है और जितने अधिक समय तक रहती है, उस में उतना अधिक परिवर्तन होता रहता है। यहाँ तक कि उस का परवर्ती रूप कभी-कभी अपने मूल से इतना अधिक विकसित हो जाता है कि सहसा वह पहचान में भी नहीं आता। वेदों से उपनिषदों की भाषा और उपनिषदों से महाकवि कालिदास, हर्ष आदि की भाषा में अत्यधिक अन्तर लक्षित होता है। यह अन्तर किसी की भाषा में विकार और किसी की भाषा में विकास नाम से जाना जाता है। यथार्थ में किसी भी भाषा का गतिहीन हो जाना अस्वाभाविक है और विकृत होते रहना उस के जीवित रहने का प्रमाण है। महाकवि कालिदास ने इसी बात को प्रकारान्तर से कहा है।[1] देहधारियों की मृत्यु होना स्वाभाविक है। विद्वानों का तो यह कथन है कि जीना ही विकृति है। इस लिए प्राणी जितने भी क्षण जी जायें उतने से ही सन्तोष करना चाहिए। कवि का यह कथन मनुष्य-जीवन की भाँति भाषा-जीवन के सम्बन्ध में भी भली भाँति चरितार्थ होता है।

भाषा का जीवन पच्चीस-पचास वर्षों का न हो कर सैकड़ों वर्षों का होता है। फिर, एक दूसरी जाति तथा भाषाओं के शब्द एक-दूसरे से अधिगृहीत होते रहते हैं। अतएव केवल कुछ शब्दों को ले कर यह कहना कि ये असाधु हैं, अपशब्द हैं, शिष्टता मात्र के द्योतक हैं। भाषा के इतिहास में ग्राम्य शब्दों का भी उतना ही महत्त्व है, जितना कि नागर शब्दों का। फिर प्रत्येक साहित्यिक भाषा को अपनी पूर्वावस्था से बहुत कुछ बदल जाना पड़ता है। अतएव महर्षि पतंजलि का यह कथन 'अपशब्द बहुत हैं, शब्द (साधु) बहुत कम हैं। एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश-रूप मिलते हैं, जैसे कि 'गो', इस एक शब्द (साधु) के लिए गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि बहुत से अपभ्रंश रूप हैं'[2]—शब्दों के विकृत रूपों से सम्बन्धित न हो कर गो वाचक अनेक

---

१. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥ रघुवंश, ८, ८७।

२. भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः।
तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी गोता गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः।
—महाभाष्य, १ अ०, १ पा०, १ आ०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दों के असाधु-विधान से है। साधु-असाधु का निर्णय कौन करे ? वास्तव में उस युग[1] में ब्राह्मणों की भाषा साधु थी और म्लेच्छों (नीच जनों) की भाषा असाधु थी। उन के कथन से यह भी प्रतीत होता है कि अशुद्धोच्चार के वशीभूत हो कर शब्दों को बिगाड़ कर नहीं बोलना चाहिए। किन्तु ये सब भाषा सम्बन्धी शिक्षाएँ हैं, जो केवल संस्कृत भाषा को ध्यान में रख कर लिखी गयी हैं। इन से प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि जिन शब्दों का निर्देश पतंजलि ने किया है उन में से गोणी शब्द पालि[2] में, गोणा-गोणी प्राकृत[3] में तथा संस्कृत[4] में एवं पालि-प्राकृत में गोण-गावी रूप मिलते हैं।[5] प्राकृत में 'गोणा' का अर्थ गाय और गोणी तथा गावी का अर्थ भी गाय है। गोण का अर्थ बैल है। सम्भवतः गोपोतलिका का अर्थ जवान गाय है। इन में से गावी (ग्राह्वी) का प्रयोग बंगला में और गोणी का प्रयोग आज भी सिन्धी भाषा में मिलता है। प्राकृत के कई ग्रन्थों में गावी और गावीओ के प्रयोग गाय अर्थ में मिलते हैं।[6] अतएव जिन्हें असाधु, अपशब्द या अपभ्रंश समझा जाता है, वास्तव में वे विभाषाओं में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने उन्हें असाधु केवल इसी लिए बता दिया कि वे शिष्ट वर्ग के द्वारा प्रयुक्त नहीं होते थे।

अपभ्रंश क्या है

जिस प्रकार प्राकृत का अर्थ है स्वाभाविक भाषा उसी प्रकार अपभ्रंश का अर्थ है—जन बोली। जन बोली से अभिप्राय सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा से है। दूसरे शब्दों में हम उसे नीच लोगों की भाषा अर्थात् ग्राम्य भाषा कह सकते हैं। संस्कृत के वाचस्पत्यकोश में इस का एक अर्थ ग्राम्यभाषा भी है। सामान्य रूप से वैयाकरणों की भाषा में अपभ्रंश का अर्थ 'अपशब्द' है और अपशब्द का अर्थ है—ठीक से उच्चरित न होने वाले (बिगड़े) शब्द। लोक भाषा में इस का रूढ़ अर्थ है—गिरना, खिसकना। भाषा-विकास की दृष्टि से यह मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की वह मध्यवर्ती विकसित अवस्था है, जो वर्तमान आर्यभाषाओं की पुरोगामिनी है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार स्थानीय प्राकृत को अपभ्रंश कहा गया है।[7] स्थानीय प्राकृत से उन का अभिप्राय बोलचाल की जन-भाषा से है। आ. भरतमुनि के उल्लेखों से भी यही पता चलता है कि अपभ्रंश

---

१. तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै—नापभाषितवै, म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः। वही, १, १, १।

२. गोणनम्हि वा सुहिना सुच। पालीव्याकरण (कात्यायन), द्वितीय कल्प, प्रथम खण्ड २६, ३०।

३. व्यवहारसुत्र उ० ४, गोणी (ओघ २३ भा), गोणा (पाइअसद्दमहण्णव, पृ० ३०१), गूणि-गोणी (उक्तिरत्नाकर)।

४. जाध गोणा ! जाध (यातं गावौ यातं), मृच्छकटिक अंक ६।

५. गोण (प्राकृतकल्पतरु, २, १, १३), देशीनाममाला, २, १०४।

६. गोर्गावी। प्राकृतलक्षण, २, १६, शब्दानुशासन (हेमचन्द्र), ८, २, १७४।

७. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, पृ० २४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोलचाल की भाषा थी। उन्होंने 'उकारबहुला' कह कर जिस भाषा का परिचय दिया है, वह हिमालय प्रदेश से ले कर सिन्ध तथा उत्तर पंजाब तक प्रचलित थी।[1] इस उत्तर भारतीय बोली को ही वैयाकरणों ने अपभ्रंश नाम दिया है। यद्यपि बहुत पहले प्राकृत को भी अपभ्रंश कहा जाता था, क्योंकि संस्कृत को छोड़ कर जितनी भी भाषाएँ थीं, वे सब अपभ्रंश कहलाती थीं। किन्तु प्राकृत भाषा के साहित्यिक स्थान पर आरूढ़ हो जाने पर मूल बोली को प्राकृत तथा साहित्य की भाषा को भी मूल बोली से सम्बद्ध होने के कारण प्राकृत कहा गया। प्राकृत की इस परम्परा में ही जब प्राकृतें लोकबोलियों से हटने लगीं तब जिस विकसित अवस्था का स्वरूप देखने को मिला उसे अपभ्रंश नाम दिया गया। भाषा-विकास की यह वह अवस्था थी, जिस में भारतीय आर्यभाषा अपनी संयोगावस्था से वियोगावस्था में संक्रमित होने लगी थी। पण्डित गुलेरी जी के शब्दों में—"विक्रम की सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गयी। इस में देशी की प्रधानता है। विभक्ति घिस गयी हैं, खिर गयी हैं, एक ही विभक्ति 'हं' या 'आहं' कई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है। वैदिक भाषा की अविभक्तिक निर्देश की विरासत भी इसे मिली। विभक्तियों के खिर जाने से कई अव्यय या पद लुप्तविभक्तिक पद के आगे रखे जाने लगे, जो विभक्तियाँ नहीं हैं। क्रियापदों में मार्जन हुआ।"[2] इस प्रकार लोकभाषा की परम्परा के रूप में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को अपनी परम्परागत शृंखला से जोड़ने वाली भाषा का नाम अपभ्रंश है। परम्परा के रूप में ईसा की तीसरी शताब्दी के लगभग यह बोली ऐसे साँचे में ढलने लगी थी, जो निय प्राकृत के अधिक निकट थी और जिस से अपभ्रंश के नवीन नाम-रूपों का विकास हुआ। वस्तुतः यह प्राकृतों की वह अन्तिम अवस्था कही जाती है, जो प्राकृतों की तीसरी भूमिका (साहित्यिक प्राकृत) के अनन्तर साहित्य की भाषा के रूप में देशी भाषाओं से मिश्रित परिलक्षित होती है। यह जनबोली की अपेक्षा काव्य की भाषा अधिक है। किन्तु जिन वैयाकरणों ने तथा विद्वानों ने प्राकृत को ही अपभ्रंश माना है, उन्होंने अवश्य भूल की है।

प्राकृत अपभ्रंश नहीं है

यद्यपि भाषा के क्रमिक विकास को समझाने के लिए यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश प्राकृतों की अन्तिम अवस्था है, किन्तु स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की वह पूर्ववर्ती अवस्था है, जिस में से समस्त आधुनिक आर्य-भाषाओं को अपनी स्थिति का निर्माण करना पड़ा था। अपभ्रंश प्राकृतों की उस

---

१. हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः।
उकारबहुला तज्ज्ञस्तेपु भाषां प्रयोजयेत्॥ नाट्यशास्त्र, १७, ६२।

२. गुलेरी, पं० चन्द्रधर शर्मा : पुरानी हिन्दी, प्रथम संस्करण, पृ० ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिति से विकसित नहीं हुई, जिस में प्राकृत का साहित्य लिखा गया। यह बात अलग है कि आगे चल कर अपभ्रंश की वही स्थिति हुई, जो साहित्य की भाषा में बँध कर कृत्रिम हो जाने पर प्राकृत को हुई थी। किन्तु भाषा-सम्बन्धी यह स्थिति अधिकतर मध्यकाल की रही है। मध्यकाल में (लगभग दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य) प्राकृत तथा अपभ्रंश—दोनों के ही साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव रहा है। अतएव साहित्यिक शैलियों के अनुरूप संस्कृत के पदविन्यास, शब्द-योजना तथा समस्त पदावली का अपभ्रंश साहित्य पर प्रभाव लक्षित होता है। परन्तु प्राकृत की भाँति अपभ्रंश का आदर्श संस्कृत नहीं थी। बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध संस्कृत-साहित्य समालोचक वाग्भट का स्पष्ट कथन है कि अपभ्रंश विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली ठेठ बोली है।[1] अतएव अपभ्रंश प्राकृत की विभाषाओं से विकसित मानी जा सकती है, किन्तु प्राकृत ही अपभ्रंश है अथवा प्राकृत से ही अपभ्रंश का जन्म हुआ है, कहना उचित नहीं है। क्योंकि वैदिक और अवेस्ता भाषा की कुछ विशेषताएँ पालि और प्राकृत में ही नहीं, अपभ्रंश में भी मिलती हैं।[2] दूसरे विभक्तियों में ही नहीं, प्रत्यय और परसर्गों में भी प्राकृत से अपभ्रंश में स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है। अपभ्रंश में देशी रूपों की बहुलता है। 'य' श्रुति भी विशेष रूप से अपभ्रंश में मिलती है। उस में व्यंजनलोप की प्रक्रिया भी विशेष रूप से लक्षित होती है। यही नहीं, अपभ्रंश पर आर्येतर भाषाओं का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। अतएव डॉ. कीथ की यह मान्यता कि अपभ्रंश प्राकृत की जनबोलियों से भिन्न नहीं है, निरापद नहीं है। वस्तुतः वैदिक युग में भी जनबोलियाँ थीं, इस का प्रमाण अपभ्रंश में मिलता है।[3] फिर आ. रुद्रट का यह कथन 'प्राकृतमेवापभ्रंशः' प्राकृत की उस प्राचीन परम्परा का निर्देश करता है, जो कालान्तर में महाराष्ट्री प्राकृत के आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी। और फिर देशी भाषाओं की दृष्टि से उन्होंने अपभ्रंश को प्राकृत कहा है। क्योंकि संस्कृत को छोड़ कर सभी देशी भाषाएँ प्राकृत नाम से अभिहित की गयी हैं। मराठी का प्राचीन साहित्य इसी प्राकृत भाषा (देशी या अपभ्रंश) में लिखा गया है।[4] हिन्दी में भी यह परम्परा गोस्वामी तुलसीदास तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित परिलक्षित होती है। तुलसीदास जी के समय तक प्राकृत-अपभ्रंश आदि भाषा या भाखा समझी जाती थी। प्राकृत से उन का अभिप्राय प्रादेशिक भाषा से प्रतीत होता है।[5] अपनी

---

१. अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्। वाग्भटालंकार, १ अ०।
२. डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री—भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य, पृ० ४-६।
३. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, पृ० २४६।
४. आतां संस्कृता अथवा प्राकृता।
भाषा जाली जे हरिकथा ॥—एकनाथ
तथा—प्राकृत लोक न जाणति मूल, उगेंच इला कथितातो सवाई।—मराठी छन्द से उद्धृत।
५. जे प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने।—रामचरितमानस, बालकांड
भाषा भनिति भोरि मति मोरी, हंसिवे जोग हंसें नहिं खोरी।—वहीं, बालकांड।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषा को उन्होंने ग्राम्यगिरा भी कहा है। आ. वाग्भट और हेमचन्द्र ने भी अपभ्रंश का उल्लेख ग्राम्य भाषा के रूप में किया है। संक्षेप में, पं. चन्द्रधरशर्मा गुलेरी जिसे पुरानी हिन्दी कहते हैं, डॉ. एल. पी. टेस्सिटरी जिसे पुरानी राजस्थानी कहते हैं और गुजराती जिसे जूनी गुजराती तथा वंग एवं मिथिलावासी जिसे अपनी पुरानी भाषा कहते हैं, वस्तुतः वह अपभ्रंश है। यह अपभ्रंश लगभग सभी भारतीय आर्यभाषाओं की जननी कही गयी है। डॉ. टेस्सिटरी के विचारों में—"तथ्य यह है कि जिस भाषा को मैं 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' नाम से पुकारता हूँ, उस में वे सभी तत्त्व हैं जो गुजराती के साथ-साथ मारवाड़ी के उद्भव के सूचक हैं और इस तरह वह भाषा स्पष्टतः इन दोनों की सम्मिलित माँ है। यह बहुत पहले ही स्वीकार किया जा चुका है कि गुजराती और मारवाड़ी एक ही उद्गमस्थल शौरसेन अपभ्रंश से उत्पन्न हुई हैं।"[1] इस प्रकार यह अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग नाम से अभिहित होती रही है। यह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के लिए एक सामान्य भूमिका रही है।

अपभ्रंश और देशी

भारत में जनभाषा में लिखित साहित्य की भाषा को देशी कहने का प्रचलन प्राचीन प्रतीत होता है। प्राकृत युग में इस का विशेष प्रचार था। पादलिप्तसूरि (पाँचवीं शती) ने प्राकृत में निबद्ध तरंगवइ की भाषा को देशी कहा है। इस कथा में देशी वचनों की प्रचुरता परिलक्षित होती है। उद्योतनसूरि (आठवीं शती) ने महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध 'कुवलयमालाकहा' को देशी कहा है। विभिन्न देशी भाषाओं का परिचय भी दिया है। कथा का कुछ अंश संस्कृत में और कुछ अपभ्रंश में भी लिखित मिलता है। इन के अतिरिक्त जनबोलियों के अनेक शब्दों का प्रयोग इस कथा में लक्षित होता है। इसी प्रकार कोऊहल ने महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित 'लीलावइकहा' की भाषा को महाराष्ट्र की देशी भाषा कहा है। ग्यारहवीं-बारहवीं शती की रचना पं. दामोदर कृत 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' की भाषा को डॉ. चटर्जी प्राचीन कोसल देश की बोली कोसली मानते हैं।[2] लेखक ने ग्रन्थ की भाषा को अपभ्रंश कहा है और अपभ्रंश से उस का अभिप्राय आम जनता की बोली से है। जिस बोली का प्रत्येक प्रदेश में नीच जन तक व्यवहार करते हैं, वह अपभ्रंश भाषा है।[3] इस से स्पष्ट है कि अपभ्रंश एक प्रकार से लोकभाषा के सामान्य रूप में शताब्दियों तक बोली जाती रही है। और बोलचाल की अवस्था में प्राकृत की भाँति देशी नाम से प्रचलित

---

१. टेस्सिटरी, डॉ. एल. पी. : अनु. नामवरसिंह : पुरानी राजस्थानी, द्वितीय संस्करण, पृ० ४।

२. दामोदर, पण्डित, सम्पादक—डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी : उक्तिव्यक्तिप्रकरण की प्रस्तावना, पृ. ६।

३. देशे देशे लोको वक्ति गिरा भ्रष्टया यया किंचित्।
सा तत्रैव हि संस्कृतरचिता वाच्यत्वमायाति ॥—उक्तिव्यक्तिप्रकरण, ६।
—प्रतिदेशभिन्ना येयं सर्वजनसाधारणा भाषा गावी गोणी प्रभृतिका सोऽपभ्रंश उच्यते।
ततो देशे देशे प्रतिविषयं लोकः पामरजनो यया यया गिरापभ्रष्टया यद् किंचिदभिधेयं वस्तु वक्ति व्यवहरति सापभ्रंशभाषा।—वहीं, टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है। साधुसुन्दरगणि के 'उक्तिरत्नाकर' में मुख्य रूप से देशी शब्दों का संग्रह मिलता है। अतएव सामान्य रूप से प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में लिखित रचनाओं को देशी कहा गया है। आ. हेमचन्द्र ने स्पष्ट रूप से प्राकृत भाषाविशेष को देशी कहा है।[1] वास्तव में हमारे विचार में देशी भाषाओं में लिखा गया साहित्य लोक-साहित्य था, जो अपनी प्रादेशिक बोली तथा परम्परा में रचा गया था। किन्तु संस्कृत-साहित्य के अनुकरण पर परवर्ती काल में जो भी काव्य लिखे गये उन की भाषा ठेठ बोली नहीं रह सकी, उन में कृत्रिमता तथा शास्त्रीयता का मोह परिव्याप्त है। अतएव क्षेत्रीय भाषा को आधार मान कर जिस किसी भी भाषा में लिखी गयी रचना को देशी कहा गया है, और इस लिए अपभ्रंश के अधिकतर कवियों ने अपनी भाषा को देशी कहा है। महाकवि स्वयम्भू का कथन है कि यह रचना संस्कृत तथा प्राकृत रूपी पुलिनों से अलंकृत एवं देशी भाषा के दो तटों से उज्ज्वल है।[2] पुष्पदन्त अपनी नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि न तो मैं छन्दशास्त्र के नियमों को भली भाँति जानता हूँ और न विचक्षण तथा देशी भाषा का ही जानकार हूँ।[3] पद्मदेव, लक्ष्मण तथा अन्य अपभ्रंश के कवि भी अपने काव्य की भाषा का परिचय देशी कह कर देते हैं। लाखू ने भी देशी भाषा का निर्देश किया है।[4] अपभ्रंश के कवि या तो अपनी भाषा को देशी कहते हैं या फिर भाषा। उन्होंने अपने काव्य की भाषा को अपभ्रंश नहीं कहा। अपभ्रंश नाम वैयाकरणों का दिया हुआ है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश ये तीनों ही नाम वैयाकरणों के गढ़े हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि वाल्मीकि और पाणिनि के समय में संस्कृत भाषा मात्र थी। अपभ्रंश के कवियों में से केवल स्वयम्भू और पुष्पदन्त ने देशी भाषा के अतिरिक्त 'अवहंस' शब्द का प्रयोग भी किया है।[5] उन के अवहंस कहने से यह स्पष्ट हो जाता है कि देशी भाषा की काव्य-परम्परा ही आगे चल कर अपभ्रंश कहलायी। क्योंकि उन्होंने जिस देशी भाषा में रचना करने का उल्लेख किया है, उसी के लिए अन्य प्रकरण में 'अवहंस' शब्द का निर्देश किया है। इस शब्द का प्राचीन उल्लेख ही नहीं, विवरण भी कुवलयमालाकथा में प्राप्त होता है। अपभ्रंश के सम्बन्ध में कवि उद्योतनसूरि का कथन है कि यह वह भाषा है, जिस में संस्कृत-प्राकृत के शुद्धाशुद्ध पदों का मिश्रित रूप मिलता है और जो नवीन वर्षाकालीन जलद के प्रपात से पूर द्वारा प्लावित पहाड़ी नदी के वेग के समान सम-विषमता

---

१. देसविसेसपसिद्धीह भण्णमाण अणन्तया हुन्ति।
तम्हा अणाइपाइअपयट्टभासाविसेसओ देसी ॥—देशीनाममाला, १, ४।

२. सक्कयपायय पुलिणालंकिय देसीभासा उभय तडुज्जल।—पउमचरिउ १, २, ३-४।

३. ण हउं होमि वियक्खणु ण मुणमि लक्खणु छंदु देसि ण वियाणमि।—महापुराण, १, ८, १०।

४. देसभास लक्खण ण तक्कओ, मुणमि णेव आयमहिं गुरुक्कओ।—जिणयत्तचरिउ, १ सं०, ६।

५. जो पाउअस्स सारो तस्स मए लक्खलक्खणं सिट्ठं।
एत्ताहे अवहंसे साहिज्जंतं णिसामेह ॥—स्वयम्भूछन्द, ४, १।
तथा—सक्कउ पायउ पुण अवहंसउ, वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ। महापुराण, ५, १८, ६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से समन्वित मानवती प्रणयिनी के वार्तालाप की भाँति सरस तथा सुन्दर है।[1] अतएव देशी भाषा भी महत्त्वपूर्ण रही है। विद्यापति उल्लसित हो कर कहते हैं—'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'—अर्थात् देशी वचन सभी को मीठे लगते हैं। वस्तुतः मधुरता ही देशी भाषा की पहचान है। जैन वाङ्मय तथा कुवलयमालाकहा के अध्ययन से विदित होता है कि इस देश में मुख्य रूप से अठारह देशी भाषाएँ प्रचलित रही हैं। श्री एल. बी. गान्धी तथा डॉ. जैन देशी भाषा और अपभ्रंश को एक ही मानते हैं, किन्तु परममित्र शास्त्री उन से सहमत नहीं हैं। उन का यह कथन है कि प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों ने अपने काव्य को देशभाषा यानी जनभाषा के रूप में प्रयुक्त किया है। अपभ्रंश जनभाषा के बहुत निकट है। इस के साहित्य में देशी शब्दों की प्रधानता है, किन्तु देश भाषा और अपभ्रंश भाषा एक ही नहीं है।[2] डा. शास्त्री के इन विचारों की व्याख्या करना आवश्यक है। यथार्थ में अपभ्रंश के प्रारम्भिक कवि प्राकृत की परम्परा का अनुकरण करते आ रहे थे। प्राकृत में अपनी रचना को 'देशी' कहना रूढ़ हो गया था। यद्यपि उन पर देशी भाषाओं का प्रभाव रहा है, किन्तु वे ठीक से किसी जनबोली का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। तरंगवइ, लीलावइ तथा कुवलयमालाकथा आदि से स्पष्ट हो जाता है कि उन के युग में विभिन्न देशी भाषाओं का प्रचलन था, किन्तु काव्यात्मक भाषा प्राकृत, अवहंस या अपभ्रंश उन से भिन्न थी। आम जनता की भाषा के कुछ ही नमूने तथा वाक्यगत प्रयोग हमें साहित्य में मिलते हैं। अतएव इस साहित्य को लोक-साहित्य कहने का अभिप्राय यही है कि प्रान्त विशेष की भाषा के आधार पर अपभ्रंश का साहित्य लिखा गया, जो लोक-जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों से समन्वित है और जिस में देशी परम्परा का पूर्ण योग है। परन्तु उन में कोई भी रचना किसी प्रान्त विशेष की ठेठ बोली में नहीं लिखा गया। भारतीय साहित्य की यह परम्परा है कि वह पूरी तरह से किसी शुद्ध बोली मे लिखित नहीं मिलता है। यहाँ तक कि हिन्दी में जो अवध या ब्रज की भाषा में रचनाएँ लिखी गयीं, उन पर इतर आर्यभाषाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। केवल इसी अर्थ में अपभ्रंश देशी से भिन्न है। किन्तु सामान्य रूप से अवधी भाषा में लिखे गये 'रामचरितमानस' की भाँति अपभ्रंश के काव्य भी देशी भाषा के काव्य हैं। इन की परम्परा आज भी लोक-साहित्य में अक्षुण्ण है। अपभ्रंश-साहित्य में गीति, चर्यापद, रास एवं चर्चरी तथा फागु आदि ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं, जो सरल भाषा में जनभाषा में लिखी गयी हैं। कुवलयमालाकथा में भी 'चर्चरीरास' तथा विभिन्न ग्रामीण संवाद देशी परम्परा के ही सूचक हैं। वास्तव में अपभ्रंश भाषा तथा उस के साहित्य में ग्रामीण तथा साहित्यिक दोनों ही परम्पराएँ

---

१. ता किं अवहंसं होहइ ? हूं तंपि णो जेण सक्कअ-पाय उभयसुद्धासुद्ध पयसमतरंगरंगंतवग्गिरं णव पाउसजलयपवाहपूरपव्वालिय गिरिणइसरिसं समविसमं पणयकुवियपियपणइणी समुल्लावसरिसं मनोहरं।—कुवलयमालाकहा

२. डॉ. परममित्र शास्त्री—अपभ्रंश और देशी, नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, वर्ष ६६, अंक १-२, पृ० ७६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपलब्ध होती हैं। वाग्भट तथा आ. हेमचन्द्र आदि ग्राम्यभाषा का उल्लेख करते हैं। नमिसाधु तो यहाँ तक कहते हैं कि कुछ लोग उपनागर, आभीर और ग्राम्यभेद से अपभ्रंश के तीन प्रकार मानते हैं, किन्तु देशभेद से उस के अनेक भेद हैं।[1] वस्तुतः ये अनेक भेद जनपदीय बोलियों को छोड़ कर अन्य नहीं हैं। पं. हरगोविन्ददास जी का यह मत ऐतिहासिक अध्ययन से भी प्रमाणित होता है कि पंजाब और मध्य देश के बाहर के अन्य प्रदेशों में उस समय आर्य लोगों की जो प्रादेशिक प्राकृत भाषाएँ प्रचलित थीं उन्हीं से ये देशी शब्द गृहीत हुए हैं। यही कारण है कि वैदिक और संस्कृत साहित्य में देशी शब्दों के अनुरूप कोई शब्द (प्रतिशब्द) नहीं पाया जाता है।[2] इस का यह भी अर्थ नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वान् समझते हैं कि प्राकृत और देशी एक है, पर अपभ्रंश और देशी भिन्न है। वस्तुतः देशी कथ्य भाषा का वाचक शब्द है, किन्तु प्राकृत तथा अपभ्रंश शब्द साहित्य-पद के लिए रूढ़ हो जाने के कारण कालान्तर में भिन्न अर्थ के वाचक हो गये। अतएव देशी शब्द आज जिस रूढ़ अर्थ में हमारे सामने है, उस से यह निश्चित हो जाता है कि अपभ्रंश को रिक्थ के रूप में देशी भाषा यानी जनबोली का आधार अविच्छिन्न रूप से प्राप्त हुआ है। फिर, शास्त्री जी का यह कथन उचित ही है कि गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानस को भाषा को 'भाषा' कह कर पुकारा है। अतः देशी या देश भाषा का प्रयोग समसामयिक भाषा काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3] मराठी भाषा के आदि कवि मुकुन्दराज (११२८-११९२ ई.) ने भी देशी भाषा में रचना की है। उन का कथन है[4]—यदि कल्पतरु के फल घर के ही झाड़ में फलें तो फिर कौन उन्हें ग्रहण नहीं करेगा? भाषा चाहे देशी हो या मराठी, यदि उस में उपनिषद् का तत्त्व हो तो उसे हम गाँठ में क्यों न बाँधें? रंगनाथ या नाथमुनि (सं. ८२४-९२४ ई.) ने आलवारों के उपदेश के प्रचार के लिए देशी भाषाओं में गायन का प्रबन्ध कराया था। रामानन्द, एकनाथ आदि अन्य भारतीय सन्तों ने अपनी बानियों की रचना देशी भाषाओं में की थी। कबीरदास जी ने स्पष्ट ही कहा है—
"कबिरा संसकरत कूपजल भाखा बहता नीर।"

वस्तुतः प्रत्येक जीवित भाषा के लिए कोई न कोई आकर भाषा होती है। यूरोप की भाषाओं के लिए ग्रीक और लेटिन आकर भाषाएँ हैं। अतएव शेक्सपियर की भाषा में बहुत-से ग्रीक और लेटिन शब्द पाये जाते हैं। उर्दू के लिए अरबी आकर भाषा है। इसी प्रकार आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के लिए संस्कृत आकर भाषा है।

---

१. काव्यालंकारटीका, २, १२।
२. पाइअ—सद्द-महण्णवो, प्रथम संस्करण का उपोद्घात, पृ० २१।
३. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६६, अंक १-२, पृ० ७६।
४. कल्पतरुचेनि पाड़ें। जरी फलती घरची झाड़ें॥
तरी तिये आवडीचेनि कोडें। न लावावी कां॥
देशी हो का महाठी। परी उपनिषदाचो च राहाटी॥
तरी हा अर्थु जी बाचिया गांठी। कां न बांधावा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु संस्कृत इन भाषाओं की उद्गमस्रोत नहीं है। सम्भव है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में संस्कृत के पचास प्रति शत शब्द मिलते हों अथवा तत्सम शब्दों का समावेश हो, किन्तु लगभग उतने ही तद्भव तथा देशज शब्द भी उन में पाये जाते हैं। व्यवहार में सिक्कों के चलन की भाँति भाषा में शब्द चलते हैं। इस लिए नये शब्द उन सिक्कों की भाँति होते हैं, जो पुराने सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। ऐसे शब्दों के सिक्के भाषा-शास्त्र में 'तद्भव' कहे जाते हैं। किन्तु देशज शब्द बिलकुल नये 'करेन्सी नोट' की भाँति होते हैं। इन की संख्या दिनोंदिन बढ़ती रहती है। डॉ. चटर्जी के शब्दों में—"आर्य-भाषा का इतिहास ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों इन अनुकार-शब्दों की बढ़ती हुई संख्या भी द्रष्टव्य बनती जाती है। देशीनाममाला में कुछ अनुकार-शब्द हैं। द्राविड़ तथा निषाद (आस्ट्रिक) दोनों भाषाओं के अनुकार शब्द उन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है।"[1] यह ज्ञात हो जाने पर कि देशी शब्द किसी भी भाषा में आगत एवं प्रयुक्त बिलकुल नवीन शब्द हैं, एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये देशी शब्द कहाँ से आये? आ. हेमचन्द्र का कथन है कि जो शब्दशास्त्र के अनुसार प्रकृति, प्रत्यय आदि के संयोग से निष्पन्न नहीं होते तथा संस्कृत के शब्द-कोशों में अप्रसिद्ध हैं, पर अन्य लक्षणकारों के द्वारा प्रतिपादित शक्तिसम्पन्न हैं वे इस देशी शब्दसंग्रह में निबद्ध हैं।[2] वस्तुतः उन का यह लक्षण एकदेशीय है। अतएव देशीनाममाला में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं, जो संस्कृत शब्दों से व्युत्पन्न कहे जाते हैं। किन्तु अधिकतर शब्द ऐसे हैं, जिन की व्युत्पत्ति का अनुमान संस्कृत से नहीं होता। भारतवर्ष में संस्कृत और प्राकृत के दोनों प्रकार के शब्द प्रसिद्ध रहे हैं। संस्कृत में शिष्ट वर्ग के शब्द हैं और प्राकृत में जनसामान्य के। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक बीम्स के अनुसार भले ही इन शब्दों का प्रयोग साहित्य में न किया गया हो, किन्तु जनता की बोलियों में ये सदा प्रयुक्त होते रहे हैं।[3] इस लिए सम्भव है कि देशीनाममाला में तद्भव शब्द भी देशी की कोटि में कहीं-कहीं मान लिये गये हों, किन्तु अधिकतर देशी शब्द प्राकृत तथा भारोपीय एवं द्राविड़ी बोलियों में प्रचलित रहे हैं। इस लिए द्रविड़ भाषाओं में देशी शब्द उन के शब्दकोशों में अधिगृहीत हैं तथा वे उन का एक अंग हैं।[4] देशीनाममाला में संगृहीत शब्दों में से अनेक कनड़ो, तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं के शब्द हैं।[5]

---

१. चाटुर्ज्या, डॉ. सुनोतिकुमार : भारतोय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० ११०।

२. जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु।
ण य गउणलक्खणासत्तिसंभवा ते इह णिबद्धा॥ देशीनाममाला, १, ३।

३. बीम्स, जॉन : कम्पेरेटिव ग्रामर ऑव माडर्न आर्यन लैंग्वेजेज ऑव इण्डिया, १८७२, पृ० २४, प्रथम जिल्द।

४. रामानुजस्वामी, पी. वी. : देशीनाममाला, १९३८, इन्ट्रोडक्शन १, पृ० १०।

५. देखिए, 'इण्डियन एन्टिक्वेरी' जिल्द १६, पृ० ३३-३६ में प्रकाशित के. अमृत रो का 'द्राविडियन एलीमेन्ट इन प्राकृत' शीर्षक लेख। तथा—डॉ. ए. एन. उपाध्ये का 'कनारीज वर्ड्स इन देशी लेक्सीकन्स' शीर्षक लेख, प्रकाशित 'एनल्स ऑव द भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट', जिल्द १२, पृ० २७७-८४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतएव निश्चय ही देशी शब्द संस्कृत से भिन्न भारतीय आर्येतर प्रजाओं के शब्द हैं, जो संस्कृत के किसी भी शब्दकोश में नहीं मिलते। और जो शब्द मिलते भी हैं वे भिन्न अर्थ में परिलक्षित होते हैं। देशी शब्दकोशों में ही नहीं, अपभ्रंश के काव्य-साहित्य में उधार लिये गये शब्द दिखाई पड़ते हैं। आर्येतर भाषाओं के अनेक शब्द अपभ्रंश-साहित्य में घुल-मिल गये हैं। उदाहरण के लिए अक्का, अप्पा, कडप्प, कुड़, कुड़व तथा कुरुल आदि शब्द लिये जा सकते हैं। श्री रत्न एन. श्रियन ने ऐसे ४६ शब्दों की लम्बी सूची सप्रमाण प्रकाशित की है, जिस में कनड़ी, तमिल, तेलुगु तथा तुलु आदि में पाये जाने वाले शब्द सम्मिलित हैं।[१] यही नहीं, उन्होंने देशी शब्दों की चार श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। ये चार श्रेणियाँ हैं : (१) देश्य-देशीसम शब्द, (२) अनुकरण-मूलक शब्द, (३) विदेशी ऋण शब्द और (४) शुद्ध देशी शब्द। अतएव यह कहना भ्रमपूर्ण है कि संगृहीत देशी शब्दों में जन बोलियों के ठेठ शब्द नहीं मिलते। श्री एस. एन. घोषाल के अनुसार ग्रियर्सन और उन के मानने वालों ने अपभ्रंशों को ठेठ बोलियाँ माना है, जिन का जन्म बोलचाल की प्राकृतों से हुआ और जिन का व्याकरणिक रूप तथा संघटन भी प्राकृत बोलियों से बना। उन की अपेक्षा नाटकों की प्राकृत कुछ साहित्यिक रूपों में मिलती है। अपभ्रंश ने साहित्य का स्थान छठी शताब्दी में प्राप्त किया।[२] अतएव यह निश्चित है कि छठी शताब्दी तक अपभ्रंश वर्नाक्युलर (देशीय या प्राकृत) भाषा रही है। इस के प्रमाण भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र के 'मोरल्लउ नच्चंतउ' तथा अन्य निर्देशों से ले कर 'स्वयम्भूच्छन्द' तक बराबर मिलते हैं। स्वयम्भू ने आर्यदेव की रचना का एक उदाहरण दिया है :

काइं करउं हउं माए। पिउ ण गणइ लग्गी पाए।
मण्णु धरंतेहो जाइ। कढिण उत्तरंग भणाइ॥

इस की ब्रजभाषा से तुलना कीजिए—का करौं हौं माइ, पिउ न गणै लागी पाए। राजस्थानी में तो आज भी बोल-चाल में 'पाए लागी', 'पिउ न गणै', 'काइं करउं' आदि प्रयोग प्रचलित हैं। अपभ्रंश की परवर्ती रचनाओं में विभिन्न बोलियों के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। अतएव इस से इनकार नहीं किया जा सकता कि अपभ्रंश जन-बोलियों के रूप में नहीं मिलती। फिर, यह कहना कि अपभ्रंश और देशी भिन्न-भिन्न हैं, उचित नहीं जान पड़ता। डॉ. सिंह ने डॉ. जैन के विचारों का समर्थन करते हुए कहा है[3]—इन का कथन सत्य है, पर अपभ्रंश को देशी मानने के काल की भी एक अवधि है। चौदहवीं शती के आस-पास एक बार फिर भाषा को देशी, ग्रामगिरा आदि कहने का जोर बढ़ा। विद्यापति के अतिरिक्त महाराष्ट्री कवि ज्ञानेश्वर ने भी कहा :

१. 'भारतीय विद्या' जिल्द २५, अंक १-२ में प्रकाशित रत्न एन. श्रियन का 'सम फारन लोन वर्ड्स इन पुष्पदन्ता'ज अपभ्रंश' शीर्षक लेख।
२. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, जिल्द ३०, सं० ३ में प्रकाशित 'अपभ्रंश एण्ड पोस्ट अपभ्रंश फीचर्स इन द अर्ली प्राकृत्स', पृ० २४५-६३।
३. सिंह, डॉ. शिवप्रसाद : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ० ४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अम्हो प्राकृते देशीकारे बन्धे गीता।"

और इस लिए ज्ञानेश्वरी में परवर्ती अपभ्रंश-रूपों की बहुलता होने पर भी वह मराठी है। सम्पूर्ण महानुभाव सम्प्रदाय के साहित्य के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है, जो कि प्राचीन मराठी में लिखा गया कहा जाता है। वस्तुतः जनबोली के आधार पर लिखी गयी किसी भी रचना को देशीय या प्राकृत कहने की प्रथा हमें पाँचवीं शताब्दी से मिलने लगती है। और यह धारा लगातार दसवीं शताब्दी तक चलती है। बीच की कुछ शताब्दियों में अवश्य पुष्पदन्त के समय से लगभग दसवीं शताब्दी से अपभ्रंश के रूढ़ हो जाने से अपभ्रंशकवि अपने काव्य की भाषा देशी न कह कर भाषा कहने लगे थे। किन्तु अपभ्रंशों का देशीप्रवाह किसी न किसी रूप में पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक चलता रहा था। अतएव पन्द्रहवीं शती के कवि पं. रयधू की विभिन्न रचनाओं में अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग मिलता है, जो बोल-चाल के निकट है। सिद्धचक्रकथा की ये पंक्तियाँ देखिए :

ता सेट्ठि पयंपइ तहि तुरन्तु, तुहुं वीरु महारउ धम्मपुत्तु।
पें मंग्गहि जीवलु जो फुरइ तोहि, दह सहस तणउ दइ सेट्ठि मोहि॥

उक्त शब्दों में से तुरन्तु, मंग्गहि (माँगना), तोहि (तुझे), दइ (दो), मोहि (मुझे) आदि विभिन्न लोक बोलियों के शब्द हैं। वाक्यगत प्रयोग भी इसी प्रकार के हैं, जैसे :

अमरावइ णं खसि पडिय। तें मग्गिउ वरु णरवइ अभीहु।

अर्थात्—मानो अमरावती खिसक पड़ी हो। उस ने नरपति से अभय वर माँगा। इतना ही नहीं, अपभ्रंश भाषा में बारहवीं शताब्दी के लिखे हुए दो शिलालेख भी मिलते हैं। यद्यपि उन की भाषा शुद्ध अपभ्रंश नहीं है, पर उन में अपभ्रंश-प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। इन में से एक शिलालेख मध्य प्रदेश के दमोह जिले में हटा तहसील से आठ मील दूर जटाशंकर स्थान से प्राप्त हुआ है। यह शिलालेख नागरी लिपि में लिखा हुआ है, जो बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का अनुमानित है।[१] शिलालेख की भाषा अपभ्रंश है। इस के लेखक कवि रल्ह हैं, जो अपभ्रंश के कवि जान पड़ते हैं। अपभ्रंश में रल्ह कवि की लिखी हुई 'जिनदत्तचउपई' मिलती है, जो तेरहवीं शताब्दी की रचना है। शिलालेख मूल रूप में परिशिष्ट के अन्त में दिया जा रहा है। भाषा की जानकारी के लिए एक पंक्ति निम्नांकित है :

सुहकरण चरण तिभुवणहरण सुकवि रल्ह परिसुक्खइ भुंभुकदेव।

इसी प्रकार 'ढोला मारू रा दूहा' में कुछ अपभ्रंश के दोहे मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं :

१. जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री के जिल्द ६१, भाग ३ में प्रकाशित 'जटाशंकर स्टोन इन्सक्रिप्शन ऑव विजयसिंह' शीर्षक बालचन्द्र जैन का लेख।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणि देखैं सज्जण बसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
उआं लगे मो लग्गसी, ऊही लाख पसाउ ॥
हइ रे जीव निलज तूं, निकस्यू जात न तोहि ।
पिय विछुडत निकस्यउ नहीं, रह्यउं लजावण मोहि ॥३७३॥

इस प्रकार अपभ्रंश एक जनप्रचलित बोली थी, जो परवर्ती काल में साहित्य की माध्यम बनी और जिस में तत्‌युगीन जनवादी प्रवृत्तियाँ मुखरित हुईं । इस का एक प्रमाण यह भी है कि 'शिक्षा' ग्रन्थ में स्वरभक्ति के उच्चारण के सन्दर्भ में जिस भौगोलिक क्षेत्र का उल्लेख क़िया गया है, वह अर्द्धमागधी और अपभ्रंश का क्षेत्र है[1] और सम्भव है कि स्वरभक्ति का प्रसार अपभ्रंश की बोलियों के कारण हुआ हो । आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अनेक शब्द अपभ्रंश भाषा में मिलते हैं । हिन्दी भाषा की पूर्ण परम्परा आज तक अपभ्रंश भाषा और साहित्य में सुरक्षित है । अपभ्रंश और हिन्दी भाषा को परस्पर जोड़ने वाली कड़ी के रूप में 'अवहट्ठ' का नाम लिया जाता है । अधिक प्रामाणिक और स्पष्ट रूप से अवहट्ठ भाषा के कवि मैथिल-कोकिल विद्यापति कहे जाते हैं । उन्होंने अपनी भाषा को देशी और अवहट्ठ दोनों रूपों में प्रकट किया है । यदि हम शब्द-रूपों की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करें तो अपभ्रंश और अवहट्ठ में विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा ।[2]

अपभ्रंश का एक अन्य शिलालेख टोडाराय कृत 'राउरवेल' है, जो कि लगभग ग्यारहवीं शताब्दी का लिखा हुआ माना जाता है । यह शिलालेख प्रिंस ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम, बम्बई में सुरक्षित है ।

अपभ्रंश और अवहट्ठ

अपभ्रंश के कवियों के उल्लेख से प्रतीत होता है कि 'अवहट्ठ' शब्द का प्रयोग परवर्ती अपभ्रंश के लिए क्रिया गया है, जो परिनिष्ठित अपभ्रंश ढल चली थी और जिस के रूपों में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था । जिस प्रकार अपभ्रंश के कवि अपशब्दों के प्रति सजग थे और अपशब्दों से भिन्न देशी भाषा का परिचय दे रहे थे उसी प्रकार अवहट्ठ के कवि भी अब्भंस और अवहंस के प्रति सावधान थे तथा उसी स्वर में देशी भाषा का गान कर रहे थे । अधिकतर विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि 'कीर्तिलता' की अवहट्ठ भाषा मैथिली अपभ्रंश का ही परवर्ती रूप है । अपभ्रंश के कवि अद्दहमाण (अब्दुलरहमान) नें 'अवहट्ठ' का उल्लेख स्वतन्त्र भाषा के रूप में किया है । वास्तव में डॉ. शिवप्रसाद सिंह का यह कथन उचित जान पड़ता है कि 'हमारे विचार से अवहट्ठ परवर्ती अपभ्रंश का वह रूप है जिस के मूल में परिनिष्ठित

---

१. वर्मा, डॉ. सिद्धेश्वर : द फ़ोनेटिक आब्जर्वेशन्स ऑव इण्डियन ग्रैमेरियन्स, दिल्ली, १९६१, पृ. ५० ।
२. मित्र, कालीपाद : सम नभाषा वर्ड्स फ्रॉम अपभ्रंश, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली के जिल्द २०, सं० ३, सित० १९४४ के अंक में प्रकाशित लेख, पृ. २५१–२७४ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश यानी शौरसेनी है। व्यापक प्रचार के कारण इस में कई रूप दिखाई पड़ते हैं। परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ठ भिन्न-भिन्न स्थानों की क्षेत्रीय भाषाओं से प्रभावित हुआ है।"[१] भाषागत परम्परा मूल में एक है, किन्तु देश, काल-प्रभाव से कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण देशी की ही भाँति अवहट्ठ का भी नाम लिया जाने लगा था। डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने इसे और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा है—'कीर्तिलता प्राच्य अपभ्रंश का, विशेषतः अवहट्ठ का, रमणीय निदर्शन है। अपभ्रंश की सामान्यतः कालसीमा ईसा की पांचवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक है। तेरहवीं शताब्दी में ही आधुनिक आर्यभाषाओं का पृथक् अस्तित्व दिखाई देने लगता है। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी संक्रान्तिकाल है। इस काल में परिनिष्ठित अपभ्रंश का लौकिक भाषाओं के साथ सम्मिश्रण हुआ। इस मिश्रण को ही अवहट्ठ कहा जाता है जैसा विद्यापति ने 'देसिल वयना' इस पद्य में निर्दिष्ट किया है।"[२] कीर्तिलता का निम्नलिखित पद्य परिनिष्ठित अपभ्रंश का उदाहरण माना जाता है :

तिहुअण खेतहि काइं तसु कित्तिवल्लि पसरेइ।
अक्खरखंभारंभ जउ मंचा बंधि न देइ॥

अतएव लोक भाषा में कीर्तिपताका और कीर्तिलता की रचना भले ही मैथिली प्रभावापन्न हो, किन्तु अपभ्रंश से वे सर्वथा अछूती नहीं हैं और यही भाषा-विषयक स्थिति निर्दिष्ट करने के हेतु 'अवहट्ठ' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। यद्यपि अपभ्रंश के कवियों ने अपनी भाषा को देशी और अवहट्ठ भी कहा है, किन्तु वह एक शैली मात्र है। और यह भी सत्य है कि उन के समय तक भाषा की एक ऐसी अवस्था का जन्म नहीं हुआ था, जिसे वे अपनी परम्परा से कोई अन्य नाम-रूप दे सकते।

डॉ. सुकुमार सेन अवहट्ठ से ब्रजबोली की उत्पत्ति मानते हैं। उन के अनुसार परवर्ती अवहट्ठ ने जिस के ऊपर मैथिली आदि स्थानीय भाषाओं का प्रभाव अवश्य पड़ा था, पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में ब्रजबोली का रूप धारण किया था। सूरदास आदि प्राचीन ब्रजभाषा के कवियों की रचनाएँ जो अहिन्दी शब्द या पद हैं वे इसी प्राचीन अवहट्ठ या प्राचीन ब्रजबोली के हैं। विद्यापति की कीर्तिलता में भी अवहट्ठ और ब्रजबोली का ऐकान्तिक सम्बन्ध पाया जाता है।[३] किन्तु सामान्यतया बुन्देली की दो धाराएँ मध्य युग में प्रचलित रही हैं : प्रथम 'ओकारान्त' की, जो कन्नौजी और ब्रज में भली भांति प्रचलित थी और दूसरी 'उकारान्त' की, जिस का प्रसार बुन्देलखण्ड से ले कर पांचाल प्रदेश तक था। फिर, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का यह कथन कि पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश गुजरात तथा पश्चिमी पंजाब से ले कर बंगाल तक

---

१. सिंह, डॉ. शिवप्रसाद : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, द्वि. सं., १९६४, पृ. ७।
२. श्रीवास्तव, डॉ. वीरेन्द्र : अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, १९६५, पृ. २९१।
३. सेन, डॉ. सुकुमार : 'भारतीय साहित्य' में प्रकाशित लेख से उद्धृत, प्रथम अंक, जन. १९५६, पृ. ७७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्भवतः जनबोली के रूप में प्रचलित रही और निश्चित रूप से शिष्ट जनों की भाषा एवं सभी प्रकार के काव्यात्मक रूपों के लिए सर्वथा उपयुक्त भाषा रही है।[1]

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

अपभ्रंश की विभिन्न बोलियों से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का जन्म माना जाता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार (१) शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, नागर अपभ्रंश से राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी बोलियाँ, (२) पैशाची अपभ्रंश से लहंदा और पंजाबी, (३) ब्राचड़ अपभ्रंश से सिन्धी, (४) महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, (५) अर्द्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी और (६) मागधी अपभ्रंश से विहारी, बंगाली, उड़िया और असमिया भाषाओं का विकास हुआ है।[2] असमिया में प्राचीन लोकगीतों को छोड़ कर अपभ्रंशमिश्रित प्रथम रचना हेमसरस्वती रचित 'प्रह्लादचरित' मानी जाती है, जो चौदहवीं शताब्दी की रचना कही जाती है। डॉ. सुकुमार सेन का कथन है[3]—'अनुमानतः दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में पूर्व अंचल की अपभ्रंश के गर्भ से बंगला का जन्म हुआ।' उस समय जनसाधारण की शिक्षा के लिए गणित के नियम एवं सांसारिक अभिज्ञता तथा व्यावहारिक नीतिबोध के सूत्र आदि अपभ्रंश के 'छड़ा' गानों के आकार में ही रचे जाते थे। वे आज भी प्रचलित हैं। गणित के वे 'छड़े' आज 'आर्या' नाम से जाने जाते हैं।[4] बंगला भाषा का प्राचीनतम रूप 'चर्यागीति' में सुरक्षित माना जाता है और चर्यागीति पूर्वी अपभ्रंश का उत्कृष्ट निदर्शन है। डॉ. विरंचिकुमार बरुआ के अनुसार असमिया भाषा का विकास सम्भवतः 'मागधी' या 'गौड़ी' अपभ्रंश से हुआ है।[5] श्री परीक्षित हाजरिका ने अपने शोधपत्र 'द कामरूपी अपभ्रंश' में चर्यापदों को कामरूमी अपभ्रंश में लिखा हुआ माना है और यह मान्यता प्रतिपादित की है कि कामरूपी अपभ्रंश पूर्वी मागधी अपभ्रंश से निकली है। भौगोलिक, जातीय, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्वी मागधी दो मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती है—गौड़, कामरूपी। कामरूपी संस्कृति किरातों (भीलों) की आदिम संस्कृति पर आधारित है। आदिम कामरूप आर्य तथा अनार्यों का अद्भुत मिश्रण है। कामरूपी अपभ्रंश का समय छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य कहा गया है। कश्मीरी भाषा के प्रथम दर्शन तेरहवीं शताब्दी के कवि शितिकण्ठ के 'महानयप्रकाश' नामक ग्रन्थ में होते हैं। तान्त्रिका अपभ्रंश के निकट है। गुजराती भाषा का आदि काव्यग्रन्थ शालिभद्रसूरि कृत 'भरतेश्वरबाहुबलिरास' बारहवीं शताब्दी की परवर्ती अपभ्रंश की रचना मानी

---

१. चटर्जी, डॉ. सुनीतिकुमार : द ओरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑव बेंगाली लैंग्वेज, पृ. १६१।
२. तिवारी, डॉ. भोलानाथ : हिन्दी भाषा, १९६६, पृ० ९५।
३. सेन, डॉ. सुकुमार : भारतीय वाङ्मय, भाग ३, वर्धा, १९५१, पृ० ६।
४. वहीं, पृ० ११।
५. वहीं, पृ० ७१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयी है। इसी प्रकार 'रेवन्तगिरिरासो' भी जूनी गुजराती या परवर्ती अपभ्रंश की काव्यरचना है। प्राचीन मराठी के ग्रन्थकारों ने अपनी भाषा के दो नाम दिये हैं—प्राकृत और देशी।[1] मराठी में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिन का संस्कृत से सम्बन्ध जोड़ना कठिन है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द हैं—डोला, पोट, हाउ, वाट, आई, बाप, ढोरी, थेंब, गवत इत्यादि। इसी प्रकार दिण्डी, ओवी वगैरह छन्द ठेठ देशी माने जाते हैं।[2] पन्द्रहवीं शताब्दी के सन्तोष मुनि नाम के ग्रन्थकार ने कहा है[3]—मागधी और शौरसेनी, पैशाची अपभ्रंश जानो। संस्कृत और प्राकृत ये षट्वाणी, छह भाषा परमानो। इस से जान पड़ता है कि महाराष्ट्र में पन्द्रहवीं शताब्दी तक काव्यभाषा के रूप में अपभ्रंश प्रचलित थी। महाराष्ट्र के महानुभाव सम्प्रदाय के साहित्य में अपभ्रंश भाषा प्राचीन मराठी के रूप में आज तक सुरक्षित है। तुकाराम महाराज के अभंगों में भी अपभ्रंश के शब्दों के नमूने मिलते हैं। जैसे—अखम (अक्षम), आणी (अनी), दिठी (दृष्टि), निकी (नीक), बापुला (बाप), माठ (मन्द), मादला (मादल), तन (तृण), चांग (चांगला), अठरा (अठारह) इत्यादि। पैशाची अपभ्रंश की ही एक शाखा व्राचड़ अपभ्रंश मानी गयी है, जो आज की सिन्धी भाषा की जननी कही जाती है। ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मध्य युग में मारवाड़ी (वर्तमान राजस्थानी) और गुजराती, व्रज, कन्नौजी और बुन्देली परस्पर में बहुत कम भिन्न थीं। किन्तु उत्तरवर्ती काल में विभिन्न परिवर्तनों से उन में बहुत अन्तर आ गया। इसी प्रकार व्राचड, चूलिका और कैकय पैशाची भी आरम्भ में एक थीं; परन्तु जातीय जीवन तथा प्रादेशिक भिन्नता एवं संस्कृति की भिन्नता से उन में बहुत अन्तर लक्षित होने लगा है। इन्हें ऐसा ही समझना चाहिए जैसा कि कोंकणी और महाराष्ट्री में भी भेद होते हुए भी मूल में कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार आज भी हिन्दकी, सिन्धी और कच्छी तीनों ही बोलियाँ कुछ हेर-फेर के साथ लगभग समान हैं। और इन तीनों का ही मूल व्राचड़ अपभ्रंश है।[4] मैकडानल के विचार में सिन्धी ही नहीं, पश्चिमी पंजाबी और कश्मीरी भी अपभ्रंश की इस धारा से विकसित हुई हैं।[5] डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन का यह कथन कि दक्षिण-पूर्व में सिन्धी कच्छी बोली से होती हुई गुजराती में विलीन हो जाती है[6] और यह अपभ्रंश की विकसित अवस्था का प्रतिपादक है। क्योंकि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ ही नहीं, उन का साहित्य भी अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अनु-

---

१. ज्ञानेश्वरी, अ. ११, ओ. २२; १०।४४, ४६; १२, १२।
२. भावे, कै० विनायक लक्ष्मण : महाराष्ट्र-सारस्वत, चौथी आवृत्ति, शक १८७३, पृ० ७।
३. वहीं, पृ. १० : 'मागधी आणि शौरसेनी, पिशाच अपभ्रंश जाणी।
संस्कृत प्राकृत या षट्वाणी, आणिकै छपन्न भाषा॥'
४. जैतली, श्री कृष्णचन्द्र टोपणलाल : सिन्धी भाषा का संक्षिप्त परिचय, पृ. ६५।
५. मैकडानल, ए. : ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, पृ. २७।
६. ग्रियर्सन सर, जॉर्ज अब्राहम (अनु. डॉ. उदयनारायण तिवारी) : भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड १, भाग १, १९५९, प. २६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमन करता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अधिकतर साहित्य बारहवीं शताब्दी का लिखा हुआ मिलता है। दसवीं शताब्दी की कोई भी रचना अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। यदि भाषा के विकास की दृष्टि से विचार किया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि अपभ्रंश भाषा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की जननी है। उदाहरण के लिए, अपभ्रंश का एक वाक्य है—'घोडा मारिउ'। हिन्दी में इस के लिए 'घोड़ों ने मारा', पंजाबी में 'घोड़याँ ने कुट्या' और गुजराती में 'घोड़ाओ ए मारथुं' तथा मराठी में 'घोड़यांनी मारिले' एवं सिन्धी में 'घोड़े मारयो' और असमिया में 'घोड़ायेइ मारिले' प्रयोग प्रचलित हैं। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ी में 'घोरा मन मारे' और बुन्देलखण्डी में 'घोरन ने मारो' प्रयोग चलते हैं। बंगला में भी 'घोड़ा गुली मेरेछे' प्रयोगों को देखने से स्पष्ट है कि 'घोडा' सभी में अपभ्रंश भाषा का शब्द आज तक प्रचलित है। दक्षिण की भाषाओं की परम्परा अवश्य भिन्न है। जैसे: कुदिर ए तल्लो (मल०), गुर्रमुलुछे कोट्टावड्टा, रचना की दृष्टि से भी वे भिन्न हैं।

अपभ्रंश साहित्य का प्रारम्भिक काल

आधुनिक युग में प्राच्य विद्याओं के उत्तरोत्तर अध्ययन एवं अनुसन्धान से अब यह स्पष्ट हो चुका है कि संस्कृत, प्राकृत की भाँति अपभ्रंश एक स्वतन्त्र भाषा थी और उस में शास्त्रीय परम्परा के स्तर पर साहित्य रचा गया। यद्यपि आज अपभ्रंश का सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु जो कुछ प्राप्त हो सका है वह परिमाण में अल्प होने पर भी मूल्य में भारी है। भाषागत शब्द-रूपों की दृष्टि से निय प्राकृतों से ले कर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की पूर्व अवस्था तक अपभ्रंश का सतत प्रवाह लक्षित होता है। यद्यपि अपभ्रंश पर प्राकृतों का पानी विशेष रूप से चढ़ता रहा है, किन्तु परवर्ती काल में वह संस्कृत भाषा और साहित्य से भी प्रभावापन्न रही है। वस्तुतः अपभ्रंश भाषा और साहित्य उत्तर मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और साहित्य की वह शृंखला है, जो एक ओर संस्कृत तथा प्राकृत से सम्बद्ध है तथा दूसरी ओर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं और उन के साहित्य से सम्पृक्त है। अतएव प्राच्य साहित्य के अध्येताओं और अनुसन्धित्सुओं के लिए इस भाषा और साहित्य का विशेष महत्त्व है।

अपभ्रंश का सर्वप्रथम उल्लेख ई. पू. तृतीय शताब्दी में रचित महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है। भाष्यकार पतंजलि से ले कर आचार्य हेमचन्द्रसूरि तक सभी संस्कृत वैयाकरणों ने किसी न किसी रूप में अपभ्रंश का उल्लेख किया है। किन्तु उन के विवरण से पता चलता है कि अपभ्रंश उन के समय में एक विकृत (विकसित) भाषा थी। आ. हेमचन्द्र के समय में अवश्य अपभ्रंश एक पूर्ण साहि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्यिक भाषा छन्द, व्याकरणशास्त्र आदि से समृद्ध हो चुकी थी। अतएव इस दृष्टि से विचार किया जाये तो अपभ्रंश का प्रारम्भिक काल भाष्यकार पतंजलि के समय से मानना चाहिए। किन्तु उन के निर्देशों से यह स्पष्ट नहीं होता कि अपभ्रंश तब तक भाषा का स्थान ग्रहण कर चुकी थी। यथार्थ में भाषा के पद पर आसीन होने के लिए कम से कम दो-तीन सौ वर्षों का समय लगा होगा। अतएव हम यह मान सकते हैं कि लगभग प्रथम शताब्दी के पूर्व तक का काल अपभ्रंश भाषा की रचनागत प्रक्रिया का प्रयोग-काल था। अपभ्रंश तब तक साहित्य की भाषा नहीं बनी थी। इस लिए इसे हम प्रयोग-काल भले ही कह लें, किन्तु अपभ्रंश का 'उकारबहुला' बोली के रूप में प्रथम स्पष्ट उल्लेख भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्य लोकधर्मी होते हैं। प्रत्येक युग में लिखे जाने वाले नाटकों में पात्रों के अनुसार भाषा का विधान किया जाता रहा है। अतएव संस्कृत के नाटकों में भी संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश शब्द-रूपों की सर्वप्रथम बानगी हमें संस्कृत के नाटकों में मिलती है। अभी इस दृष्टि से संस्कृत नाटकों का मूल्यांकन नहीं किया गया। विविध भारतीय भाषाओं के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से संस्कृत के प्रारम्भिक नाटक विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आचार्य भरतमुनि (ई. पू. २००-२०० ई.) के 'मोरल्लउ नच्चन्तउ। महागमे सम्भन्तउ॥' (३२, ६६) से ले कर अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण', भास के 'पंचरात्र', कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' आदि नाटकों में अपभ्रंश की उकारान्त प्रवृत्ति की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।[1] संस्कृत नाटकों में उद्धृत प्राकृत-अपभ्रंश तथा अपभ्रंश-मिश्रित संस्कृत-प्राकृत के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश बहुत पहले से ही बोलचाल की भाषा प्रचलित थी। इसे नाट्यकारों ने 'देशभाषा' के नाम से अभिहित किया था। भरतमुनि का कथन अत्यन्त स्पष्ट है :

> अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषाविकल्पनम्।
> भाषा चतुर्विधा ज्ञेया दशरूपे प्रयोगतः॥
> संस्कृतं प्राकृतं चैव यत्र पाठ्यं प्रयुज्यते।
> अतिभाषार्यभाषा च जातिभाषा तथैव च॥ १७, २६-२७

भाषा चार प्रकार की कही गयी है—अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा तथा योन्यन्तरी। देवताओं की वाणी को अतिभाषा, राजाओं की बोली को आर्यभाषा, शिष्ट तथा म्लेच्छ लोगों की बोली के भेद से दो प्रकार की जातिभाषा (प्राकृत, संस्कृत), और पशु-पक्षी आदि की बोली को योन्यन्तरी भाषा नाट्यशास्त्र में कहा गया है।[2] सामान्यतः जन-सामान्य प्राकृत का व्यवहार करता था। दरिद्र, अशिक्षित, ऐश्वर्य से प्रमत्त, श्रमण, तपस्वी, भिक्षुक, भागवत, तापस, बालक आदि तथा निम्न वर्ग के लोगों

---

१. विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट द्रष्टव्य है।
२. भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, १७, २८-३२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए नाटक में प्राकृत के प्रयोग का विधान है। केवल शिष्ट, वेदपाठी ब्राह्मण, चोक्ष, गणिका तथा शिल्पी आदि के लिए संस्कृत भाषा के प्रयोग का अभिधान है।[1] अन्य तथा सभी शुद्ध जातियों के लिए शौरसेनी भाषा एवं देशी छन्दों तथा भाषा के प्रयोग का निर्देश किया गया है। नाट्य में काव्य के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का उल्लेख किया गया है। मुख्य रूप से सात भाषाओं का निर्देश है—मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या (पूर्वी), शौरसेनी, अर्द्धमागधी, वाल्हीका (पंजाबी ?) और दाक्षिणात्या। निम्नवर्ग के तथा जंगली लोगों की भाषा विभाषा कही गयी है।[2] इस प्रकार भरतमुनि ने 'देश भाषा' और 'विभाषा' के रूप में जिन बोलियों का उल्लेख किया है, वे उस युग की देशी भाषाएँ थीं। उन के द्वारा निर्दिष्ट 'आभीरोक्ति' और 'उकारबहुला' का सम्बन्ध अपभ्रंश से रहा है। अतएव अपभ्रंश का निकास तथा विकास देशी-परम्परा से हुआ है। संस्कृत काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ के समकालीन लक्ष्मीधर का कथन तो और भी स्पष्ट है। उन के अनुसार अपभ्रंश आभीर आदि बोलियों का निचय है। उस में कहीं-कहीं अपशब्द होने के कारण कवि जन उस का प्रयोग नहीं करते।[3] उक्त तथा अन्य उल्लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपभ्रंश जन सामान्य की भाषा थी, जो आगे चल कर काव्य की भाषा बन गयी।

अपभ्रंश : काव्यभाषा

अपभ्रंश काव्य की भाषा कब बनी, यह कहना बहुत कठिन है। किन्तु अनुमान यह है कि छठी शताब्दी के लगभग अपभ्रंश में काव्य-रचना होने लगी थी। क्योंकि वलभीनरेश धरसेन द्वितीय के शिलालेख से पता चलता है कि उन के पिता संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में प्रबन्ध काव्य रचने में निपुण थे।[4] संस्कृत के छठी शताब्दी के प्रसिद्ध समालोचक भामह ने भी संस्कृत, प्राकृत के साथ अपभ्रंश में काव्य-रचना का विधान किया है।[5] छठी शताब्दी में भाषाकाव्य की रचना होने लगी थी। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'हर्षचरित' में प्राकृत के प्रसिद्ध कवि प्रवरसेन के साथ गद्यकार भट्टार हरिचन्द्र का उल्लेख किया है।[6] अतएव सातवीं शताब्दी में भाषाकाव्य की जो परम्परा प्रचलित थी, वही हमें अपभ्रंश की काव्य-रचनाओं में परिलक्षित होती है। और इस के निदर्शन महाकवि स्वयम्भू के 'स्वयम्भूछन्द' में मिलते

---

१. भरत मुनि : नाट्यशास्त्र, १७, ३३-३६।
२. वहीं १७, ४७-५०।
३. अपभ्रंशस्तु भाषा स्यादाभीरादिगिरां चयः।
   कविप्रयोगानर्हत्वान्नापशब्दः स तु क्वचित्॥—षड्भाषाचन्द्रिका, १,३१।
४. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भा. १०, अक्तूबर, १८८१, पृ. २८४।
५. भामह : काव्यालंकार, १,१६।
६. पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
   भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥—हर्षचरित, १.१२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। अपभ्रंश के प्राचीनतम जिन कवियों का उल्लेख मिलता है उन में गोविन्द और चतुर्मुख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि उन दोनों महाकवियों की रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं, किन्तु अपभ्रंश के कई प्राचीन कवियों ने उन की रचनाओं का सादर उल्लेख किया है। कवि गोविन्द ने कृष्णविषयक प्रबन्धकाव्य लिखा था, इस की सूचना महाकवि स्वयम्भू के 'स्वयंभूच्छन्द' से मिलती है।[1] महाकवि स्वयम्भू के अतिरिक्त देवसेनगणि, नयनन्दी तथा धनपाल (पालनपुरवासी) आदि ने गोविन्द कवि का उल्लेख किया है। महाकवि धवल कृत हरिवंशपुराण की आद्य प्रशस्ति से केवल इतना विदित होता है कि गोविन्द श्वेताम्बर जैन थे और उन्होंने सनत्कुमार-चरित नामक मनोहर प्रबन्धकाव्य रचा था।[2] किन्तु अनुमान यह किया जाता है कि वे सौराष्ट्र के निवासी थे और उन्होंने अपभ्रंश भाषा में सनत्कुमारचरित के अतिरिक्त कृष्णकाव्य (हरिवंशविषयक) आदि विषयों पर सुन्दर रचनाएँ रची थीं। गोविन्द की भाँति चतुर्मुख भी महाकवि थे। अपभ्रंश के प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने चतुर्मुख का सादर स्मरण किया है। महाकवि धवल ने तो हरिवंशकथा चतुर्मुख के अनुसार ही कही है।[3] कवि हरिषेण, श्रीचन्द्र, धवल, पं. लक्ष्मण, धनपाल, वीर, रइधू तथा महिन्दु आदि ने चतुर्मुख और स्वयम्भू का समान रूप से उल्लेख किया है। महाकवि स्वयम्भू के शब्दों में चतुर्मुख 'पद्धडिया के सम्राट्' थे। अपभ्रंश साहित्य को चतुर्मुख की पद्धडिया छन्द की देन अपूर्व है। अतः महाकवि स्वयम्भू के पूर्ववर्ती कवियों में गोविन्द, चतुर्मुख, गोवर्धन, गोनद, द्रोण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों के उल्लेख से जहाँ अपभ्रंश भाषा और साहित्य की प्राचीनता का पता लगता है, वहीं प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की महत्त्वपूर्ण कड़ी का परिचय उन की रचनाओं के उपलब्ध न होने से नहीं मिल पाता। परन्तु यह निश्चित है कि महाकवि स्वयम्भू की पूर्ववर्ती परम्परा दीर्घकाल से चली आ रही थी। 'स्वयम्भूच्छन्द' में पूर्ववर्ती जिन अपभ्रंश कवियों की रचनाओं के उद्धरण मिलते हैं उन कवियों के नाम हैं—[4] चतुर्मुख, धूर्त, माउरदेव, धनदेव, आर्यदेव, छइल्ल, गोविन्द, शुद्धशील, जिनदास इत्यादि। इसी प्रकार स्वयम्भू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' में भी अपभ्रंश के कतिपय कवियों का नामोल्लेख है। अतएव लगभग दो सौ वर्षों से पूर्व से यह परम्परा आगत प्रतीत होती है। इसी सन्दर्भ में भामह के कथन को ध्यान में रख कर यह निश्चय हो जाता है, कि छठी शताब्दी में अपभ्रंश-काव्यों की रचना होने लगी थी। क्योंकि गोविन्द और चतुर्मुख जैसे महाकवि स्वयम्भू से कई दशकों के पूर्व काव्य-रचना कर चुके थे। अतएव महाकवि स्वयम्भू के लिए वे आदर्श बन सके।

---

१. महाकवि स्वयम्भू : स्वयम्भूच्छन्द ४. १०. २, ४. ११. १।
२. सणकुमार जें विरयउ मणहरु, कइ गोविंद पवरु सेयंबरु।—हरिवंशपुराण १. ३. १६।
३. हरिपंडु सुआणकहा चउमुह वासेहि भासिगा जह यां।—वहीं १. १. २।
४. महाकवि स्वयम्भू : स्वयम्भूच्छन्द ४. २. १-४, १२. १।

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त विवरण के अतिरिक्त 'कुवलयमालाकहा' के अध्ययन से पता चलता है कि सन् ७७९ ई. में विभिन्न देशी भाषाएँ प्रचलित थीं और संस्कृत के साथ प्राकृत तथा अपभ्रंश में भी काव्य-रचना होती थी। कई स्थलों पर अपभ्रंश के निदर्शन भी कथा में मिलते हैं। उदाहरण के लिए—मध्यदेश में 'तेरे मेरे आउ', मालवा में 'भाउय भइणी तुम्हें' और गुजरात में 'णउ रे भल्लउं' तथा कोशल में 'जल तल ले' आदि जो वचन-व्यवहार प्रचलित था, वह अपभ्रंश से बहुत कुछ साम्य रखता है।[1] यही नहीं, कथा में प्रयुक्त गीत अपभ्रंश की गीति-शैली से रंच मात्र भी भिन्न नहीं जान पड़ते। जैसे :

रणंत लोह संखलं झरंत दाण वेब्भलं
खलंत पाय बंधणं ललंत रज्जु चूलयं।
चलंत कण्ण संखयं फुरंत दीह चामरं
रणंत हार घंटयं गलंत गंडवासयं॥

वस्तुतः कुवलयमालाकहा देशी भाषा में निबद्ध होने के कारण देशी भाषाओं से प्रभावापन्न है। अतएव भाषा सरल प्राकृत होने पर भी अपभ्रंश के निकट है। उदाहरण के लिए—अवि य कच्छिज्जंति गंइदे, पल्लाणिज्जंति तुरंगमे, भारिज्जंति करहे, भरिज्जंति बइल्ले, जुप्पंति रहवरे, जोइज्जंति सयडे, उट्ठाविज्जंति भारिए, संभाविज्जंति जंपाणिए, संभारिज्जंति कम्मयरए, संजमिज्जंति भंडयरे, संवेल्लिज्जंति पडउडीओ, परिहिज्जंति समायोगे, घेप्पंति य सरसरासणझसचक्ककोंतासि णिवहे पक्कलपाइक्कणिवहेणं ति।'

तथा— मारेह खाह पियह य किं वा पढिएण किं व धम्मेण।
एयं चिय चितेंतो भरिऊणं काहलो होइ॥
जो उण गुरुयण सेवी धम्माधम्माइं जाणिउं महइ।
सुय देवय गुरु भत्तो भारिउं सो पंडिओ होइ॥

एवं— हण हण हण त्ति मारे चूरे फालेह लेह लुंपेह।
खर सिंग सद्द हलबोल गब्भिणो धाइओ सद्दो॥
सो णत्थि कोइ देसो भूमि विभायम्मि णेय सो पुरिसो।
जो तत्थ णेय विद्धो अदिट्ठ भिल्लाण भल्लीहिं॥

इस प्रकार संस्कृत के नाटकों से ले कर प्राकृत तथा संस्कृत-साहित्य में अपभ्रंश के बिखरे हुए नमूने मिलते हैं। लोकभाषाओं के साहित्यीकरण की यह प्रवृत्ति हमें ईसा की लगभग दूसरी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक सतत प्रवर्तमान परिलक्षित होती है। अतएव अभिनव गुप्त के तन्त्रसार में भी प्राकृत-अपभ्रंश मिश्रित काव्य-

---

१. विशेष विवरण के लिए परिशिष्ट देखिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना मिलती है। शैवागम साहित्य में, मराठी के प्राचीन महानुभाव सम्प्रदाय के साहित्य में तथा जूनी गुजराती साहित्य में अपभ्रंश कविता के अच्छे नमूने लक्षित होते हैं।[2] पं. दामोदर कृत 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' में, जो कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की रचना कही जाती है, कोशली अपभ्रंश भाषा का अच्छा परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए :

अंधारीं राति चोरु ढूक
आगि लागें वांस फूट
छूट वाछा भमि भमि कूद
पूत करें वधावें नाच।

इसी प्रकार साधुसुन्दरगणि विरचित 'उक्तिरत्नाकर' में देशी शब्दों का विशेष रूप से संग्रह लक्षित होता है, जिस में अधिकांश अपभ्रंश शब्द हैं। निश्चय ही भारतीय आर्यभाषा का दसवीं शताब्दी का सम्पूर्ण साहित्य किसी न किसी रूप में अपभ्रंश भाषा और साहित्य से प्रभावित तथा अपभ्रंश शब्दावली से आकलित रहा है। यह परम्परा अनवच्छिन्न रूप से गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तक प्रवर्तमान रही है। भाषाविदों का यह कथन इस सन्दर्भ में समुचित प्रतीत होता है कि भारतीय आर्यभाषा के मूर्धन्य वर्ण देशी उत्पत्ति के हैं, क्योंकि द्रविड़ भाषाओं में 'ओं' नहीं होता। और यही कारण है कि वैदिक मूर्धन्य 'ळ' का प्रयोग भले ही लौकिक संस्कृत में न होता हो, पर महाराष्ट्र तथा दक्षिण के परिवारों में आज भी अपने उच्चारण के साथ शुद्ध रूप में प्रचलित है। इस प्रकार देशीकाव्य की परम्परा ईसवी की लगभग तृतीय शताब्दी से प्रारम्भ हुई, अनुमानित है। डॉ. जैन के शब्दों में : "प्राकृत कथा-साहित्य का काल ईसवी सन् की लगभग चौथी शताब्दी से ले कर साधारणतया १६वीं-१७वीं शताब्दी तक चलता है। इस में कथा, उपकथा, अन्तर्कथा, आख्यान, आख्यायिका, उदाहरण, दृष्टान्त, वृत्तान्त और चरित आदि के भेद से कथाओं के अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं।"[3] लगभग पाँचवीं शताब्दी के अनन्तर ही अपभ्रंश का साहित्य लिखा गया। यद्यपि अपभ्रंश का प्रारम्भिक साहित्य आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु प्राकृत की परम्परा में होने पर भी अनुमान यह किया जाता है कि वह लोक भाषा का साहित्य रहा होगा। प्राकृत के भी काव्य-साहित्य में लोक साहित्य के सामान्य रूप लक्षित होते हैं।

---

१. तुरिआण—तरलग्गु घड्डव्वोहिणहं उज्जोअसि एह।
वितत्त समत्थ फुरण कमेण कमेणलिहालमिसाणमिपंचावत्तु ॥६, २॥
सोच्छिअ भासइ भवतरु विसरउ सअलउ अद्धजालु निअघअणिपरिमेहहरो ॥६, १०॥
२. परिशष्ट देखिए।
३. जैन, डॉ. जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. ३६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश साहित्य का काल-विभाजन

यद्यपि अपभ्रंश का बोली के रूप में ई. पू. लगभग तीसरी शताब्दी में उल्लेख मिलता है, किन्तु अनुमान यह है कि अपभ्रंश उस युग में नाट्य बोली के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और नाटकों में उस का प्रयोग होने लगा था। अतएव अपभ्रंश का आदि काल ई. पू. तीसरी शताब्दी से माना जा सकता है। काल-विभाजन इस प्रकार है :

१. आदिकाल—ई. पू. ३०० से ६०० ई. तक
(भाष्यकार पतंजलि से ले कर संस्कृत साहित्य के समालोचक आचार्य भामह तक)

२. मध्यकाल—६००–१७०० ई.
(अ) पूर्व मध्यकाल—६००–१२०० ई.
(चतुर्मुख-स्वयम्भू से ले कर आचार्य हेमचन्द्र तक)
(ब) उत्तर मध्यकाल—१२००–१७०० ई.
(आचार्य हेमचन्द्र सूरि से कवि भगवतीदास तक)

३. आधुनिक काल (अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से....)
(रिचर्ड पिशेल से ले कर अब तक)

वैयाकरण भर्तृहरि के वाक्यपदीय में उद्धृत आचार्य व्याडि, महर्षि पतंजलि तथा भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित 'उकारबहुला' बोली तथा अपभ्रंश का निर्देश स्पष्ट रूप से अपभ्रंश भाषा के अस्तित्व को सूचित करते हैं। किन्तु परवर्ती उद्धरणों से तथा साहित्यिक रचनाओं के परिशीलन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निश्चित रूप से छठी शताब्दी में अपभ्रंश में काव्य-रचना होने लगी थी। अतएव छठी शताब्दी के पूर्व का काल अपभ्रंश का वह युग रहा होगा, जिस में प्राकृत की धारा से अपभ्रंश का स्वतन्त्र विकास हो रहा था और प्राकृत-साहित्य में अपभ्रंश का भी देशी भाषा के रूप में प्रयोग होने लगा था। अभी इस दृष्टि से प्राकृत-साहित्य का अध्ययन व समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। भाषा की दृष्टि से अवश्य डॉ. चटर्जी के निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण तथा मान्य हैं। उन का कथन है—"ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य में आरम्भ हुई अपभ्रंश भाषा-परम्परा तुर्की-ईरानी विजय के समय में भी बराबर चल रही थी। अपभ्रंश की कुछ विशेषताएँ, उदाहरण के लिए अन्तिम 'ओ' का क्षयित हो कर 'उ' हो जाना, इस के भी पहले ईसा की तृतीय शताब्दी में ही पश्चिमोत्तरी प्राकृत में दृष्टिगोचर होती है।"[१] इस प्रक्रिया के निर्माण में लगभग दो शताब्दियाँ अवश्य लगी होंगी। अतएव पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपभ्रंश भाषा के अस्तित्व का ही नहीं, साहित्य का भी अनुमान होने लगता है। पं. राहुल

१. चटर्जी, डॉ. सुनितिकुमार : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, १९५७, पृ. ११७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांकृत्यायन ने अपभ्रंश-काल का समय ५५०-१२०० ई. माना है,[1] जो उचित जान पड़ता है। क्योंकि वाणभट्ट ने भाषाकवि ईशान का उल्लेख किया है, जो प्राकृतकवि से भिन्न है। छठी शताब्दी के पूर्व अपभ्रंश काव्य रचने का अनुमान इस लिए भी किया जा सकता है कि भरत मुनि ने विभाषा के रूप में जिन बोलियों का उल्लेख किया है, अभिनव गुप्त ने उन की पुष्टि करते हुए ग्रामीण जनों की बोलियों को अपभ्रंश कहा है।[2] उक्त दोनों प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी के लगभग निश्चय रूप से अपभ्रंश भाषा में काव्य-रचना होने लगी थी।

इस प्रकार अपभ्रंश-साहित्य के इतिहास में भाषा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से छठी शताब्दी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। छठी शताब्दी के पूर्व का युग अपभ्रंश का आदि-काल रहा है, जिस में अपभ्रंश बोली के विभिन्न स्तरों पर विकास करती हुई कदाचित् लोकनाट्यों के माध्यम से साहित्य के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुई। छठी शताब्दी का परवर्ती काल भाषा तथा साहित्य का वह संक्रमण काल रहा है, जिस में आभिजात्य प्रवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा और साहित्य किंचित् नव दिशा की ओर उन्मुख हुआ। अतएव लोक-साहित्य की कई विशेषताएँ अपभ्रंश-साहित्य में लक्षित होती हैं। इस साहित्य का ज्यों-ज्यों विकास होता गया, यह शास्त्रीय परम्परा से हट कर जनवादी प्रवृत्तियों से समन्वित होता गया। अपभ्रंश काव्य में स्वच्छन्दता-मूलक प्रवृत्तियाँ परवर्ती काल में विशेष रूप से विकसित हुईं। वस्तुतः मध्यकाल (६००-१७०० ई०) ही और मुख्य रूप से पूर्व मध्यकाल अपभ्रंश की काव्य-रचना का प्रमुख काल रहा है। पूर्व मध्यकाल में विशेष रूप से प्रबन्ध काव्य लिखे गये। प्रबन्ध काव्यों की संख्या अपभ्रंश साहित्य में सब से अधिक है। सभी प्रबन्ध काव्य सन्धियों में निबद्ध हैं, और सन्धियाँ कड़वकबद्ध हैं। प्रबन्ध काव्यों की यह विशेष शैली अप-भ्रंश साहित्य की देन है। परवर्ती काल में हिन्दी में रचे गये चरितमूलक या प्रेमाख्यानक अथवा लोकाख्यानक काव्यों पर अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों की इस शैली की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। शैलीगत प्रयोगों के विविध रूपों की दृष्टि से भी अपभ्रंश और हिन्दी काव्यों का अभी तक प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत नहीं किया गया। उदाहरण के लिए, हिन्दी के महाकवि तुलसीदास और विशेषकर सूरदास की विभिन्न पद-शैलियों पर तथा विद्यापति के गीतों पर अपभ्रंश शैली का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। अपभ्रंश-साहित्य में अधिगृहीत वस्तु ही लोकाख्यानक नहीं है, वरन् प्रयुक्त गीत तथा अधिकांश छन्द लोक-शैली में अनुस्यूत हैं। लोक-शैली के विभिन्न रूप विविध शताब्दियों में रचे गये अपभ्रंश काव्यों में लक्षित होते हैं। जिस प्रकार कहीं-कहीं लोक-कथाओं को आभिजात्य परिवेश दे दिया गया है या साभिप्राय अथवा

---

१. सांकृत्यायन, राहुल : संस्कृत काव्यधारा, पृ. ४७२।
२. भाषा संस्कृतापभ्रंशः। भाषापभ्रंशस्तु विभाषा। सा तत्तद्देश एव गह्वरवासिनां प्राकृतवासिनां च। भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र की विवृति, १७, ४६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोद्देश्यमूलक घटनाओं की नियोजना की गयी है, उसी प्रकार गीतों एवं मात्रिक वृत्तों को वर्णिक रूपों से भी वर्णित किया गया है, और कहीं-कहीं संस्कृत के वर्णिक वृत्तों में भी वर्णन किये गये हैं। इस प्रकार प्रमुख त्रिविध शैलियों में अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्य रचे हुए मिलते हैं। रचनागत भेद से अपभ्रंश-साहित्य में पौराणिक महाकाव्य, चरितकाव्य, कथाकाव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य आदि काव्य-विधाएँ परिलक्षित होती हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्य में काव्य के रूप में कथाएँ लिखने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है। तीर्थंकर महावीर और उन के अनुयायी श्रमणसाधुओं में दृष्टान्त तथा निदर्शन रूप में कथा कहने की प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक थी। कथाएँ लिख कर एवं मौखिक रूप में धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ के मर्म को समझाने के लिए कही जाती थीं। आज तक जैन साधुओं में यह परम्परा अक्षुण्ण है। सातवीं शताब्दी के लगभग प्राकृत तथा अपभ्रंश में कई प्रकार की कथा-मूलक काव्य रचनाएँ हो चुकी थीं, जिन का विवेचन संस्कृत में आचार्य आनन्दवर्धन और प्राकृत में आचार्य हेमचन्द्र ने किया। उद्योतनसूरि ने पाँच प्रकार के कथाकाव्यों का उल्लेख किया है—[1] सकलकथा, खण्डकथा, उल्लापकथा, परिहासकथा तथा अवरा कथाकाव्य। संस्कृत में कथा गद्य में तथा प्राकृत-अपभ्रंश में पद्य में लिखने का प्रचार था। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' प्राकृत की प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण रचना रही है, जो आज उपलब्ध नहीं होती। संस्कृत के परवर्ती कथा, चरित तथा आख्यायिका लेखकों पर बृहत्कथा का अत्यन्त प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि संस्कृत में भी कुछ कथाओं का संकलन पद्य में किया गया, किन्तु वह बृहत्कथा का अनुकरण मात्र है। मूलतः संस्कृत कथाएँ गद्य में हैं। वेदों में अवश्य कुछ आख्यानों का निर्देश मिलता है। परन्तु वे उस अर्थ में कथाएँ नहीं कही जा सकतीं, जिस रूप में बृहत्कथा तथा अन्य पद्यबद्ध कथाएँ विस्तार से वर्णनात्मक रूप में लिखी गयीं। उन में केवल वर्णन ही प्रधान नहीं है, किन्तु भाव, चरित्र तथा दृश्यों का भी प्रसंगानुसार सूक्ष्म अंकन हुआ है। अतएव घटनाओं एवं आख्यानों के उल्लेखों से उन की तुलना करना समुचित नहीं होगा। इसी प्रकार अन्य संहिता आदि ग्रन्थों में दृष्टान्त निदर्शक आख्यानों का ही निर्देश मिलता है। ऐसे आख्यान बृहत्कथा या कथाकाव्य से नितान्त भिन्न हैं, और इस लिए इन की परिगणना काव्य साहित्य के अन्तर्गत नहीं की जानी चाहिए।

आठवीं शताब्दी से ही अपभ्रंश में लिखा हुआ सिद्ध साहित्य मिलने लगता है। अपभ्रंश का अधिकतर साहित्य आठवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य लिखा गया। इस साहित्य में जनवादी प्रवृत्तियों से ले कर सामन्तीय भावनाओं तक का सरस एवं सूक्ष्म चित्रण परिलक्षित होता है। दसवीं शताब्दी में प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश अथवा स्वतन्त्र रूप से अपभ्रंश भाषा में शिलांकित होने लगे थे। राजा भोज के द्वारा

---

१. ताओ पुण पंच कहाओ। तं जहा—सयलकहा, खंडकहा, उल्लावकहा, परिहासकहा, तहावरा कहिय त्ति। —कुवलयमाला, पृ. ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कीर्ण कराये गये शिलालेखों में प्राकृत के साथ अपभ्रंश के भी निदर्शन प्राप्त होते हैं, जो आज भी धारा नगरी की श्री को अलंकृत करने वाले हैं। राजा भोज के द्वारा विरचित 'सरस्वती कण्ठाभरण' में अपभ्रंश के कई पद्य मिलते हैं।[1] उन के युग में अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अच्छा प्रचार था। परवर्ती काल में अपभ्रंश साहित्य का उत्तरोत्तर विकास होता गया। इन शताब्दियों में अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के साथ विकासशील रही। अतएव अपभ्रंश-साहित्य पर संस्कृत भाषा और साहित्य का प्रभाव भली भाँति लक्षित होता है। अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों पर विशेष रूप से महाकवि कालिदास और बाणभट्ट की काव्य-कृतियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। दृश्य-वर्णनों में ही नहीं, बिम्ब-विधान और समासमूलक शैली पर भी संस्कृत साहित्य की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

अपभ्रंश साहित्य विभिन्न विधाओं में विकसित होता रहा। जन-जीवन की साधारण से साधारण घटनाओं तथा लोकोपयोगी विषयों पर इस साहित्य की रचना होती रही। अतएव स्तुति-पूजा से से ले कर पौराणिक एवं महाकाव्यों तक की रचना अपभ्रंश भाषा में हुई। विभिन्न प्रकार की गीतियाँ भी लिखी गयीं। सिद्धों की गीतियों के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से कई प्रकार की गीतियाँ मिलती हैं। इन गीतियों में नेमिगीत, पार्श्वगीत, चेतनगीत आदि मुख्य काव्यात्मक रचनाएँ हैं। यह गीति-साहित्य प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा में भी रचा गया। किन्तु आज तक न तो वह प्रकाश में ही आया और न आज तक उस की भाषा तथा कलात्मक विशेषताओं का विचार किया गया। वल्हव कृत नेमीश्वरगीत, छीहल कृत उदरगीत तथा गुणचन्द रचित नेमिराजुल-गीत एवं सिंहनन्दि विरचित रावलियो गीत आदि कई प्रकार के गीत हैं। अधिकतर गीत लोकशैली में लिखे गये। किन्तु जिस प्रकार अपभ्रंश साहित्य की यह विशेषता है कि लोककथाओं और लोकगीतों को आभिजात्य या परिनिष्ठित रूप दिया गया, उसी प्रकार कहीं-कहीं संस्कृत-साहित्य की आभिजात्य वृत्ति का भी अनुकरण किया गया। परन्तु लोकधर्मी यथार्थताओं का विशेष रूप से सन्निवेश परिलक्षित होता है। यही कारण है कि चर्चरी, रास, फागु, चूनड़ी आदि विधाओं में लोकधर्मी प्रवृत्ति प्रवर्तमान है। यही नहीं, काव्य साहित्य में विविध वर्णिक और मात्रिक छन्दों को भी विभिन्न लोक-शैलियों में ढाल कर उतारा गया। अतएव आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के साहित्य में अस्सी प्रतिशत छन्द अपभ्रंश साहित्य से आगत हैं। अपभ्रंश के प्रायः सभी मुख्य छन्द मराठी, गुजराती तथा राजस्थानी-साहित्य में देखने को मिल जाते हैं, जिन का विकास लोक-परम्परा से हुआ है। परवर्ती काल में अपभ्रंश-साहित्य परिनिष्ठित अपभ्रंश में लिखने की प्रवृत्ति प्रचलित हो जाने पर भी लोकभाषा की शब्दावली तथा लोकशैलियों का बराबर प्रयोग होता रहा। इस दृष्टि से पं. रइधू और विद्यापति का

---

१. परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। रइधू की भाषा में जहाँ बुन्देली, ब्रज तथा राजस्थानी शब्द मिलते हैं, वहीं विद्यापति की पदावली में मिथिला, अवहट्ठ तथा देशी शब्दावली ही नहीं, लोकगीतों की विभिन्न शैलियों का समाहार भी लक्षित होता है। लोक-शैलियों में निबद्ध होने के कारण विद्यापति के गीत विभिन्न अंचलों में मौखिक रूप से सुरक्षित रह सके। यद्यपि अपभ्रंश की प्रबन्ध रचनाओं में विभिन्न मात्रिक छन्दों का प्रयोग मिलता है, किन्तु उन पर कई स्थलों पर लोकप्रचलित गीतात्मक शैलियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। यही कारण है कि अपभ्रंश के अनेक छन्द संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के छन्द-ग्रन्थों में नहीं मिलते। जो मिलते भी हैं, उन में कहीं न कहीं कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। इस लिए एक ही प्रबन्धकाव्य के सभी छन्दों का वर्गीकरण और विश्लेषण करना एक स्वतन्त्र शोध का विषय है। अभी तक अपभ्रंश काव्य साहित्य के छन्दों का इस प्रकार से स्वतन्त्र रूप में कोई अध्ययन नहीं किया गया। अतएव यह भी एक शोध-अनुसन्धान का अच्छा विषय है।

प्राकृत का कथा-साहित्य

यद्यपि लोकाख्यान सहस्रों वर्षों से जन-जन की भाषा में प्रत्येक देश में मौखिक रूप से प्रचलित रहे हैं, किन्तु उन का लिखित रूप बहुत प्राचीन नहीं है। साहित्य लेखन की परम्परा के प्रचलित हो जाने के बहुत बाद लोकाख्यानों का सन्निवेश काव्यात्मक रूपों में संस्कृत और तदनन्तर प्राकृत-साहित्य में किया गया। लोकाख्यानों का समावेश भारतीय साहित्य में किन्हीं अभिप्राय विशेषों को लक्ष्य में रख कर किया गया परिलक्षित होता है। अतएव अभिप्रायों के अनुरूप उन में विविध रूप संयोजना के साथ लक्षित होते हैं। कहीं-कहीं तो लोकाख्यान धार्मिक अभिप्रायों में ऐसे संयोजित मिलते हैं कि उन का रूप ही परिवर्तित हो गया है और वे धार्मिक कथा मात्र बन गये हैं। जिन में परिवर्तन कम या किंचित् मात्र हुआ है, वे आज भी लोक-कथा के रूप में जन-मानस में प्रचलित हैं। प्राकृत का कथा-साहित्य लोक-जीवन तथा धार्मिक जीवन से विशिष्ट संयोजित है। अतः कथा-साहित्य की लगभग सभी प्रकार की जनवादी, रोमाण्टिक, सामन्तीय एवं वैयक्तिक प्रवृत्तियाँ इस साहित्य में प्राप्त होती हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों का कालान्तर में अपभ्रंश साहित्य में प्रकृत एवं यथार्थ रूप में चित्रण मिलता है। अपभ्रंश कथाकाव्य की इस स्वतन्त्र विधा का अनुशीलन किया जा चुका है,[1] किन्तु प्राकृत के विपुल कथा-साहित्य का न तो अभी तक सर्वेक्षण किया गया है और न किसी काव्यात्मक रूप में उस का विशिष्ट अध्ययन। अतएव अनुसन्धान की दिशा में यह विशिष्ट एवं शोध-खोज का क्षेत्र है। लोक-साहित्य की प्रवृत्तियों के विश्लेषण की दृष्टि से ही नहीं, काव्य के विभिन्न रूपों का भी स्वतन्त्र अध्ययन भी किया जा सकता है। इसी

१. शास्त्री, डॉ. देवेन्द्रकुमार : भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार युग विशेष में लिखी गयीं रचनाओं का भाषा की दृष्टि से भाषावैज्ञानिक अध्ययन भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए आ. हरिभद्रसूरि के युग की भाषा का विशिष्ट अध्ययन इसी सन्दर्भ में किया जा सकता है। हमारी जानकारी में इस प्रकार के अध्ययन गुजराती भाषा में किये जा चुके हैं (ए स्टडी ऑव द गुजराती लैंग्वेज ऑव सिक्स्टीन्थ सेन्चुरी)। प्राकृत और अपभ्रंश के कुछ तुलनात्मक अध्ययन भी इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के सन्दर्भ में सम्पूर्ण परम्परा को स्पष्ट रूप से जानने के लिए इस प्रकार के अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जायेंगे।

प्राकृत का कथा-साहित्य निम्नलिखित है—

१. अंजनासुंदरीचरिय—गुणसमृद्धिमहत्तरा। बड़ा भण्डार जेसलमेर।
२. आर्द्रकुमारकथानक। संघवी पाडा भण्डार, पाटन।
३. एलकाक्षकथा। संघवी पाडा भण्डार, पाटन।
४. कलावतीकथा। ,, ,,
५. गजसुकुमालकथा ,, ,,
६. चारुदत्तकथा ,, ,,
७. दामन्नककथा ,, ,,
८. दिवाकरकथा ,, ,,
९. धनश्रीकथा ,, ,,
१०. धन्यशालिभद्रकथा ,, ,,
११. धन्यसुन्दरीकथा ,, ,,
१२. नर्मदासुन्दरीकथा—महेन्द्रसूरि। ताड़पत्र प्रति। तपागच्छ उपाश्रय भण्डार, जेसलमेर।
१३. नागदत्तकथा। संघवी पाडा भण्डार, पाटन।
१४. पादलिप्ताचार्यकथा ,, ,,
१५. पुष्पवतीकथा ,, ,,
१६. प्रत्येकबुद्धकथा ,, ,,
१७. प्रदेशिकथा ,, ,,
१८. बप्पभट्टिकथा ,, ,,
१९. मल्लवादिकथा ,, ,,
२०. रत्नचूडकथा ,, ,,
२१. लीलावतीकथा—भूषणभट्टतनय। ताड़पत्र प्रति। बड़ा भण्डार, जेसलमेर।
२२. वंकचूलकथा (गद्य सचित्र)। संघवी पाडा भण्डार, पाटन।
२३. वज्रकर्णकथा ,, ,,
२४. वसुमित्रकथा ,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५. विक्रमकथा । संघवी पाडा भण्डार, पाटन ।
२६. विक्रमसेनकथा ,, ,,
२७. विलासवतीकथा ,, ,,
२८. शीलवतीकथा—आज्ञासुन्दर । तपागच्छ उपाश्रय भण्डार, जेसलमेर ।
२९. समराइच्चकहा—हरिभद्रसूरि । संघ भण्डार, पाटन ।
३०. सागरचन्द्रकथा । संघवी पाडा भण्डार, पाटन ।
३१. सिद्धसेनकथा ,, ,,
३२. सुकोशलकथा ,, ,,

अपभ्रंश कथाकाव्य

काव्य की भाव-भूमि पर अपभ्रंश के कथाकाव्यों में लोककथाओं का साहित्यिक रूप में किन्हीं अभिप्रायों के साथ वर्णन किया गया लक्षित होता है। लोक-जीवन के विविध तत्त्व इन कथाकाव्यों में सहज ही अनुस्यूत हैं। क्या कथा, क्या भाव और क्या छन्द तथा शैली सभी लोकधर्मी जीवन के अंग जान पड़ते हैं। अतः कथाकाव्य का नायक आदर्श पुरुष ही नहीं, राजा, राजकुमार, बनिया, राजपूत आदि कोई भी साधारण पुरुष अपने पुरुषार्थ से अग्रसर हो अपने व्यक्तित्व तथा गुणों को प्रकट कर यशस्वी परिलक्षित होता है। एक उभरता हुआ व्यक्तित्व सामान्य रूप से सभी कथाकाव्यों में दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों के अध्ययन से जहाँ सामाजिक यथार्थता का परिज्ञान होता है, वहीं धार्मिक वातावरण में तथा इतिहास के परिप्रेक्ष्य में जातीयता और परम्परा का भी बोध होता है। कथाकाव्यों में एक विशेष प्रवृत्ति यह है कि वे धार्मिक तत्त्वों से भरित नहीं हैं। उन में लोकजीवन का उन्मुक्त प्रकाश है। और उन से भी अधिक उन्मुक्तता अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों में परिलक्षित होती है। अपभ्रंश के प्रमुख कथाकाव्य निम्नलिखित हैं :

भविसयत्तकहा (भविष्यदत्तकथा-धनपाल), जिनदत्तकथा (लाखू), विलासवतीकथा (सिद्धसाधारण), श्रीपालकथा (रइधू), सिद्धचक्रकथा (नरसेन), सप्तव्यसनवर्जन-कथा (पं. माणिक्यचन्द्र), भविष्यदत्तकथा (विबुधश्रीधर), सुकुमालचरित्र (श्रीधर), सनत्कुमारचरित (हरिभद्रसूरि), श्रीपालचरित्र (दामोदर), हरिषेणचरित्र इत्यादि।

अपभ्रंश का कथा-साहित्य प्राकृत की ही भाँति प्रचुर तथा समृद्ध है। अनेक छोटी-छोटी कथाएँ व्रत-सम्बन्धी आख्यानों को ले कर या धार्मिक प्रभाव बताने के लिए लोकाख्यानों को ले कर रची गयी हैं। अकेली रविव्रतकथा के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्वानों की लगभग एक दर्जन रचनाएँ मिलती हैं। केवल भट्टारक गुणभद्र रचित सत्रह कथाएँ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार पं. साधारण की आठ कथाएँ तथा मुनि बालचन्द्र की तीन एवं मुनि विनयचन्द्र की तीन कथाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश-कथाकोश के अन्तर्गत कई अज्ञात रचनाएँ देखने को मिलती हैं। श्रीचन्द्र का कथाकोश प्रसिद्ध ही है। इस के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिरिक्त आगरा स्थित दि. जैन मन्दिर, घूलियागंज में, जयपुर तथा दिल्ली में भी अज्ञातनामा अपभ्रंश कथाकोष मिलते हैं। इन सब की छानबीन की जाये तो लगभग एक सौ से भी अधिक स्वतन्त्र कथात्मक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इन के अतिरिक्त आचार्य नेमिचन्द्रसूरि विरचित 'आख्यानकमणिकोश' में वर्णित तथा महेश्वसूरि कृत संजममंजरी की टीका में एवं मानसूरि कृत 'मनोरमाचरित्र' में भी अपभ्रंश की प्राकृत-अपभ्रंश मिश्रित कई कथाएँ हैं। अभी तक इस समग्र कथा-साहित्य का सर्वेक्षण तथा अनुशीलन नहीं किया गया है। भारतीय संस्कृति की अनुसन्धानात्मक दिशा में प्रवृत्त विद्वानों को इन कथाओं का अध्ययन भी करना चाहिए, जिस से मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के कतिपय नवीन तथ्य भी प्रकाशित हो सकेंगे।

अपभ्रंश चरितकाव्य

अपभ्रंश के चरितकाव्यों में पौराणिक महापुरुषों या अधिकतर त्रेसठ शलाका पुरुषों का जीवन-चरित्र वर्णित है। ये एक प्रकार से सकल कथाएँ हैं, जिन में पौराणिक शैली से कथा-नायक का जीवन बचपन से ही असाधारण रूप में चित्रित किया गया है। महापुरुषों का जीवन-चरित्र अतिलौकिक तथा धार्मिक तत्त्वों से अनुरंजित है। आकार की दृष्टि से साधारणतः चरितकाव्य चार सन्धियों से ले कर बीस-बाईस तक सन्धियों में निबद्ध हैं। पूर्व भवान्तरों तथा अन्य अवान्तर घटनाओं से प्रायः सभी चरितकाव्यों का कलेवर वृद्धिगत हुआ है। फिर भी, चरितकाव्य पौराणिक काव्यों की अपेक्षा आकार में छोटे होते हैं। बारह या तेरह सन्धियों से ले कर लगभग सवा सौ सन्धियों तक के पुराणकाव्य उपलब्ध होते हैं। इन में सभी नाटकीय तत्त्वों की अन्विति भली भाँति लक्षित होती है। इन में से अधिकतर पौराणिक महाकाव्य हैं। उदाहरण के लिए :

१. हरिवंशपुराण—धवल, १२२ सन्धियाँ, कौरव-पाण्डव, श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों का जीवनचरित्र।

२. पाण्डवपुराण—यशःकीर्ति, ३४ सन्धियाँ, पांच पाण्डवों की जीवनगाथा।

३. हरिवंशपुराण—यशःकीर्ति, १३ सन्धियाँ, हरिवंश की उत्पत्ति आदि का वर्णन।

४. हरिवंशपुराण—श्रुतकीर्ति, ४४ सन्धियाँ, कौरव-पाण्डव आदि का वर्णन।

५. ,, —पं. रइधू, १४ सन्धियाँ, ऋषभचरित, हरिवंशोत्पत्ति, वसुदेव, बलभद्र, नेमिनाथ, पाण्डवों आदि का वर्णन।

६. ,, —महाकवि स्वयम्भू, ११२ सन्धियाँ, श्रीकृष्ण के जन्म से हरिवंश तक की भवावली का विस्तृत वर्णन।

अपभ्रंश के चरितकाव्य निम्नलिखित हैं : नेमिनाथचरित्र (अमरकीर्तिगणि), शान्तिनाथपुराण (महिन्दु), प्रद्युम्नचरित (सिंह), पार्श्वनाथचरित्र (देवदत्त),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिनाथचरित्र (लक्ष्मण), बाहुबलिचरित्र (धनपाल), चन्द्रप्रभचरित्र (भ. यशःकीर्ति), पार्श्वनाथचरित्र (श्रीधर), सम्भवनाथचरित्र (तेजपाल), सन्मतिजिनचरित्र (पं. रइधू), जम्बूस्वामीचरित्र (सागरदत्तसूरि), शान्तिनाथचरित्र (शुभकीर्ति) पार्श्वनाथचरित्र (पद्मकीर्ति), पार्श्वनाथचरित्र (बुध असवाल), वर्द्धमानकाव्य, (हरिश्चन्द्र), वर्द्धमानचरित्र (श्रीधर), चन्द्रप्रभचरित्र (श्रीधर), वज्रस्वामीचरित्र (वरदत्त), मेघेश्वरचरित्र, धन्यकुमारचरित्र, सुकौशलचरित्र, जीवन्धरचरित्र, यशोधरचरित्र (पं. रइधू), नागकुमार, यशोधरचरित्र (पुष्पदन्त), जम्बूस्वामीचरित्र (देवदत्त), श्रेणिकचरित्र (जयमित्रहल), शान्तिनाथचरित्र (ठाकुरसी), पार्श्वनाथचरित्र (देवचन्द), शान्तिनाथचरित्र (देवचन्द्रसूरि), नेमिनाथचरित्र, चन्द्रप्रभचरित्र (दामोदर), मल्लिनाथचरित्र (जिनप्रभसूरि), महापुराणकलिका इत्यादि।

अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य

अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों का विकास प्राकृत की उस लोक-परम्परा से हुआ, जिस में पादलिप्तसूरि की तरंगवती, कोऊहल की लीलावती, धनेश्वरसूरि का सुरसुन्दरीचरित्र, विजयसिंहसूरि का भुवनसुन्दरीचरित्र तथा जिनहर्षगणि की रत्नशेखरकथा एवं मलयसुन्दरी आदि साहित्यिक कथाएँ तथा मौखिक रूप में वत्सराज कथा (हर्षवर्द्धनगणि), सर्वांगसुन्दरी और उदयनकथा आदि प्रचलित रही हैं। इन कथाओं में प्रेम की विशुद्धता एवं अमरता के साथ जीवन-दर्शन भी अभिव्यंजित हुआ है। प्राकृत के प्रेमाख्यानक काव्यों में सर्वप्राचीन पादलिप्तसूरि रचित 'तरंगवतीकथा' उपलब्ध होती है। तरंगवती की कथा जीवन की सरसता से ओतप्रोत विलासिता की वह विशुद्ध गाथा है, जिस में सच्चे प्रेम को ही मूर्तिमन्त किया गया है। वातावरण और कथा में सभी ओर रोमान्स है। प्राकृत और अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों में नायक-नायिका के प्रेम-व्यापारों का निर्द्वन्द्व भाव से चित्रण हुआ है। इस लिए इन काव्यों में रूप-दर्शन, चित्र-दर्शन, पुतली-दर्शन या अन्य किसी रूप-सौन्दर्य अथवा वस्तु-दर्शन से नायक या नायिका के स्व प्रेमी या प्रेमिका की प्राप्ति के लिए व्याकुल हो जाना, प्राप्ति का उपाय करना, सब कुछ भूल कर उसी का ध्यान करना, वियोग में झूरना, अनहोनी घटनाओं का घटित हो जाना, एक बार मिलन हो जाने पर भी फिर से बिछुड़ जाना और अन्त में सभी प्रकार की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सफल होने का वर्णन किया गया है। हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में भी उक्त विशेषताएँ भली भाँति परिलक्षित होती हैं। अपभ्रंश के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य हैं :

१. विलासवतीकथा—साधारण सिद्धसेन
२. जिनदत्तकथा—लाखू
३. जिनदत्तचउपई—रल्ह
४. पउमसिरीचरिउ—धाहिल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. सुदंसणचरिउ—नयनन्दी
६. सुदर्शनचरित्र—माणिक्यनन्दि

अभी तक अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों पर स्वतन्त्र रूप से कोई शोध-कार्य नहीं किया गया है। यद्यपि सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों से अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य वस्तु में ही नहीं, रहस्यात्मक अभिव्यंजना में भी भिन्न हैं, किन्तु संस्कृत-प्राकृत की आनुपूर्वी में काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से ही नहीं, उन्मुक्त विलास तथा जीवन्त प्रेम-निदर्शन की दृष्टि से भी उन का अत्यन्त महत्त्व है। यही नहीं, हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्यों की आधारभूमि के लिए भी उन में शृंगारात्मक प्रवृत्तियाँ अभिव्यंजित परिलक्षित होती हैं। अतः सूफ़ी साहित्य में परिव्याप्त आध्यात्मिक सौन्दर्य की रसवन्ती अभिव्यंजना को छोड़ कर शृंगार तथा प्रेम की सभी प्रकार की समानधर्मी प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों में व्याप्त हैं।

अपभ्रंश के खण्डकाव्य

अपभ्रंश के खण्डकाव्यों में सब से अधिक स्फीत और प्रेरक काव्य कवि हरिदेव का 'मयणपराजयचरिउ' तथा अब्दुल रहमान कृत 'सन्देशरासक' है। दोनों ही काव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इन के अतिरिक्त कुछ खण्डकाव्य इस प्रकार हैं :

१. कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभसूरि (मुद्रित)
२. नेमिजिनवरप्रबन्ध—लावण्यसमय
३. भरतेश्वरबाहुबलिघोररास—वज्रसेनसूरि
४. वज्रस्वामीचरित्र—वरदत्त
५. मल्लिनाथकाव्य—विनयचन्द्रसूरि
६. बुद्धिरसायण—महीराज (पत्र सं. ३०, सरस्वती भवन, नागौर)
७. जम्बूस्वामीचरिय—महेन्द्रसूरिशिष्य
८. आत्मसंबोधनकाव्य—पं. रइधू
९. सम्यक्त्वकौमुदी— „ „
१०. नेमिनाथफागु—राजशेखरसूरि
११. वड्ढमाणकहा—नरसेन
१२. पार्श्वनाथभवान्तर—जयकीर्ति
१३. वज्रस्वामीरास—जयसागर
१४. सुगंधदशमीकथा—उदयकीर्ति (प्रकाशित)
१५. नेमिनाथरास—कुमुदचन्द्र मुनि
१६. महावीरचरित्र—अभयदेवसूरि
१७. सुभद्राचरित्र—अभयगणि
१८. हरिषेणचरित्र—अज्ञात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. मल्लिनाथचरित्र—जिनप्रभ
२०. मल्लिनाथकाव्य—जयमित्रहल
२१. नागकुमारचरित्र—पुष्पदन्त
२२. करकण्डुचरित्र—मुनि कनकामर
२३. यशोधरचरित्र—पुष्पदन्त

इन के अतिरिक्त कई वड़ी-बड़ी कथाएँ जो कि छन्दोवद्ध हैं, खण्डकाव्य के अन्तर्गत आती हैं। इन की संख्या सब से अधिक है। कतिपय कथाओं के नाम इस प्रकार हैं—मेघमालाव्रतकथा (कवि ठकुरसी), पुरन्दरविधानकथा (अमरकीर्ति), सुगन्धदशमीव्रतकथा (उदयकीर्ति), रुक्मणिविधानकथा (क्षत्रसेन) इत्यादि।

अपभ्रंश का रासा-साहित्य

१. अंतरंगरास—जिनप्रभ
२. अनुप्रेक्षारास—जल्हिग
३. आबूरास—पाल्हण
४. उपदेशरसायनरास—जिनदत्तसूरि
५. कछूलीरास—प्रज्ञातिलक
६. कुट्टणिरासय—तिल्हण (मुद्रित)
७. कुमारपालरास—अज्ञात
८. कुमारपालदेवरास—सोमतिलक
९. गयसुकुमालरास—देल्हण
१०. गौतमरासा—अज्ञात
११. गौतमस्वामीरास—विनयप्रभ उपाध्याय
१२. चन्दनबालारास—आसगु
१३. चूनड़ीरास—विनयचन्द
१४. चैतिरासा—ब्र. उंदू
१५. जम्बूस्वामिरास—धर्मसूरि
१६. जीवदयारास—आसगु
१७. जोगठरास—अज्ञात
१८. थूलिभद्दरासु—अज्ञात
१९. दोहाणुप्रेक्षारास—लक्ष्मीचन्द
२०. नवकाररास—अज्ञात
२१. नेमिरास—जिनप्रभ
२२. नेमिनाथरास—सुमतिगणि (मुद्रित)
२३. पंचकल्याणकरास—विनयचन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४. पंचपंडवचरितरास—शालिभद्रसूरि (मुद्रित)
२५. पोसहरास—अज्ञात
२६. बुद्धिरास—शालिभद्रसूरि
२७. बुद्धिरसायण—पं. महीराज
२८. भरतबाहुबलीरास—शालिभद्रसूरि (मुद्रित)
२९. मनकरहारास—पाहल
३०. महावीररास—अभयतिलकमणि
३१. योगीरासो—योगीन्द्र
३२. रेवन्तगिरिरास—विजयसेनसूरि (मुद्रित)
३३. रोहिणुरास—अज्ञात
३४. वज्रस्वामीरास—जयसागर
३५. शान्तिनाथरास—अज्ञात
३६. शान्तिनाथदेवरास—लक्ष्मीतिलकगणि
३७. श्रावकविधिरास—मेरुनन्दन
३८. सप्तक्षेत्रिरासु—अज्ञात (मुद्रित)
३९. समरारास—अम्बदेवसूरि (मुद्रित)
४०. समाधिरास—चारितसेनमुनि
४१. सालिभद्ररासु—राजतिलक

अपभ्रंश के रूपककाव्य

अपभ्रंश साहित्य में विभिन्न काव्य-विधाओं की भाँति रूपककाव्यों की रचना कोई नवीन वस्तु नहीं रही। सामान्य रूप से मुक्तक या खण्डकाव्यों में निबद्ध कई रूपक रचनाएँ आज भी उपलब्ध होती हैं। अधिकतर रचनाएँ तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के मध्य में रची गयीं। सोमप्रभसूरि के 'कुमारपालप्रतिबोध' के अन्तर्गत 'जीव मनःकरण संलाप कथा' के रूप में एक कथा से अनुबिद्ध रूपक-रचना लक्षित होती है। काव्य सरस तथा सूक्तियों से रोचक एवं मनोरंजक है। दूसरा रूपक-काव्य कवि हरिदेव द्वारा विरचित 'मयणपराजयचरिउ' है, जो भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुका है। इस में कामदेव और जिन के जय-पराजय को सरागी और वीतरागी के रूपक के द्वारा अत्यन्त सरस वर्णित किया गया है। अपभ्रंश के उपलब्ध रूपककाव्यों में यह श्रेष्ठ रचना है। सम्भवतः इसी रचना से प्रेरित हो कर सोलहवीं शताब्दी में बूचिराज (वल्ह) ने 'मयणजुज्झ' तथा 'सन्तोषतिलकजयमाल' की रचना की। दोनों ही रूपक रचनाएँ हैं और भाषा की दृष्टि से पुरानी हिन्दी के निकट हैं। रचनाएँ आकार में छोटी-छोटी हैं। इसी प्रकार पाहल कृत 'मनकरहारास' भी एक लघु रूपककाव्य है, किन्तु रचना सुन्दर और स्फीत है। मन और इन्द्रियों को संयमित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए सुन्दर काव्यरचना प्रसूत की है। इस काव्य की कई हस्तलिखित प्रतियाँ दिल्ली तथा जयपुर के जैन भण्डारों में मिलती हैं। संक्षेप में, अपभ्रंश के रूपककाव्यों की सूची इस प्रकार है :

१. जीव मनःकरण संलापकथा—(कुमारपालप्रतिबोध के अन्तर्गत)—सोमप्रभसूरि

२. मदनपराजयचरित—कवि हरिदेव

३. मदनयुद्ध—बूचिराज

४. सन्तोषतिलकजयमाल—बूचिराज

५. मनकरभारास—पाहल

६. मणुयसंधि—पाहल

अपभ्रंश के सन्धिकाव्य

इधर पिछले दशक में अपभ्रंश की जो मुख्य रूप से शोध-खोज हुई है, उस में विशेष रूप से सन्धिकाव्यों की चर्चा की गयी। श्री अगरचन्द नाहटा ने इस सम्बन्ध में कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में सम्बन्धित लेखों द्वारा जानकारी प्रदान की तथा 'जैनगुर्जर कविओ' भाग १ में प्रकाशित विभिन्न रचनाओं का उल्लेख किया। सन्धिकाव्य की परम्परा मूलतः प्राकृत-अपभ्रंश काव्यों की मुख्य विधा है। क्योंकि सन्धि-रचना ही इस साहित्य में प्रचलित रही है। महाकवि स्वयम्भू के 'पउमचरिउ से ले कर भगवतीदास के 'मिगांकलेखाचरिउ' तक नवम शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक रचे गये काव्य सन्धिबद्ध हैं। जब कवि अपनी विषय-वस्तु तथा भावप्रवणता के साथ अपनी कल्पना को प्रबन्ध का रूप नहीं दे पाया होगा तो अपूर्ण एवं परित्यक्त इस साहित्यिक विधा के इस सापेक्षिक लघु आकार को सन्धिकाव्य नाम दिया गया होगा। तभी से सन्धिकाव्य की परम्परा प्रवर्तमान है। अधिकतर सन्धिकाव्य एक सन्धि में निबद्ध काव्य रचनाएँ हैं। अधिकतर सन्धिकाव्य ग्यारहवीं शताब्दी से ले कर पन्द्रहवीं के मध्य के लिखे हुए मिलते हैं। ये निम्नलिखित हैं :

१. स्थूलभद्रसन्धि—देवचन्द्रसूरि

२. नर्मदासुन्दरीसन्धि—जिनप्रभ सूरि

३-७. अनाथिसन्धि, अंतरंगविवाह, चउरंगसन्धि, मयणरेहसन्धि, जीवानुशास्तिसन्धि—जिनप्रभसूरि

८. शीलसन्धि—ईश्वरगणि

९. भावनासन्धि—जयदेवगणि

१०. शीलसन्धि—जयशेखरसूरिशिष्य

११. मणुयसन्धि—पाहल

१२-१३. शीलसन्धि, केशीगौतमसन्धि—रत्नशेखरसूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४-२०. ऋषभपारणकसन्धि, महावीरचन्दनबालापारणासन्धि, गजसुकुमालसन्धि, शालिभद्रमहाऋषिसन्धि, अवन्तिसुकुमालसन्धि, मेतार्यमहामुनिसन्धि, पुरार्णिषसन्धि—रत्नप्रभसूरि

२१. उपदेशसन्धि—हेमसार कवि

२२. आनन्दश्रावकसन्धि—विनयचन्द्र

२३. उपधानसन्धि—जयशेखरसूरिशिष्य

स्फुट रचनाएँ

अपभ्रंश में कई प्रकार की स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। ये स्तुति, स्तोत्र, पूजा और जयमाल से ले कर अनुप्रेक्षा, भावना, कुलक, फागु, विवाहलु, छप्पय आदि अनेक रूपों में उपलब्ध होती हैं। इन के अतिरिक्त चर्यागीतियाँ, चर्यापद तथा गीत, उपदेश आदि भी परिलक्षित होते हैं। कुछ प्रमुख विषय की रचनाएँ इस प्रकार हैं :

अनुप्रेक्षा : अनुप्रेक्षा (ईश्वर), अनुप्रेक्षा (पं. जगसी), अनुप्रेक्षा (अल्हू कवि), अनुप्रेक्षारास (जल्हिग), द्वादशानुप्रेक्षा (पं. जोगदेव), मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा (पं. जोगदेव), द्वादशानुप्रेक्षा (लक्ष्मीचन्द)

भावना : भावसंग्रह (श्रुतिमुनि), सम्यक्त्वभावना (पं. रइधू), भावनासार (जिनप्रभसूरि)

चउबीसी : चउबीसी (देल्ह), त्रिशत्जिनचउबीसी (अज्ञात)

कुलक : कालस्वरूपकुलक (जिनदत्तसूरि), भावनाकुलक (जिनप्रभ), ज्ञानप्रकाशकुलक, दानादिकुलक, धर्माधर्मविचारकुलक, धर्मोपदेशकुलक, सिद्धिकुलक, सुभाषितकुलक, (जिनप्रभसूरि), ज्ञानप्रकाशकुलक (जिनप्रभाचार्य), सुभाषितकुलक (जिनभद्र), भावनाकुलक (जिनेश्वरसूरि), उपदेशकुलक (देवसूरि)

फागु : नेमिनाथफागु (जिनेश्वरसूरि), नेमिनाथकुमारराजीमतीचरित्रफागु (माणिक्यसुन्दर), शालिभद्रफागु (पोमा कवि), जिनचन्द्रसूरिफागु (अज्ञात)

विवाहलु : आर्द्रकुमारविवाहलु (देपाल कवि), जिनचन्द्रसूरिविवाहलु (सहजज्ञान), विवाहलउ (जिनेश्वरसूरि)

छप्पय : उवएसमालाकहाणयछप्पय (रत्नसिंहसूरिशिष्य), आगम के अष्टपद (छप्पय) (सोड्ढल)

चउपई : नेमिनाथचउपई (विनयचन्द्रसूरि), जिनदत्तचउपई (रल्ह),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुदर्शनचउपई (वस्तिग), चतुर्गतिचतुष्पदिका (वस्तिग), पद्मावती चौपई (जिनप्रभसूरि)

चर्चरी : चर्चरी (जिनदत्तसूरि), चच्चरि (सोलण), धर्मचच्चरि (अज्ञात)

गीत : नेमीश्वरगीत (वल्हव), गुणस्थानगीत (ब्र. श्रीवर्द्धन), नेमिगीत आदि ।

प्राच्य विद्याओं का अध्ययन

प्राच्य विद्याओं के अध्ययन में प्राकृत तथा अपभ्रंश-भाषा एवं साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । किन्तु जिस प्रकार उस का साहित्य विपुल अंश में अप्रकाशित तथा अज्ञात है, उसी प्रकार अभी तक अधिकतर विद्वान् उस के महत्त्व से अनजान हैं । यद्यपि भारतीय विद्याओं के अमरीका, जापान तथा यूरोप के केन्द्रों में संस्कृत तथा भारतीय विषयों के सम्यक् अध्ययन के लिए पालि तथा प्राकृत का ज्ञान सम्प्रति आवश्यक समझा जाने लगा है, किन्तु भारतवर्ष में इस अध्ययन की अवस्थिति लगभग पूर्ववत् है । इस का कारण यही प्रतीत होता है कि पालि तथा प्राकृत भाषाएँ सम्प्रदाय-विशेष की भाषाएँ समझी जाती रही हैं । किन्तु, अब यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए । प्राकृत-भाषाएँ वैदिक युग के पूर्व से ही बोलचाल के रूप में प्रचलित रही हैं । आज की क्षेत्रीय बोलियों पर उन का बहुत कुछ प्रभाव लक्षित होता है । प्राकृत बोलियाँ अधिकतर परम्परागत हैं । साहित्य में जो प्राकृत प्रयुक्त लक्षित होती है, वह परवर्ती काल की है । प्राकृत बोलियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, इस के प्रमाण तथा संकेत भरत मुनि के नाट्यशास्त्र, शैवागम-साहित्य, विक्रमोर्वशीय तथा मृच्छकटिक में मिलते हैं । 'मृच्छकटिक' सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में एक विशिष्ट रचना है, जो तीन-चौथाई प्राकृत में लिखित है । इसी प्रकार, लोकनाट्य मूलतः जनबोलियों में प्रचलित रहे हैं । आज भी उन की परम्परा कहीं-कहीं सुरक्षित है । भारतीय-ईरानी तथा निय प्राकृत के अध्ययन से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है ।

विदेशों में भारतीय भाषाओं का सर्वप्रथम अध्ययन अब्राहम रोजर्स के भर्तृहरि के अनुवाद से प्रारम्भ होता है, जो सन् १६५१ ई. में डच भाषा में किया गया था । उस समय और उस के बाद जो भी अध्ययन किया गया, वह संस्कृत भाषा तथा साहित्य से सम्बद्ध था । आधुनिक युग में देश-विदेशों में पालि तथा प्राकृत का अध्ययन संस्कृत की अपेक्षा बहुत देर से हुआ । पालि का अध्ययन प्राकृत से पहले ही हो चुका था । यद्यपि पालि भाषा यूरोप में सत्रहवीं शती में पहुँच गयी थी, किन्तु पालि भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन सन् १८२४ ई. में आरम्भ हुआ । सन् १८२६ ई. में बर्नोफ तथा लास्सन का संयुक्त रूप से 'ऐसे सुर ला पालि' निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिस में बुद्ध की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल शिक्षाओं के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया था। अध्ययन की इस दिशा में भाषा-शास्त्रियों की मुख्य प्रवृत्ति विशेष रूप से तुलनात्मक अध्ययन की ओर थी। अतएव पॉट (सन् १८३३-३६ ई.) की प्रसिद्ध पुस्तक 'द एटिमोलॉजिकल स्टडी ऑव इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजेज' इसी समय प्रकाश में आयी। इस के कुछ वर्षों के बाद ही सन् १८६१ ई. में श्लाइशर का महान् कार्य 'कम्पेरेटिव वर्क इन द ग्रामर ऑव इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजेज' पुस्तक प्रकाशित हुई। किन्तु इन दोनों पुस्तकों का विषय आर्यभाषाओं में केवल संस्कृत से सम्बद्ध था। प्राकृत का विचार तब तक नहीं किया गया था और इस का मुख्य कारण प्राकृत-साहित्य का प्रकाश में न आना कहा जा सकता है। यूरोप तथा अन्य देशों में संस्कृत की जानकारी को पहुँचाने का बहुत कुछ श्रेय सर विलियम जोन्स को है। सन् १७८६ ई. में रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता की संस्थापना के समय उन के इन उद्गारों से कि संस्कृत भाषा प्राचीनता में चाहे जो हो, बनावट में सुन्दर, ग्रीक से भी अधिक पूर्ण, लैटिन से भी विपुल और उन से कहीं अधिक उत्कृष्ट है—विश्व के विद्वानों का ध्यान समग्र रूप से संस्कृत की ओर आकृष्ट हो कर उस पर केन्द्रित हो गया। किन्तु प्राकृत के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हुआ।

भारतवर्ष में प्राच्य विद्याओं का अध्ययन आधुनिक युग में बहुत बाद में आरम्भ हुआ। प्राच्य विद्याओं के अध्ययन में प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन अन्य शाखाओं की अपेक्षा सब से बाद में आरम्भ हो सका। प्राकृत के अध्ययन का सर्वप्रथम उल्लेख चार्ल्स विल्किन्स के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' के अध्ययन के साथ मिलता है। फ़्रांसीसी विद्वान् विल्किन्स का यह महान् स्वप्न था कि संस्कृत तथा प्राकृत के साथ शकुन्तला नाटक का अध्ययन तथा प्रकाशन मेरे द्वारा हो। इस दिशा में जहाँ तक पता लगता है, हेनरी टॉमस कोलब्रुक (सन् १७९७-१८२८ ई.) प्रथम प्राच्य विद्याओं के विशारद थे, जिन्होंने संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा, संस्कृत-प्राकृत छन्दःशास्त्र, दर्शन, जैनधर्म, बौद्धधर्म आदि पर विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखे थे। वस्तुतः प्राकृत तथा जैनधर्म का अध्ययन डॉ. जे. जी. बूलर की खोज के बाद ही आरम्भ होता है। सन् १८६६ ई. के लगभग डॉ. बूलर ने बर्लिन (जरमनी) पुस्तकालय के लिए पाँच सौ जैनग्रन्थ खोज कर भेजे थे। उन के जीवन का अधिकांश समय भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में बीता था। यथार्थ में उन्होंने अपनी खोज-रिपोर्टों के द्वारा शोधकार्य आरम्भ किया था, जिस से आकृष्ट हो कर इस दिशा में भारतीय विद्वान् प्रवृत्त हुए। उन्होंने १८८७ ई. में जरमन भाषा में अपने शोधकार्य के आधार पर जैनधर्म से सम्बद्ध एक पुस्तक लिखी, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई। इस का अँगरेज़ी अनुवाद सन् १९०३ ई. में लन्दन से 'द इण्डियन सेक्ट ऑव द जैन्स' नाम से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में डॉ. बूलर ने स्पष्ट रूप से निरूपित किया कि जैनधर्म भारतवर्ष के बाहर अन्य देशों में भी ले जाया गया था, और इस का उद्देश्य मनुष्य को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना है। उन के इस अध्ययन के पश्चात् ही 'कम्पेरेटिव रिलीजन' की शाखा का सूत्रपात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ। परिणामतः सन् १८९७ ई. में लन्दन से मेजर जनरल जे. जी. आर. फर्लांग की महत्त्वपूर्ण 'कृति शार्ट स्टडीज इन द सायन्स ऑव कम्पेरेटिव रिलीजन्स' प्रकाशित हुई। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने शिलालेखों में उत्कीर्ण प्राकृत भाषा का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के आरम्भ होने के पूर्वचरण में मुख्य रूप से जैनधर्म तथा प्राकृत का जो अध्ययन किया गया, वह आरम्भिक एवं विवरण-प्रधान होने पर भी महत्त्वपूर्ण था। इस युग में प्राच्य विद्या के अध्येताओं में जॉन जॉर्ज बूलर का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे यथार्थ में अन्वेषक तथा शोधकर्त्ता थे। दूसरे महत्त्वपूर्ण गवेषक एवं संशोधक वेबर थे। उन्होंने डॉ. बूलर द्वारा बर्लिन-पुस्तकालय के लिए प्रेषित पाँच सौ जैनग्रन्थों का अनुशीलन कर जैन साहित्य पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला। इस दिशा में उन का महान् कार्य कई वर्षों के अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय साहित्य (Indischen Studien) के रूप में सन् १८८२ ई. में प्रकाशित हुआ। भारतीय साहित्य का इतिहास सत्रह जिल्दों में विवेचित किया गया। प्राच्य विद्याओं के अध्ययन का यह युग जरमन तथा भारत के केन्द्रों में विकसित हुआ, जिस में ओरियण्टल तथा आक्सीडेण्ट का भली भाँति अध्ययन-चिन्तन किया गया। इस युग में मुख्य रूप से विविध धर्मों का अध्ययन तुलनात्मक वैज्ञानिक पद्धति पर किया गया, और इसी प्रकार विभिन्न प्राचीन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भाषाविज्ञान के रूप में आरम्भ हुआ। सामान्यतः, इन सभी अध्ययनों का प्रधान केन्द्र जरमनी था। वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों का आरम्भिक एवं महत्त्वपूर्ण आलोचन-विवेचन जरमनी के विद्वानों के द्वारा व्यवस्थित रूप से किया गया। जैनधर्म का अध्ययन तथा विवेचन करने वाले तीनों जरमन विद्वान्—जेकोबी, वेबर और लॉयमन महान् चिन्तक एवं मार्गदर्शक थे। जरमनी में भी विशेष रूप से बर्लिन में लॉयमन, उन के शिष्य डब्ल्यु. हिटमन, वाल्टर शुब्रिंग, लुडविग आल्सडोर्फ आदि की परम्परा आज तक प्रचलित है, जो विभिन्न विद्यापीठों के माध्यम से भारतीय प्राच्य विद्या को समुन्नत बनाये रखने के लिए गतिशील हैं।

जिस प्रकार अपभ्रंश प्राकृत की परम्परा से अपने प्रारम्भिक रूप में संलग्न रही, उसी प्रकार इस का अध्ययन भी प्राकृत से सम्बद्ध रहा है। देश-विदेशों में आधुनिक युग में इस की जानकारी प्राकृत भाषाओं के माध्यम से ही प्राप्त हुई। प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में तुलनात्मक रूप से कदाचित् सर्वप्रथम सन् १८६९ में फ्रेडरिक हेग (Fradrich Hauge) ने अपने शोध-प्रबन्ध में विचार किया था। उन का प्रबन्ध 'वगलेचुंग डेस प्राकृत उण्ड डेर रोमानिश्चन श्प्राखन' नाम से जूरिख से प्रकाशित हुआ। इसी समय जॉन बीम्स की प्रसिद्ध पुस्तक १८७२ में 'कम्परेटिव ग्रामर ऑव द आर्यन लैंग्वेजेज ऑव इण्डिया' प्रकाशित हुई। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इस में तीन भागों में आर्यभाषाओं की प्राचीन परम्परा पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान आर्यभाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। सन् १८९६ ई. में जेकब वाकरनागल (Jacob Wackernagal) की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'एल्टिनडिश्च ग्रामर' (Altindische Grammatik) का प्रथम भाग प्रकाश में आया। इस पुस्तक में अधिकारी विद्वान् ने सर्वप्रथम इस तथ्य को प्रकाशित किया कि वैदिक युग में बोलियाँ प्रचलित थीं। इस का प्रमाण यह है कि सप्तमी विभक्ति का अधिकरण 'हि' पालि तथा प्राचीन संस्कृत से 'धि' से विकसित हुआ है, जो शास्त्रीय संस्कृत में नहीं मिलता। इसी प्रकार का शब्द-प्रयोग वैदिक काल में ग्रीक भाषा में प्रयुक्त होता था, जो शास्त्रीय नहीं था। इस विचार की पुष्टि करते हुए डॉ. ग्रियर्सन ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ प्रतिपादन किया कि वैदिक युग को बोलियाँ सचमुच अपभ्रंश थीं। यथार्थ में द्वितीय स्तर की प्राकृतों में प्राप्त होने वाले रूपों की शास्त्रीय संस्कृत के सन्दर्भ में व्याख्या नहीं की जा सकती। और इस लिए साहित्यिक प्राकृतों की अपेक्षा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन व अनुसन्धान के लिए अपभ्रंश का महत्त्व अधिक है। वस्तुतः अपभ्रंश का व्यवस्थित अध्ययन आधुनिक युग में जरमन विद्वान् रिचर्ड पिशेल से आरम्भ होता है। उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र कृत 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' प्राकृतव्याकरण का व्यवस्थित रीति से प्रथम बार सम्पादन किया, जो १८७७ ई. में प्रकाशित हुआ। वास्तव में आ. हेमचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण का अत्यन्त महत्त्व है। पिशेल महोदय ने इस व्याकरण के सम्पादन के साथ इस कृति के सम्बन्ध में जो मान्यताएँ स्थापित की हैं, उन का ही उल्लेख उन्होंने अपने प्राकृत भाषाओं के व्याकरण में किया है। यह महान् व्याकरण ग्रन्थ उस समय के ज्ञात तथा प्रकाशित एवं अप्रकाशित सैकड़ों ग्रन्थों के अनुशीलन के आधार पर २५-३० वर्षों के सुदीर्घ परिश्रम से तैयार किया गया था। सन् १९०० ई. में इस का प्रकाशन जरमनी के स्ट्रासबर्ग नगर से हुआ। इस में लगभग प्राकृत की पच्चीस व्याकरण-रचनाओं का विवेचन विभिन्न सन्दर्भों में किया गया है। चण्ड का प्राकृतलक्षण तब तक प्रकाशित हो चुका था। डॉ. हार्नले ने इसे आर्षव्याकरण कहा था। इस का संस्करण उन्होंने तैयार किया था, जो 'द प्राकृत लक्षणम् एण्ड चण्डाज ग्रैमर ऑव द एन्शण्ट प्राकृत' भाग १ नाम से १८८० में कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका था। इसी प्रकार १८८९ में ब्यूलर की पुस्तक 'इयूबर डास लेबन डेस जैन मोएन्चोस हेमचन्द्रा' विएना से प्रकाशित हो चुकी थी। डॉ. पिशेल ने इन सभी को अपने व्याकरण में उद्धृत किया है। कोलब्रुक का मत उद्धृत करते हुए उन का कथन है—कोलब्रुक का मत था कि जैनों के शास्त्र मागधी प्राकृत में लिखे गये हैं, जो संस्कृत के नाटकों से भिन्न भाषा में हैं। यह मागधी प्राकृत संस्कृत से निकली है। लास्सन का विचार था कि मागधी प्राकृत और महाराष्ट्री एक ही भाषाएँ हैं। किन्तु होएफर इस बात पर दृढ़ रहे कि जैन शास्त्रों की प्राकृत भाषाएँ कुछ भिन्न तथा विशेष अवश्य हैं। परन्तु जेकोबी इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि जैन शास्त्रों की भाषा बहुत प्राचीन महाराष्ट्री है। इस प्रकार रिचर्ड पिशेल के 'ग्रैमैटिक डेर प्राकृत-श्प्राखन' प्रकाशित होने के पूर्व प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में हॉर्नले, लास्सन, होएफर तथा वेबर आदि के मत प्रकाश में आ चुके थे। परन्तु अपभ्रंश भाषा के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध में विचार कर लिखने वाले पिशेल प्रथम विद्वान् थे। इस दिशा में उन का प्रथम कार्य 'देशीनाममाला' के सम्पादन के रूप में प्रकट हुआ, जो १५ मार्च, १८८० में जरमन के कील नगर से प्रकाशित हुई। इस के परिचय में पिशेल ने विविध शब्दों का विचार त्रिविक्रम के प्राकृत-व्याकरण तथा हेमचन्द्र के प्राकृतव्याकरण (हस्त-लिखित ग्रन्थों) के आधार पर किया। अपभ्रंश के अध्ययन के लिए ये दोनों ही व्याकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्राकृतव्याकरणों के अन्त में अपभ्रंश का व्याकरण भी सम्मिलित है। लास्सन ने 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए' में तथा पिशेल ने प्राकृतव्याकरण में-एक स्वर से यह माना है कि अपभ्रंश वास्तव में जनता के द्वारा बोली जाती रही होंगी। अपभ्रंश बोलियों का उल्लेख करते हुए डॉ. पिशेल ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है कि बहुत प्राचीन समय से ही इन बोलियों में साहित्यिक रचनाएँ लिखी जाती रही हैं। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित "शौरसेनं समाश्रित्य भाषा कार्या तु नाटके" कथन से भी यही तात्पर्य है कि अपभ्रंश बोलियों में नाटक लिखे जाते रहे होंगे, तभी नाट्यशास्त्र में विधान किया गया। रिचर्ड पिशेल ने भली भाँति अपभ्रंश बोलियों का जनबोलियों तथा लोकनाट्यों से सम्बन्ध स्थापित किया। उन का कथन है कि जिन्हें बंगाल में जात्रा और उत्तर भारत में रास आदि कहा जाता है, वास्तव में ये वही नाटक हैं, जो अल्मोड़ा और नेपाल में भी आमोद-प्रमोद के लिए जनता के द्वारा खेले जाते हैं। इन का एक नमूना 'हरिश्चन्द्र नृत्यम्' के रूप में जरमनी में प्रकाशित हुआ है। इस अपभ्रंश को कभी किसी ने प्राकृत नहीं बताया। यह वह अपभ्रंश भाषा है जो दण्डिन् के अनुसार काव्य की भाषा थी और जो रविकर के अनुसार प्राकृत से नाम मात्र को भिन्न रही है। रविकर के मत में दो प्रकार की अपभ्रंशों में भेद बताया गया है। प्रथम प्रकार की अपभ्रंश प्राकृत से निर्गत है और दूसरी प्रकार की देशभाषा अपभ्रंश है। इस तरह कई प्रमाणों तथा विभिन्न विचारों का आलोचन कर रिचर्ड पिशेल ने युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष फलित किया कि केवल संस्कृत को ही प्राकृतों का मूल समझना, जैसा कि कई विद्वान् समझते हैं और इन विद्वानों में होएफर, लास्सन, भण्डारकर और जेकोबी भी सम्मिलित हैं, भ्रमपूर्ण है। सभी प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण शब्दों, नाना स्थलों पर साम्य है और ये बातें संस्कृत में नहीं पायी जातीं। इन शब्दों में आधुनिक युग में प्रथम बार प्राकृत तथा अपभ्रंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित एवं प्रचारित भ्रम का निरसन कर रिचर्ड पिशेल ने मौलिक एवं निष्पक्ष विचारों को प्रस्तुत किया। उन के इस महत्त्वपूर्ण अध्ययन की प्रमुख विशेषता है—शोधपूर्ण एवं तुलनात्मक विवेचन। लगभग सात दशकों की इस दीर्घ अवधि में उन के प्राकृत भाषाओं के अध्ययन का वही महत्त्व आज भी है, जो प्रकाशन के समय था। उन की यह पुस्तक किसी भी महान् थीसिस से कम नहीं है। मध्य भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन के लिए आज तक यह सन्दर्भ ग्रन्थ का काम दे रही है। इस से इस की महत्ता स्पष्ट है। यह मूल ग्रन्थ जरमन भाषा में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखा गया था, जिस का अँगरेज़ी अनुवाद डॉ. सुभद्र झा ने किया था और जो मोतीलाल बनारसी दास के यहाँ से प्रकाशित भी हो चुका है। हिन्दी में मूल जरमन से इस का अनुवाद डॉ. हेमचन्द्र जोशी के द्वारा अविकल रूप से किया गया, जो बाद में १९५८ में बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् से प्रकाशित हुआ। अँगरेज़ी में यह 'कम्परेटिव ग्रैमर ऑव द प्राकृत लैंग्वेज' तथा हिन्दी में 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' नाम से प्रकाशित किया गया।

प्राकृत के पाणिनि

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण लिखकर यथार्थ में रिचर्ड पिशेल अमर हो गये। पाणिनि ने संस्कृत भाषा का जैसा व्यवस्थित व्याकरण लिखा था वैसा ही व्यवस्थित तथा तुलनात्मक विवेचन पिशेल ने प्राकृत भाषाओं का किया है। उन के इस विवेचन के अन्तर्गत अपभ्रंश की ध्वनियाँ, स्वर तथा रूप-रचना सम्बन्धी प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विचार किया गया है। अतएव विद्वानों का यह कथन कि पिशेल प्राकृत के पाणिनि थे, उचित ही है। यद्यपि श्रीमती डोल्ची नित्ति ने पिशेल की कुछ भूलों का उल्लेख किया है, किन्तु अभी तक उन निदानों तथा पूर्वापर विचारों का सम्यक् पर्यालोचन नहीं हो सका है। वस्तुतः पिशेल महोदय ने वैदिक भाषाओं के मूल उत्स से ले कर प्राकृत-अपभ्रंश बोलियों की प्रकृति-प्रवृत्ति का विशेष रूप से अनुशीलन किया है। उन के समय में जो सामग्री उपलब्ध थी या सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध हो सकती थी, उस सब का विचार उन्होंने किया है। अपने इस व्याकरण में उन्होंने विषय से सम्बन्धित सभी विचारों तथा आलोचनाओं का अध्ययन कर समालोचनात्मक टिप्पणियों के रूप में युक्तियुक्त तथा सटीक विवेचन किया है। इसी व्याकरण की पूर्ति के रूप में उन की लिखी हुई 'माटेरिआलिसन् त्सुर् डेस् अपभ्रंश' १९०२ में बर्लिन से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में अपभ्रंश का पहली बार स्वतन्त्र रूप से विचार तथा विवेचन किया गया। ये दोनों ही ग्रन्थ मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन की सफलता का मुख्य कारण वैदिक साहित्य का सम्यक् अध्ययन रहा है। डॉ. पिशेल, कील तथा बर्लिन विश्वविद्यालय में आजीवन संस्कृत का अध्यापन करते रहे। इन की लिखी हुई 'वैदिक स्टडीज़' पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में पिशेल सदैव स्मरणीय रहेंगे।

प्राकृत-अपभ्रंश के महान् विद्वान् के रूप में दूसरे भाषाशास्त्री डॉ० हर्मन जेकोबी हैं। सौभाग्य से जेकोबी भी जरमनी थे। पिशेल की भाँति जेकोबी भी भारतीय विद्या के विशेष प्रेमी थे। उन का सम्पूर्ण जीवन अध्ययन-अध्यापन में बीता। वे जरमन के बॉन विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या के प्राध्यापक थे। डॉ. पिशेल ने प्राकृतों की जिस दिशा में अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया था, उसी कार्य को डॉ.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जेकोबी ने अग्रसर किया। इस के साथ ही उन्होंने मुख्य रूप से जैनागमों का गम्भीर अध्ययन किया। सूत्रग्रन्थों का अध्ययन और संशोधन तथा सम्पादन करना ही उन का प्रारम्भिक उद्देश्य था। परन्तु धीरे-धीरे जैन साहित्य में उन की रुचि समाविष्ट होती गयी। उन्होंने सब से पहले 'उत्तराध्ययनसूत्र' का अध्ययन किया। उस पर उन्होंने एक टीका भी लिखी। टीका में कितनी ही प्राकृत-कथाओं का उल्लेख देख कर उन्होंने कथाओं का एक संग्रह तैयार किया, जो पाठ्य-पुस्तक "औसगे वैल्ते एत्से लिंगन इन महाराष्ट्री" (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ) के रूप में १८८६ में लिपज़िग (जरमन) से प्रकाशित हुई। इस के परिचय (इण्ट्रोडक्शन) में महाराष्ट्री प्राकृत के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया गया है। इस परिचय का अँगरेज़ी अनुवाद डॉ. ए. एम. घाटगे ने किया है, जो 'द जैन एन्टिक्वेरी' में प्रकाशित हो चुका है। अपने इस प्राथमिक वक्तव्य में डॉ. जेकोबी ने वैदिक भाषाओं से लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तक के विकास की जिस धारा का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया था और जिस बात को पिशेल महोदय पहले ही प्राकृतों के व्याकरण के रूप में लिख चुके थे, उसी आधार पर उन्होंने अपभ्रंश के बहुविध रूपों तथा बोलियों का विचार किया। उन के स्पष्ट विचार हैं—भारतीय आर्यभाषाएँ विकास की तीन अवस्थाओं को पार कर चुकी हैं। वे तीन अवस्थाएँ हैं—संस्कृत (वैदिक, इपिक और क्लासिकल) मध्यभारतीय या प्राकृत (पाली, प्राकृत, महाराष्ट्री और अपभ्रंश) तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ। उत्तर बौद्धों की गाथा बोलियों का विचार करते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार उच्च जरमन के लोग अपनी प्रवृत्ति के अनुसार निम्न जरमन की भाषा में बोलते और सोचते हैं, उसी प्रकार गाथाओं की प्राकृत भी संस्कृत के अनुरूप लिखी गयी, जिस से उस पर संस्कृत का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। वास्तव में महाराष्ट्री अपने युग की साहित्यिक भाषा रही है। पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ ध्वनि, वाक्य-रचना एवं बनावट में एक-दूसरे से भिन्न हैं। प्राकृत अलग है और अपभ्रंश अलग। प्राकृत से अपभ्रंश में जटिलता तथा रूपों की कमी है। महाराष्ट्री प्राकृत का भी अधिकतर प्रयोग जैन-साहित्य में हुआ है। इस प्रकार कई महत्त्वपूर्ण बातों की चर्चा उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में की है। मुख्य रूप से उन्होंने अपभ्रंश को एक स्वतन्त्र भाषा निरूपित किया। डॉ. जेकोबी ने प्राकृत वाङ्मय का विशेष रूप से अनुशीलन किया। अतएव आचारांगसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कल्पसूत्र, कालकाचार्यकथानक, पउमचरियं और समराइच्चकहा आदि प्राकृत ग्रन्थों को उत्तम रीति से संशोधित सम्पादित कर प्रकाशित किया। वस्तुतः सम्पादन और प्रकाशन की दृष्टि से इन का विशेष महत्त्व है। किन्तु प्राकृतों का महत्त्व तथा स्वरूप निर्धारण करने में जो तलस्पर्शी सूक्ष्मदृष्टि तथा विवेचन की पद्धति रिचर्ड पिशेल में लक्षित होती है, वह जेकोबी में नहीं है। उन का महत्त्व विशेष रूप से अपभ्रंश-साहित्य की खोज करने में समाहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश साहित्य के प्रथम अन्वेषक

यद्यपि पिशेल महोदय के पूर्व ही हर्मन जेकोबी जैन साहित्य का महत्त्व प्रतिपादित कर चुके थे, किन्तु 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' से प्रभावित होकर उन्होंने प्राकृत साहित्य की प्रचुरता तथा अपभ्रंश-साहित्य के अस्तित्व का अनुमान लगा लिया था। रिचर्डपिशेल को भी इस बात का अत्यन्त दुःख था कि केवल आ. हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण में उद्धृत तथा अन्य व्याकरणों में उदाहृत भाषा के नमूनों को छोड़कर अपभ्रंश का कोई साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका था। अतएव अपभ्रंश का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न मिलने से वे चाहते हुए भी इस का विशेष एवं विस्तृत विवेचन नहीं कर सके। उन के विचार में अपभ्रंश का साहित्य अवश्य था, किन्तु वह लुप्त हो चुका था। अतएव पिशेल बीम्स, होएफर, लास्सन और भण्डारकर आदि के इस विचार से सहमत नहीं हुए कि प्राकृतभाषाएँ कृत्रिम तथा काव्य की भाषाएँ हैं। उन का मत सेनार से बिलकुल मिलता है कि प्राकृत भाषाओं की जड़ें जनता की बोलियों के भीतर जमी हुई हैं। अपनी इस मान्यता को कई स्थानों पर उन्होंने सप्रमाण पुष्ट किया है। वस्तुतः यही उन की थीसिस है। यदि उस समय अपभ्रंश-साहित्य की एक भी रचना उन्हें प्राप्त हो जाती तो उन्हें बड़ा बल एवं आधार प्राप्त हो जाता। किन्तु उन का अनुमान पुष्ट था, यह देखकर आज आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। कम से कम सामग्री के आधार पर अच्छे से अच्छा विवेचन प्रस्तुत कर शोध की एक नवीन दिशा को उन्होंने जन्म दिया, इस में कोई सन्देह नहीं।

अपभ्रंश साहित्य के अनुसन्धान की कथा हर्मन जेकोबी की भारतीय यात्रा से सम्पृक्त है। जेकोबी ने बहुत पहले ही इस बात का दृढ़ अनुमान कर लिया था कि अपभ्रंश साहित्य अवश्य ही भारत के किसी न किसी कोने में अज्ञात पड़ा है। अतएव इस खोज-यात्रा के सन्दर्भ में उन्होंने दो बार भारत के लिए जर्मनी से प्रवास किया। अपने द्वितीय प्रवास में सन् १९१३–१४ में भारतवर्ष के कई प्रमुख जैन भण्डार-केन्द्रों का परिभ्रमण किया। मार्च १९१४ में जेकोबी अहमदाबाद पहुँचे। गुजरात, राजपूताना के कितने ही जैन ग्रन्थ-भण्डारों का अवलोकन करते हुए जब आशा-निराशा की तरंगों में डूबते-उतराते वे अहमदाबाद के एक जैन ग्रन्थ-भण्डार को देखने गये तभी एक जैन साधु के पास रखी हुई एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रति पर उन की दृष्टि पड़ी। उन्होंने जब उस ग्रन्थ के सम्बन्ध में पूछा तो बताया गया कि यह प्राकृत की कोई अज्ञात रचना है। स्वभावतः जेकोबी महोदय ने उसे उलट-पलट कर देखा, और उस ग्रन्थ की दो-चार पंक्तियों को ध्यान से पढ़ा। ग्रन्थ पढ़ते ही जेकोबी अत्यन्त चमत्कृत हुए और हर्ष से उछल पड़े। तुरन्त ही उन के मुख से जो शब्द निकल पड़े उन का भाव था कि "अरे! यह तो कोई अपभ्रंश रचना लग रही है।" उन्हें उस समय उतना ही आनन्द प्राप्त हुआ, जितना कि पुत्ररत्न की प्राप्ति के समय होता है। उस ग्रन्थ को समग्र रूप से पढ़ने की उत्सुकता और उत्साह में वे वहीं उपाश्रय में बैठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर तुरन्त अपने हाथ से प्रतिलिपि करने लगे। यहाँ तक कि उस दिन वे पूरी रात जागते रहे और उस कथाग्रन्थ की प्रतिलिपि करते रहे। जिस साधु के भण्डार से यह काव्यग्रन्थ मिला था, वह साधु डॉ. जेकोबी को काव्यग्रन्थ देने के लिए तैयार नहीं था। अतएव डॉ. जेकोबी कई दिनों तक लगातार बैठ कर उस की नक़ल करते रहे, और बाद में अवशिष्ट पत्रों की फ़ोटोकापी तैयार करवायी। यह काव्यग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में महाकवि धनपाल का लिखा हुआ 'भविसयत्तकहा' था। अपभ्रंश साहित्य का यह प्रथम महत्त्वपूर्ण काव्य डॉ. जेकोबी के सतत प्रयास से प्रकाश में आया। कुछ दिनों के बाद सौराष्ट्र के प्रवास में उन्हें एक दूसरा काव्यग्रन्थ उपलब्ध हुआ। यह राजकोट के एक साधु के पास से प्राप्त हुआ था। इस ग्रन्थ का नाम 'नेमिनाथचरित' था। इस की पूर्ण हस्तलिखित प्रति ही जरमन विद्वान् को मिल गयी थी। इस प्रकार अपभ्रंश ग्रन्थों की पहली जानकारी डॉ. जेकोबी को प्राप्त हुई थी।

उन दिनों प्रथम महायुद्ध के विप्लव-बादल चारों ओर मँडरा रहे थे। विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। इस लिए लगभग चार वर्षों तक जेकोबी महोदय कुछ भी प्रकाशित नहीं कर सके। सन् १९१८ ई० में म्यूनिक रायल एकेडेमी से 'भविसयत्तकहा' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ, जो व्याकरण, शब्द-रचना, शब्दकोश आदि से भलीभाँति अलंकृत था। एक ही प्रति पर आधारित होने के कारण ग्रन्थ में अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक ही था, किन्तु परिश्रम बहुत अधिक किया गया था। अपभ्रंश का सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाला यही साहित्यिक ग्रन्थ था। इस के प्रकाशित होने के तीन वर्षों के पश्चात् सन् १९२१ में डॉ. जेकोबी ने आ. हरिभद्रसूरि विरचित 'नेमिनाथचरित' के अन्तर्गत 'सनत्कुमारचरित' का सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया। सन् १९२३ में भारतवर्ष में प्रथम बार गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़, बड़ोदा से सी. डी. दलाल और पी. डी. गुणे के द्वारा सुसम्पादित भविष्यदत्तकथा का प्रकाशन किया गया। उस के बाद अनेक अपभ्रंश ग्रन्थों का पता लगता गया। भारतीय विद्वान् जिन्हें प्राकृत का समझते रहे, उन में से कई ग्रन्थ अपभ्रंश के निकले। यहाँ तक कि पूना में संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के समय जो जैन ग्रन्थ निर्दिष्ट किये गये थे उन्हें प्राकृत का बताया गया था, किन्तु पं. नाथूराम प्रेमी ने उन अपभ्रंश ग्रन्थों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला था। भारतवर्ष में विगत तीन दशकों के पूर्व तक सामान्य रूप से प्राकृत तथा अपभ्रंश में कोई अन्तर नहीं समझा जाता था। आज भी अधिकतर संस्कृत के विद्वान् अपभ्रंश को संस्कृत या प्राकृत से उत्पन्न तथा अभिन्न मानते हैं। डॉ. जेकोबी ने इस साहित्य को खोज कर वास्तव में महान् उपकार किया।

डॉ. जेकोबी के अनुसन्धान के उपरान्त अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में जो नये सिरे से विचार किया गया, उस में मौलिकता की दृष्टि से डॉ. एल. पी. टेस्सिटरी का योगदान मुख्य है। यद्यपि उन का मुख्य शोध-कार्य पश्चिमी राजस्थानी पर है, किन्तु राजस्थानी और गुजराती का पूर्ण विचार अपभ्रंश के मूल सन्दर्भ में हुआ है। उन का शोध-निबन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नोट्स आन द ग्रैमर ऑव द ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी विद स्पेशल रिफ्रेंस टु अपभ्रंश एण्ड गुजराती एण्ड मारवाड़ी' शीर्षक से 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' में धारावाहिक रूप से १९१४ के अप्रैल से ले कर १९१६ के जून तक के कई अंकों में प्रकाशित हुआ। वास्तव में यह एक शोध-प्रबन्ध ही है। इस का हिन्दी अनुवाद 'पुरानी राजस्थानी' के नाम से ना. प्र. सभा, काशी से वि. सं. २०१२ में प्रकाशित किया गया। इस के अनुवादक विषय के तत्त्वज्ञ श्री नामवरसिंह हैं। जैसा कि डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने कहा है कि यह राजस्थानी तथा गुजराती भाषातत्त्व की बुनियादी पुस्तक है, वैसे ही यह भी कहा जा सकता है कि अपभ्रंश-युग के ध्वनि-तत्त्व के विकास की दिशा को समझने के लिए यह वास्तव में बुनियादी पुस्तक है। डॉ. नामवरसिंह के शब्दों में, "तेस्सितोरी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की उस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिस के विना आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता।" वस्तुतः टेस्सिटरी ने ध्वनि-विचार भाषावैज्ञानिक प्रक्रिया के सर्वथा अनुकूल तथा युक्तियुक्त किया है। उन का कथन है कि प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में भी वही ध्वनि-व्यवस्था है जो अपभ्रंश में है, अन्तर केवल इतना है कि प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में जैन महाराष्ट्री की तरह आद्य ण तथा मध्यग ण्ण दन्त्य हो जाते हैं। अपने इस अध्ययन में टेस्सिटरी ने प्राकृत भाषाओं के व्याकरण, लास्सन, डॉ. हॉर्नले तथा ट्रम्प आदि के विचारों का भलीभाँति आश्रय लिया है। लेखक ने परिशिष्ट में प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की दस रचनाओं के संकलित उदाहरण भी दिये हैं।

यद्यपि डॉ. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन का महान् शोध-कार्य 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण' बहुत समय पहले ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु सर्वेक्षण की प्रथम जिल्द 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया' के नाम से सन् १९२७ में प्रकाशित हुई। इस के प्रथम भाग में डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के तीन सोपानों को तीन प्राकृतों के नाम से अभिहित किया है। उन की मान्यता है कि शताब्दियों से भारतीय आर्य-भाषा प्राकृत नाम से पुकारी जाती रही है। प्राकृत का अर्थ है--नैसर्गिक एवं अकृत्रिम भाषा। इसी प्रकार इन प्राकृतों की आधारभूत बोलचाल की जन-भाषाएँ रही हैं। इन प्राकृतों के मुख्य दो रूप थे--पश्चिमी तथा पूर्वी प्राकृत। पश्चिमी प्राकृत शूरसेन प्रदेश अथवा गंगा के मध्य दोआब के निकट से ले कर सुदूर पश्चिमोत्तर प्रान्त में--वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान तथा बलोचिस्तान प्रदेश में--निश्चित रूप से प्रचलित थी। पूर्वी प्राकृत की प्रमुख भाषा मागधी थी। अपभ्रंश जनता की भाषा थी, जिसे स्थानीय प्राकृत भी कहा गया है। अपभ्रंश की विभिन्न विभाषाओं से ही आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास हुआ--यह डॉ. ग्रियर्सन की मुख्य मान्यता है। इस का विस्तार से विचार करने वाले प्रथम विद्वान् ग्रियर्सन ही हैं। मुख्य रूप से उन्होंने सिन्धु नदी के निचले प्रदेश की अपभ्रंश को व्राचड, दक्षिण की दाक्षि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णात्य, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक ओड्र अथवा औत्कल अपभ्रंश, छोटा नागपुर, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के आधे भाग में वाराणसी तक मागध अपभ्रंश का प्रसार था। इस प्रकार डॉ. ग्रियर्सन ने अपभ्रंश की विभिन्न विभाषाओं से आधुनिक भा. आर्य-भाषाओं का विकास मान कर विकास की अवस्थाओं का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया।

डॉ. ग्रियर्सन के ही समकालीन पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने वि. सं. १९७८ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका न. सं., भाग २ में 'पुरानी हिन्दी' के नाम से एक नवीन अवधारणा प्रस्तुत की, जिस के अनुसार अपभ्रंश की उत्तरकालिक अवस्था की भाषा को 'पुरानी हिन्दी' कहा गया। गुलेरी जी के अनुसार—"पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्तमान भेद को पीछे की ओर ढकेल कर बनाये गये हैं। जैसे नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासों तक की कविता 'व्रज-भाखा' कहलाती थी वैसे अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहना अनुचित नहीं, चाहे कवि के देशकाल के अनुसार उस में कुछ रचना प्रादेशिक हो।" वस्तुतः गुलेरी जी की यह मान्यता मान्य नहीं हो सकी। क्योंकि अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने में कोई लाघव नहीं था। फिर, अपभ्रंश का विपुल साहित्य उन के समय तक प्रकाश में नहीं आया था, जिस में देशी भाषा, अवहंस, अवहट्ट आदि कई शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा के लिए मिलता है। अतएव उन का सुझाव व्यावहारिक होने पर भी मान्य न हो सका।

इधर प्राकृत भाषा का परिचयात्मक व्याकरण तथा साहित्य का विचार करते हुए ए. सी. वुल्नर ने 'इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' लिखा, जो सन् १९१७ में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में उन्होंने डॉ. ग्रियर्सन और जेकोबी की मान्यताओं का उल्लेख करते हुए ऋग्वेद में प्राप्त होने वाली प्राकृत-ध्वनियों तथा ध्वनि-तत्त्वों की विविधता का उल्लेख किया। संस्कृत की तुलना वुल्नर ने लेटिन से की, जो शिक्षित तथा पण्डितों की भाषा रही है। अपभ्रंश को उन्होंने स्पष्ट रूप से परवर्ती प्राकृत कहा है। इस में कोई सन्देह नहीं है कि प्राकृत की सामान्य विशेषताएँ सामान्य रूप से अपभ्रंश में मिलती हैं, किन्तु भाषा-रचना की दृष्टि से दोनों सर्वथा भिन्न हैं।

इस बीच अपभ्रंश का बहुत कुछ साहित्य प्रकाश में आया। सन् १९१६ में बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से म. म. हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा 'बौद्धगान ओ दोहा' का प्रकाशन हुआ। प्रो. हीरालाल जैन का महत्त्वपूर्ण लेख 'अपभ्रंश-साहित्य '(लिटरेचर)' 'इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, भाग १' में प्रकाशित हुआ, जिस में कई अज्ञात अपभ्रंश रचनाओं का प्रथम बार विवरण प्रस्तुत किया गया। कुछ समय बाद सन् १९२६ में रायबहादुर हीरालाल का 'केटलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन द सी. पी. एण्ड बरार', नागपुर से तथा १९३० में एच. डी. वेलणकर का 'केटलाग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स', जिल्द ३-४, बम्बई से एवं 'जिनरत्नकोष' (१९४४) पूना से प्रकाशित हुए, जिन में अपभ्रंश रचनाओं का विवरण मिलता है। प्रकाशन की दिशा में बीसवीं शताब्दी का तृतीय शतक अपभ्रंश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। भविष्यदत्तकथा के प्रकाशन के अनन्तर गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ के अन्तर्गत ही पं. लालचन्द्र भगवान् गान्धी के दो संकलन प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह तथा अपभ्रंश-काव्यत्रयी क्रमशः १९२० एवं १९२७ में प्रकाशित किये गये। इधर डॉ. बाबूराम सक्सेना ने 'कीर्तिलता' का विधिवत् सम्पादन किया, जो पुस्तक के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से १९२९ में प्रकाशित हुई। किन्तु इन सब से महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ. पी. एल. वैद्य तथा डॉ. हीरालाल जैन का था। डॉ. वैद्य के द्वारा सम्पादित 'यशोधरचरित' १९३१ में तथा डॉ. जैन द्वारा सम्पादित 'सावयधम्म-दोहा' १९३२ में तथा 'पाहुडदोहा' एवं 'णायकुमारचरिउ' १९३३ में कारंजा से प्रकाशित हुए। इसी समय राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी-अपभ्रंश के प्राचीनतम कवि और उन की कविताओं के सम्बन्ध में कदाचित् पहली बार आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। लगभग १९३४ से ३७ के बीच टी० बरो के द्वारा प्रकाशित विभिन्न शोधपत्रों एवं पुस्तक 'द लैंग्वेज़ ऑव द खरोस्ट्री डाकुमेण्ट्स' से निय-प्राकृत के सम्बन्ध में नयी जानकारी प्राप्त हुई।

अपभ्रंश साहित्य का सम्पादन-काल

यद्यपि 'प्राकृत व्याकरण' सन् १८७७ ई. में तथा 'भविष्यदत्तकथा' सन् १९१८ में प्रकाशित हो चुकी थी, किन्तु यथार्थ में १९वीं शती का अन्तिम चरण अपभ्रंश की अनुसन्धानात्मक खोज-खबर का काल था। अपभ्रंश का प्रारम्भिक काल भाषा के शोध एवं अनुसन्धान का था, जो लगभग सन् १८३५ ई. से प्रारम्भ हो कर लगभग सन् १९१५ ई. तक का समय था। इन लगभग पचास वर्षों में अपभ्रंश के सम्बन्ध में नानाविध अनुमान किये गये, तथा भाषा की दृष्टि से कई विद्वानों ने ऊहापोह किया। लगभग सन् १९१५ से १९३० ई. तक का समय अपभ्रंश साहित्य की खोज का समय था। इस के तुरन्त बाद ही अपभ्रंश साहित्य का सम्पादन-काल आरम्भ हो जाता है। सन् १९३१ से १९६० ई. तक का समय अपभ्रंश साहित्य का सम्पादनकाल रहा है। इस काल में डॉ. पी. एल. वैद्य द्वारा सम्पादित 'जसहरचरिउ' के अतिरिक्त तीन भागों में महाकवि पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' सम्पादित हो कर सन् १९३७-४१ ई. में माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित हुआ। इसी समय राहुल जी ने हिन्दी काव्यधारा का सम्पादन किया। जिस में ७५०-१२०० ई. तक के ८४ सिद्धों तथा अन्य अपभ्रंश कवियों की काव्य रचनाओं के अंश प्रकाशित हुए। इसी काल में मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित मेरुतुंगाचार्य विरचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' (शान्ति-निकेतन, वि. सं. १९८९), राजशेखर सूरि कृत 'प्रबन्ध कोश' (सं. १९९१), 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' (सं. १९९२) एवं 'सन्देशरासक' (सन् १९४५ ई.) प्रकाशित हुए। डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित 'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' सन् १९३७ ई. में ही प्रकाश में आ चुके थे। इस सामग्री के प्रकाशन से तथा 'जिनरत्न-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोश' (पूना, सन् १९४४ ई.) के प्रकाशित हो जाने से अपभ्रंश का बहुत कुछ साहित्य जानकारी में आ गया। किन्तु, आलोचनात्मक दृष्टि से इस का अध्ययन सन् १९५० ई. के पूर्व नहीं किया गया। यद्यपि हिन्दी साहित्य के समर्थ समालोचक डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी सन् १९४० ई. में 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में अपने क्रमबद्ध विचार प्रकट कर चुके थे और पं. नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' (सन् १९४२ ई.) में स्वयम्भू आदि की स्थिति का विचार-अनुशीलन कर चुके थे, किन्तु इस साहित्य का वास्तविक मूल्यांकन डॉ. द्विवेदी जी ने 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' (सन् १९५२ ई.) में किया।

ग्रन्थ-सूची के निर्माण का कार्य भी इन्हीं वर्षों में सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम 'बृहत्टिप्पनिका' नामक प्राचीन जैन ग्रन्थसूची अनुमानतः विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग लिखी गयी थी। यह मुख्य रूप से अणहिल्लपुर, पाटण, खम्भात, भरुच और प्रभासपाटण के मुख्य भण्डारों की ग्रन्थ-सूची कही जाती है। आधुनिक युग में कदाचित् प्रथम बार जरमन से १८९७ ई. में 'वीनेर जेटिश्चिफ्ट फु डी कुण्डे डेस मोरजेनलेण्डस' प्रकाशित हुआ, जिस में पृष्ठ २९७-३१२ पर अर्नेस्ट ल्युमन के द्वारा निर्मित 'ए लिस्ट ऑव द स्ट्रासबर्ग कलेक्शन ऑव दिगम्बर मैन्युस्क्रिप्ट्स' का प्रकाशन किया गया। इस में २०० हस्तलिखित दिगम्बर जैन-ग्रन्थों की सूची है। भारतवर्ष में कोल्हापुर से सं. १९०० में 'ए केटलॉग ऑव द मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द मठ ऑव श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक पट्टाचार्य महास्वामिन्' हिन्दी में प्रकाशित हुआ। अनन्तर वि. सं. १९६५ में श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बम्बई से 'जैनग्रन्थावलि' प्रकाशित हुई। इसी प्रकार सन् १९१८ में सूरत से मोहनलाल जी जैन-भण्डार-सूची का प्रकाशन झवेरचन्द रायचन्द ने कराया। किन्तु व्यवस्थित रूप से यह कार्य श्री चिमनलाल डाह्याभाई दलाल के द्वारा सम्पन्न हुआ। उन की पुस्तक 'पाटणना भण्डारो अने खास करीना तेमां रहेलुं अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती साहित्य' सन् १९१४ में प्रकाशित हुई। यथार्थ में हर्मन जेकोबी के अनन्तर अपभ्रंश साहित्य की शोध-अनुसन्धान की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण चरण था, जिस के प्रकाशित होते ही अपभ्रंश की साहित्यिक सामग्री का पता चल सका। यही नहीं, १९२३ में 'केटलॉग ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स इन जैसलमेर भण्डाराज' के बड़ौदा ओरियण्टल सीरीज से प्रकाशन के साथ ही अपभ्रंश का बहुत सा साहित्य प्रकाश में आ गया। सन् १९२५ में पूना से 'लिस्ट्स ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स कलेक्टेड फ़ॉर द गवर्नमेण्ट मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी' प्रकाशित हो गया। सन् १९२६ में नागपुर से रायबहादुर हीरालाल के द्वारा सम्पादित 'केटलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द सेण्ट्रल प्रोविन्सेज एण्ड बेरार' वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय कार्य है। मुनि श्री चतुरविजय जी के द्वारा सम्पादित 'लींबड़ीना जैनज्ञानभण्डारनी हस्त-लिखित सूची' वि. सं. १९८५ में बम्बई से प्रकाशित हुई। इसी प्रकार श्री ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, बम्बई से ले कर आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भण्डार-ग्रन्थसूची, जयपुर तक कई छोटी-बड़ी ग्रन्थ-सूचियाँ प्रकाशित हुईं। इन में बनारसीदास द्वारा सम्पादित 'पंजाबभण्डार सूची,' 'एन अल्फावेटिकल लिस्ट ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा', पूना से १९४४ में प्रकाशित 'जिनरत्नकोश' तथा 'खम्भात शान्तिनाथ प्राचीन ताड़पत्रीय जैन भण्डारसूची' उल्लेखनीय हैं। गत दो दशाब्दों में मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित 'ए केटलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द राजस्थान ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' (जोधपुर संग्रह), डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के द्वारा सम्पादित 'राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की ग्रन्थसूची' ५ भाग तथा पं. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह के द्वारा लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित तीन भाग 'केटलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार १९६४ में प्रकाशित 'ए केटलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द डेकन कॉलेज पोस्टग्रेज्युएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट,' जिल्द १ अत्यन्त उपयोगी है।

भाषाविषयक अनुशीलन

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जॉन लेडन ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना प्रस्तुत की थी, जिस के अनुसार अवेस्ता की भाषा को एक प्रकार की प्राकृत और शौरसेनी कहा गया था। कुछ देशी-विदेशी विद्वानों ने प्राकृतों का विचार करते हुए किसी न किसी रूप में वैदिक तथा अवेस्ता की भाषा से लोक भाषा के रूप में प्राकृत का सम्बन्ध निरूपित किया है। डॉ. स्टीन की खोतान से नियप्राकृत के अभिलेखों की खोज के अनन्तर यह सिद्ध हो चुका है कि भारत के बाहर भी प्राकृत भाषा बोलचाल के रूप में रही है। डॉ. आल्सडोर्फ ने अपभ्रंश की ओर विशेष रूप से ध्यान दे कर व्याकरण गत विशेषताओं का निर्देश किया। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के सन्दर्भ में पिछले पाँच दशकों में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये। किन्तु आज तक के प्रकाशित सभी प्राकृत व्याकरणों में सर्वोत्तम और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्धहैम शब्दानुशासन (१०८८-११७२ ई.) आचार्य हेमचन्द्र का प्राकृत भाषा का व्याकरण है। वस्तुतः यह ग्रन्थ का आठवाँ अध्याय है।

प्राकृत व्याकरण पर सब से पहले होएफर ने अपनी पुस्तक 'डे प्राकृत डिअलेक्टो लिब्रिदुओ' में सन् १८३६ में (बर्लिन में) अपने विचार प्रकट किये थे। प्रायः उसी समय लास्सन ने अपनी पुस्तक 'इन्स्टीट्यूत्सी ओनेस लिंगु आए प्राकृतिकाए' प्रकाशित की। इस में प्राकृत भाषा से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की गयी थी। यह पुस्तक बॉन (जरमन) से सन् १९३९ में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार इस शताब्दी के पूर्व में विशेषतया प्राकृत भाषा का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन का कारण मूल रूप से तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक प्रवृत्ति कही जा सकती है, जिस के मूल में भाषा की सर्व प्राचीन अवस्था की खोज करना था। इसी विषय से सम्बन्धित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८ दिसम्बर १९३६ में लिंग्विस्टिक कान्फ्रेंस बर्लिन में लुडविग आल्सडोर्फ' ने 'द ओरिजन ऑव द न्यु इण्डो-आर्यन स्पीचेज' नामक शोधपत्र में १५०० ई. पू. से ले कर आधुनिक युग तक की प्राकृत बोलियों का संक्षिप्त विवेचन किया था। अपने शोधपत्र में उन्होंने प्राकृत बोलियों का प्रभाव वेदों तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य पर भी बताया। मूल रूप में प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के विकास क्रम में महत्त्वपूर्ण योग प्राकृत बोलियों का रहा है। यह उन के शोधपत्र में विवेचित मुख्य विचार था। उन के बाद अनेक विद्वानों ने इस विषय पर अपने विचार स्वतन्त्र रूप से प्रकट किये। उन सभी में प्रबोध बेचरदास पण्डित के विचार उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने प्राकृत भाषा के व्याख्यान में जो पार्श्वनाथ विद्याश्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुका है, अपनी मान्यताओं को अधिक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया। अपभ्रंश और जूनी गुजराती की दृष्टि से डॉ. भायाणी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतीय विद्या पत्रिका (१७,३-४) में इस सम्बन्ध में पूरी एक लेखमाला ही प्रकाशित हुई। गुजराती तथा अपभ्रंश के कई शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन उन्होंने प्रस्तुत किया। बाद में डॉ. श्रीमती श्रीयन् ने देश्य शब्दों का भली भाँति विचार कर पुष्पदन्त के महापुराण का देशी शब्दों के सन्दर्भ में विशेष रूप से अनुशीलन कार्य किया। चतुर्मुख के सम्बन्ध में भी भायाणी जी ने पर्याप्त प्रकाश डाला, जिस से अपभ्रंश साहित्य लगभग एक शताब्दी पहले का भली भाँति निश्चित हो गया। यद्यपि राहुल सांकृत्यायन बहुत पहले ही अपभ्रंश साहित्य का मूल्यांकन कर चुके थे और गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' पर अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू का प्रभाव 'हिन्दी-काव्यधारा' की भूमिका में प्रतिपादित कर चुके थे, किन्तु डॉ. तोमर, बाहरी, नामवरसिंह डॉ. हरिवंश कोछड़ और डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन ने हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में विचार किया। भाषा की अपेक्षा साहित्य के सम्बन्ध में ही इन विद्वानों की पुस्तकों में अनुशीलन किया गया। हिन्दी में अपभ्रंश भाषा का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव की पुस्तक अच्छी है। इस में केवल अपभ्रंश का ही नहीं, अपभ्रंश की उत्तरकालिक अवस्था अवहट्ट का भी अनुशीलन किया गया है। पं. राहुल सांकृत्यायन ने ही ज्ञानसार ग्रन्थावली के प्राक्कथन (पृ. १) में यह उल्लेख किया कि १०० से अधिक अपभ्रंश रचनाएँ तोफुर में तिब्बती अनुवाद में मिली हैं, जिन का भारतवर्ष में अस्तित्व नहीं है। आज तक ये रचनाएँ किसी भारतीय भण्डार में उपलब्ध नहीं हुईं। इस दिशा में डॉ. कासलीवाल ने राजस्थान के जैन ग्रन्थ-भण्डारों की ५ भागों में ग्रन्थ-सूचियाँ प्रकाशित कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसी प्रकार से आगरा और दिल्ली के जैन भण्डारों की ग्रन्थ-सूचियाँ अपने-अपने ढंग से तैयार हुईं। वास्तव में ग्रन्थ-सूची के सम्पादन तथा प्रकाशन का कार्य इतना सरल नहीं है, जितना कि समझा जाता है। किसी भी अच्छी ग्रन्थ-सूची में ग्रन्थ से सम्बन्धित पूरा विवरण होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। केवल ग्रन्थ के पत्रों की संख्या, आकार तथा लेखक के नाम का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख कर देने से वह ग्रन्थ-सूची नहीं बन जाती। उस की प्रशस्ति के विवरण के उल्लेख के साथ उस से सम्बन्धित सभी सूचनाएँ, भाषा की प्रामाणिकता के बोधक कतिपय अंश, लेखक के परिचय से सम्बन्धित विवरण का निर्देश होना भी आवश्यक है। इस दृष्टि से अभी तक श्रीजिनरत्नकोश, ला. द. शोधसंस्थान, अहमदाबाद तथा जोधपुर संग्रह की संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों की प्रकाशित सूचियाँ अच्छी कही जा सकती हैं। किन्तु इन से भी अच्छी सूचियों के प्रकाशन की आवश्यकता है, जिन में ग्रन्थ से सम्बन्धित सभी प्रकार का विवरण मिल सके। विदेशी विद्वानों के द्वारा इस प्रकार की आदर्श ग्रन्थ-सूचियों का प्रकाशन हो चुका है। उन की आदर्श-पद्धति पर यह कार्य किया जा सकता है। अब समय आ गया है, जब इस इस प्रकार के कार्य का ही विशेष रूप से मूल्यांकन एवं श्रेय-सम्पादन हो सकेगा।

अपभ्रंश-साहित्य में शोध-कार्य

अपभ्रंश-साहित्य में विश्वविद्यालयीन स्तर पर भारतवर्ष में प्रथम शोध-कार्य डॉ. हीरालाल जैन का 'अपभ्रंश स्टडीज़' है, जो सन् १९४४ में नागपुर विश्वविद्यालय के द्वारा डी. लिट्. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। किन्तु यह शोध-प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका। प्रथम प्रकाशित शोध-प्रबन्ध गजानन वासुदेव तगारे का 'हिस्टारिकल ग्रैमर ऑव अपभ्रंश' था, जो १९४० में पूना से प्रकाशित हुआ। दूसरा लघु प्रबन्ध डॉ. नामवरसिंह की लोकप्रिय पुस्तक 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' है, जिस का प्रकाशन-काल १९५२ है। १९५३ में सिन्धी जैन ग्रन्थमाला से डॉ. हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी का बम्बई विश्वविद्यालय से पीएच. डी. के लिए स्वीकृत 'पउमचरिउ' (विविध पाठभेद, विस्तृत प्रस्तावना, शब्दकोश आदि से समलंकृत) का प्रकाशन हुआ। यद्यपि रामसिंह तोमर को सन् १९५१ में ही प्रयाग विश्वविद्यालय से 'प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य और उस का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' विषय पर डी. फ़िल्. की उपाधि मिल चुकी थी, किन्तु यह प्रबन्ध १९६५ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ। इस प्रबन्ध में प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य का मुख्य रूप से विवरणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिस से कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध डॉ. हरिवंश कोछड़ का 'अपभ्रंश-साहित्य' है, जिस पर १९५२ में दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि मिली थी। इस प्रबन्ध में पूर्व प्रकाशित सभी पुस्तकों तथा प्रबन्धों से अधिक अपभ्रंश-साहित्य के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है, इस लिए परिचयात्मक होने पर भी महत्त्वपूर्ण है। यथार्थ में सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य का सम्यक् मूल्यांकन विविध सूचनाओं के सन्दर्भ में लेखक के लिए प्रस्तुत कर सकना सम्भव भी नहीं था। अतएव रूपक, कथा, महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक के अन्तर्गत एवं गद्य के नमूने तथा निदर्शन प्रस्तुत करने के साथ ही लगभग तीस पृष्ठों में आलोचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्ष डॉ. नामवरसिंह को 'रासो की भाषा' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई। डॉ. धर्मवीर भारती का शोध-प्रबन्ध 'सिद्ध साहित्य' १९५३ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी. फिल्. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इस का प्रकाशन १९५५ में किताब महल, इलाहाबाद से हुआ। इस में अपभ्रंश भाषा के बौद्ध सन्त कवियोंके साहित्य का अनुशीलन संधा भाषा, प्रतीक, भाषा-शैली तथा छन्दों के अध्ययन के रूप में किया गया है। सन् १९५७ में डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (इन्दौर) को आगरा विश्वविद्यालय द्वारा 'अपभ्रंश साहित्य' विषय पर पीएच. डी. की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस शोध-प्रबन्ध में प्रथम बार प्रकाशित अपभ्रंश-साहित्य का समालोचनात्मक विस्तृत अध्ययन किया गया। किन्तु अप्रकाशित अपभ्रंश-साहित्य के सम्बन्ध में जो विवरण डॉ. कोछड़ के प्रबन्ध में मिलता है, उस का इस में अभाव है। कुल मिला कर साहित्यिक दृष्टि से अपभ्रंश की रचनाओं का जो समीक्षात्मक अनुशीलन किया गया, उस में विचारों की मौलिकता तथा प्रतिपादन की प्रौढ़ता लक्षित होती है। सन् १९५८ में आगरा विश्वविद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिए डॉ. अम्बादत्त पन्त का 'अपभ्रंश काव्य—परम्परा और विद्यापति' नामक शोध-प्रबन्ध स्वीकृत हुआ। इस में अपभ्रंश की निरुक्ति से ले कर अपभ्रंश-साहित्य के विभिन्न रूपों तथा अवहट्ठ, पुरानी हिन्दी आदि के जन्म एवं विकास का अध्ययन विद्यापति की भाषा के सन्दर्भ में किया गया है। १९५६ में ही डॉ. शम्भूनाथसिंह का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पीएच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ, जिस में अपभ्रंश के काव्य-रूपों का विचार तथा विशेषकर रोमाण्टिक काव्यों का विवेचन विस्तार से किया गया। १९५९ में डॉ. राजकुमार जैन का महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध 'पुष्पदन्त—एक अध्ययन' आगरा विश्वविद्यालय से पीएच. डी. के लिए स्वीकृत किया गया, जिस में विस्तार से नागवंश के विकास के साथ ही पुष्पदन्त की काव्यकृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया। १९६२ में राजस्थान विश्वविद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिए डॉ. गोवर्धनदास शर्मा का 'प्राकृत और अपभ्रंश—उन का डिंगल साहित्य पर प्रभाव' तथा डी. लिट्. के लिए डॉ. भोलाशंकर व्यास का 'पुरानी हिन्दी भाषा और साहित्य के विषय में 'प्राकृतपैंगलम्' का योग' प्रबन्ध स्वीकृत किये गये। १९६३ में डॉ. राजनारायण पाण्डे का 'महाकवि पुष्पदन्त—एन अपभ्रंश पोइट ऑव टेन्थ सेंचुरी' प्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। आगरा विश्वविद्यालय से ही डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री का प्रबन्ध 'भविसयत्तकहा और अपभ्रंश-कथाकाव्य' १९६४ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत किया गया। इस शोध-प्रबन्ध में पहली बार काव्य-साहित्य में कथाकाव्य और चरितकाव्य की भिन्न-भिन्न काव्य-विधाओं का विवेचन कर उन का स्वरूप निर्दिष्ट किया गया। भविष्यदत्तकथा के अतिरिक्त अधिकतर अप्रकाशित कथा-काव्यों का अनुशीलन इस प्रबन्ध में किया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार स्वतन्त्र काव्य-विधा के अध्ययन के साथ ही अपभ्रंश-कथाओं का लोकतात्त्विक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया। इसी वर्ष डॉ. राजाराम जैन का प्रवन्ध 'रइधू साहित्य का समालोचनात्मक परिशीलन' पीएच. डी. के लिए मगध विश्वविद्यालय से स्वीकृत हुआ। इस प्रकार अपभ्रंश सम्बन्धी शोध-कार्य उत्तरोत्तर समालोचनात्मक दिशा की ओर अग्रसर होता रहा। तिश्योजी नारा के कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९६४ में 'स्टडी ऑव अवहट्ठ एण्ड प्रोटो-वेंगाली' स्वीकृत शोध-प्रवन्ध में अपभ्रंश और अवहट्ठ के मौलिक अन्तर का स्पष्ट निर्देश किया गया तथा अवहट्ठ को वंगला का पूर्व रूप बताया गया। यद्यपि डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव का शोध-प्रवन्ध 'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन' पटना विश्वविद्यालय से डी. लिट्. के लिए १९६३ में स्वीकृत हुआ था, किन्तु प्रकाशन दिल्ली से १९६५ में हुआ। इस प्रवन्ध में अपभ्रंश भाषा का व्याकरणात्मक अध्ययन तथा विशेष रूप से अर्थपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। विवेचन पुष्ट तथा प्रामाणिक हैं। परिशिष्ट में 'राउलवेल' की भाषा का भी अध्ययन किया गया है। सन् १९६४ में ही डॉ. सत्यरंजन वन्द्योपाध्याय का 'द ईस्टर्न स्कूल ऑव प्राकृत ग्रैमेरियन्स' कलकत्ता विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। प्राकृत वैयाकरणों के सम्बन्ध में डॉ. सत्यरंजन बनर्जी का कार्य महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारत में भी दाक्षिणात्यों के द्वारा सम्पन्न शोध-कार्य में एच्. एन्. नरसिंहमूर्ति का हिन्दी भाषा में 'भारतीय रामायणों का अध्ययन' और म. व. चित्रलिंगय्या का 'पउमचरिउ और रामचन्द्रचरितपुराण का तुलनामक अध्ययन' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रगति की दिशा में

गत दो दशकों में अपभ्रंश भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में जो शोध कार्य हुआ है वह महत्त्वपूर्ण होने पर भी गुणात्मक दृष्टि से पर्याप्त एवं उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। क्योंकि न तो अपभ्रंश का सम्पूर्ण साहित्य अभी तक प्रकाशित हो पाया है और न इस के सम्बन्ध में की गयी खोजों का विवरण ही प्रकाशित हो सका है। प्रकाशन के क्षेत्र में भारतीय ज्ञानपीठ ही एक ऐसी संस्था है, जो सम्पादन, समालोचना, अनुवाद आदि सभी प्रकार के प्रकाशनों में विशेष रुचि लेती है। अतएव अपभ्रंश का अल्प साहित्य ही विद्वानों के हाथों में पहुँच पाता है। फिर, इस क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों की भी कमी है। जहाँ तक राष्ट्रभाषा तथा हिन्दी के माध्यम और उस के साहित्य का प्रश्न है अधिकतर शोधार्थियों की रुचि इस ओर है, और होनी चाहिए। कारण कि उन के सामने एक विशाल क्षेत्र अनुसन्धान के लिए उन्मुक्त है। अभी इस पर कार्य ही क्या हुआ है? हिन्दी-साहित्य के सन्दर्भ में तो इस से अच्छा और उपयुक्त दूसरा क्षेत्र नहीं है। क्या भाषा, क्या छन्द, क्या शैली, क्या शिल्प तथा काव्य की लगभग सभी विधाओं में लिखे गये इस साहित्य का सम्यक् मूल्यांकन, अनुशीलन व आलोचन अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी साहित्य की अधिकतर काव्य-प्रवृत्तियों के विकास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में अपभ्रंश-साहित्य का योग रहा है। अतः अब समय आ गया है, जब हिन्दी के स्नातक इस दिशा में तत्परता से शोध-कार्य में संलग्न हो कर अध्ययन-अनुशीलन कर रहे हैं। हमारी जानकारी में भारतवर्ष के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन दिनों निम्न-लिखित विद्वान् शोध-कार्य कर रहे हैं:

प्रेमसागर जैन : मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में रहस्यवाद और उस का तुलनात्मक विवेचन, डी. लिट्. के हेतु, आगरा विश्वविद्यालय।

राधेश्याम मिश्रा : अपभ्रंश-काव्य : भावसम्पदा और शिल्पविधान का विवेचनात्मक अध्ययन, डी. लिट्. के हेतु, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-कोश : व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन, डी. लिट्. के हेतु, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

प्रेमानन्द शर्मा गौड़ : संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के शृंगारिक मुक्तकों की पृष्ठभूमि में हिन्दी रीतिकालीन शृंगारिक मुक्तकों का विवेचनात्मक अध्ययन, डी. लिट्. हेतु, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

श्रीमती सरोज डफरिया : अपभ्रंश-चरितकाव्यों में शृंगार-भावना, पीएच. डी. के हेतु, इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर।

श्रीमती कमला गुप्ता : जम्बूस्वामीचरित : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पीएच. डी. के हेतु, इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर।

सुश्री महेशी कपूर : पुष्पदन्त के राम और कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पीएच. डी. के हेतु, इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर।

ए. के. जैन : अपभ्रंश काव्यों में वीर रस, पीएच. डी. के हेतु, इन्दौर विश्व-विद्यालय, इन्दौर।

जगवीरकिशोर जैन : जैन रास साहित्य, पीएच. डी. के हेतु, अलीगढ़ विश्व-विद्यालय, अलीगढ़।

सुश्री शान्ति जैन : जैन मिस्टिसिज़्म, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर।

देवकुमार जैन : जोइन्दु तथा कबीर की काव्यकृतियों का तुलनात्मक अध्ययन, रविशंकर वि. वि., रायपुर।

श्रीमती सरोजिनी जैन : रूपककाव्य-परम्परा तथा अपभ्रंश के रूपककाव्य, रविशंकर वि. वि., रायपुर।

नित्यानन्द मुद्गल : शौरसेनी अपभ्रंश और पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति, पीएच डी. के हेतु, आगरा विश्वविद्यालय से स्वीकृत विषय, अप्रैल, १९६७।

श्रीमती सूरजमुखी जैन : अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और उस का कबीर पर प्रभाव, पीएच. डी. के लिए आगरा वि. वि. से स्वीकृत विषय, फ़रवरी, १९६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमती सरला : ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑव द योगशास्त्र वर्क्स इन जैनिज्म एण्ड द पतंजलि योगदर्शन, आगरा वि. वि. से १९६९ में पीएच. डी. के हेतु स्वीकृत विषय।

पारसमल जैन : अपभ्रंश के जैन प्रेमाख्यानक काव्य (१०००-१२००), पीएच. डी. के लिए आगरा विश्वविद्यालय से स्वीकृत विषय।

इन के अतिरिक्त डॉ. राजाराम जैन 'पं. रइधू' के सम्पूर्ण साहित्य का सम्पादन व अनुशीलन कर १५ भागों में 'रइधू-ग्रन्थावली' का प्रकाशन कार्य कर रहे हैं। इस का प्रथम भाग जीवराज ग्रन्थमाला से मुद्रित हो चुका है। लेखक स्वयं 'अपभ्रंश कोश' के कार्य में संलग्न है। अभी तक लगभग तीन सहस्र शब्दों की संकलना हो चुकी है। ये दोनों ही महत्त्वपूर्ण कार्य होने जा रहे हैं। तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य 'अपभ्रंश दोहा-कोश' का है। अपभ्रंश की कई छोटी-छोटी रचनाएँ दोहों के रूप में मिलती हैं। यद्यपि रामसिंह का 'पाहुड दोहा,' योगीन्द्र का 'परमात्मप्रकाश' तथा लक्ष्मीचन्द्र का 'श्रावकाचार' प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु सुप्रभाचार्य का 'सुप्पयदोहा,' 'वारक्खरी दोहा,' 'आणंदा' तथा 'द्वादशानुप्रेक्षा' आदि विभिन्न रचनाओं में मिला कर लगभग दो सहस्र अपभ्रंश दोहों का संकलन-कार्य भी लेखक के द्वारा किया जा रहा है। लगभग एक सहस्र दोहों का संकलन हो चुका है।

निम्नलिखित अपभ्रंश के ग्रन्थों का सम्पादन-कार्य हो रहा है :

१. वड्ढमाणचरिउ—जयमित्रहल (हरिश्चन्द) : डॉ. नेमिचन्द्र जैन, शास्त्री।
२. ,, ,, —विबुधश्रीधर : डॉ. राजाराम जैन।
३. ,, ,, —नरसेन : डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री।
४. सम्मइचरिउ —पुष्पदंत (महापुराण से) : डॉ. हीरालाल जैन
५. ,, ,, —पं. रइधू : डॉ. राजाराम जैन

प्रो. प्रेम सुमन जैन कुवलयमाला के सांस्कृतिक अध्ययन पर अच्छा कार्य कर रहे हैं। किन्तु कुल मिला कर काम बहुत कम और मन्थर गति से हो रहा है।

अपभ्रंश तथा जैन साहित्य के अध्ययन-केन्द्र

उक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि भाषाओं तथा प्राच्य-विद्याओं का आधुनिक युग में सब से पहले अध्ययन-केन्द्र जरमनी था। जरमन के कई विद्वानों के सतत परिश्रम तथा मेधावी अध्यवसाय से प्राच्यविद्याओं का नये रूप से अध्ययन गम्भीरता के साथ किया गया। यह अध्ययन कई दृष्टियोंसे हुआ। भारतवर्ष में सर्वप्रथम इस प्रकार का अध्ययन-केन्द्र भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट है, जो आज भी अपनी परम्परा का भली भाँति पालन कर रहो है। जैन साहित्य के अध्ययन-केन्द्र के रूप में 'प्राकृत विद्यापीठ', वैशाली (विहार) की सब से पहले स्थापना हुई। यद्यपि पार्श्वनाथ विद्याश्रम (हिन्दू विश्वविद्यालय), वाराणसी भी इस दिशा में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत समय से प्रवर्तमान है और इधर इस संस्थान के द्वारा विशेष रूप से शोध-अनुसन्धान कार्य हुआ है। परन्तु इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य एल. डी. रिसर्च इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद से सामने आये हैं। पं. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह के कार्य तथा डॉ. ह. चू. भायाणी के कार्य प्रशंसनीय हैं। इस शोध-संस्थान के अन्तर्गत कई शोध-छात्रों ने भी अच्छे शोधप्रबन्ध लिखे तथा लिख रहे हैं। इधर मैसूर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत जैनविद्याओं (जैनियालॉजी) का जो पीठ स्थपित हुआ है, उस में निस्सन्देह डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के निर्देशन में महत्त्वपूर्ण कार्य होने जा रहे हैं। इसी प्रकार धारवाड़ विश्वविद्यालय में भी कुछ कार्य चल रहा है। मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत भी डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के सतत प्रयत्न से जैन सिद्धान्त भवन, आरा ने एक शोध-संस्थान का रूप ले लिया है।

विदेशों में पूर्व जरमनी में फ्री यूनिवर्सिटी, बर्लिन में प्रोफ़ेसर डॉ. क्लोस-ब्रुहन (Klaus Bruehn) जैन लिटरेचर एण्ड माइथालॉजी, इण्डियन आर्ट एण्ड इकोनो-ग्राफ़ी का अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। उन के सहयोगी डॉ. चन्द्रभाई बी. त्रिपाठी बुद्धिस्ट-जैन लिटरेचर तथा डॉ. मोनीका जॉर्डन 'जैन लिटरेचर' का अध्यापन करने में संलग्न हैं। इसी प्रकार पेनीसिलवानिया यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) में नॉर्मन ब्राउन के निर्देशन में प्राकृत तथा जैन साहित्य पर शोध-अनुसन्धान कार्य चल रहा है। भारतवर्ष में 'इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डिक स्टडीज' के अन्तर्गत कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि विषयों पर स्नातक शोध-कार्य कर रहे हैं। अन्य देशों में सम्प्रति तुलनात्मक भाषाशास्त्र (कम्पेरेटिव फ़िलालॉजी) के अन्तर्गत वैदिक, संस्कृत एवं आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं आदि का अध्ययन-विश्लेषण किया जा रहा है। यह कार्य रूस और अमरीका—दोनों देशों में प्रगतिशील है। प्राकृत भाषाओं का विशेष रूप से अध्ययन बेलजियम में किया जा रहा है। वहाँ पर डॉ. जे. डेल्यु 'जैनिज्म तथा प्राकृत' पर शोध-कार्य में संलग्न हैं। इसी प्रकार डॉ. एल. डी. राय 'क्लासिकल संस्कृत एण्ड प्राकृत' तथा प्रो. डॉ. आर. फोहले 'क्लासिकल संस्कृत, प्राकृत एण्ड इण्डियन रिलीजन' एवं प्रो. डॉ. ए. श्चार्पे 'एन्शियेण्ट इण्डियन लैंग्वेजेज एण्ड लिटरेचर वैदिक, क्लासिकल संस्कृत एण्ड प्राकृत' पर अध्ययन कर रहे हैं। विश्वभारती शान्ति-निकेतन में डॉ. रामसिंह तोमर के निर्देशन में भी अपभ्रंश का शोध-कार्य हुआ है। 'नैरेटिव पोइट्री इन अपभ्रंश लिटरेचर' पर पीएच. डी. के लिए कार्य हो चुका है। इसी प्रकार डॉ. भायाणी के निर्देशन में तथा डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (इन्दौर) के निर्देशन में अपभ्रंश-विषयक शोध-कार्य हो रहे हैं।

अपभ्रंश में शोध की दिशाएँ

अभी तक के अपभ्रंश के शोध-कार्य के सम्बन्ध में एक व्यापक परिप्रेक्ष्य तथा विपुल साहित्य को ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि वास्तविक शोध-कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत कम हुआ है। करने के लिए बहुत है। अपभ्रंश का कुल साहित्य लगभग तीन सौ रचनाओं का है। इन में से लगभग पचास प्रतिशत छोटी-छोटी रचनाएँ हैं तथा लगभग पचास स्फुट एवं अज्ञात रचनाएँ हैं। अब केवल सौ के लगभग ऐसी रचनाएँ हैं, जो प्रबन्ध काव्य की कोटि की हैं। उन में से लगभग दस रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं और बीस साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशनाधीन हैं। किन्तु सम्पूर्ण साहित्य का एक-चौथाई भी अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। इस के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता और उपयोगिता है। इस से भी बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि जो भाषा लगभग छठी शताब्दी से सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक काव्यभाषा रही हो, किन्तु उस का कोई शब्दकोश न लिखा गया हो। यह उचित है कि लोकयुगीन बोली से अनुप्राणित भाषा में लिखे जाने के कारण विभिन्न युगों में इस के कोश की आवश्यकता प्रतीत न हुई हो, किन्तु आज इस की उपयोगिता से मुख-विमुख नहीं किया जा सकता है। केवल अपभ्रंश-कोश की ही नहीं, 'हिन्दीव्युत्पत्ति शब्दकोश' की भी परम आवश्यकता है। हिन्दी के किसी भी कोश का सफल संकलन तथा सम्पादन बिना प्राकृत, अपभ्रंश के कोश के नहीं हो सकता। संस्कृत कोशों में भी बहुत-से देशज शब्द मिलते हैं। उन पर अभी तक किसी ने गम्भीरतापूर्वक प्रकाश नहीं डाला। अतएव हमारी दृष्टि में अपभ्रंश भाषा और साहित्य की नव्य शोधदिशाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं :

१. हिन्दी का व्युत्पत्तिमूलक शब्दकोश
२. भारतीय कृष्णकाव्य की परम्परा में अपभ्रंश कवियों का योग
३. भारतीय भाषाओं के विकास में अपभ्रंश का योग
४. अपभ्रंश तथा हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन
५. महाकवि स्वयम्भू की काव्यकृतियों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन
६. अपभ्रंश के चरितकाव्य
७. लोकतत्त्व की दृष्टि से अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों का विवेचन
८. अपभ्रंश के खण्डकाव्य
९. अपभ्रंश की काव्य-शैलियों का विकास
१०. अपभ्रंश काव्य-साहित्य में प्रयुक्त कथाभिप्राय
११. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव
१२. अपभ्रंश का रासा-साहित्य
१३. प्रतीक-परम्परा तथा अपभ्रंश साहित्य
१४. अपभ्रंश का शृंगारमूलक साहित्य
१५. हिन्दी साहित्य की रीतिकालीन शृंगारिक रचनाओं पर अपभ्रंश काव्यों का प्रभाव
१६. अपभ्रंश का वीररसात्मक साहित्य
१७. अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८. अपभ्रंश का गीतिसाहित्य

यद्यपि 'प्राकृत शब्दकोश' के सम्बन्ध में यह बात सच है कि आज तक सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन कर बृहत् कोश तैयार नहीं हो सका है। किन्तु यह बात संस्कृत कोश के सम्बन्ध में भी यथार्थ है। वास्तव में प्राच्यविद्याओं के अध्ययन-क्रम में एक बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कि 'कोशग्रन्थों' का समीक्षात्मक, शोधात्मक एवं व्युत्पत्तिमूलक समग्र अध्ययन नहीं किया गया। संस्कृत में कई प्रकार के कोश हैं— एकार्थक और अनेकार्थक, निघण्टु तथा निरुक्त भी। किन्तु उन का सर्वेक्षण आज तक नहीं किया गया। उन का ठीक से विचार नहीं हुआ। केवल पाठ तैयार होते रहे हैं। प्राकृत में साहित्य के ग्रन्थों के पाठ तैयार होते रहे। जब तक टेक्स्ट न हों, उन का विचार कैसे किया जाये। यह बात प्राकृत के सन्दर्भ में ही नहीं, अपभ्रंश के सन्दर्भ में भी ठीक है। अतः यह कहना उचित होगा कि पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में प्राकृत में जो शोध-कार्य हुआ है, वह मुख्यतः मूल ग्रन्थों के सम्पादनों से सम्बद्ध है। अपभ्रंश में यह स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। यद्यपि डॉ. हीरालाल जी के कुछ ग्रन्थ अच्छी तरह से सम्पादित हो कर हिन्दी अनुवाद के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु अभी तक कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादन तथा प्रकाशन की आवश्यकता बनी हुई है। कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :

१. स्वयम्भू : रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण)
२. धवल : हरिवंशपुराण
३. लाखू : जिनदत्तचरित्र
४. सागरदत्तसूरि : जम्बूस्वामीचरित्र
५. श्रुतकीर्ति : हरिवंशपुराण
६. अमरकीर्ति : नेमिनाथचरित्र
७. देवसेनगणि : सुलोचनाचरित्र
८. धनपाल : बाहुबलिचरित्र
९. पूर्णभद्र मुनि : सुकुमालस्वामीचरित्र
१०. भगवतीदास : मृगांकलेखाचरित्र
११. माणिक्यराज : अमरसेनचरित्र
१२. यशःकीर्ति : चन्द्रप्रभचरित्र, पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण
१३. लक्ष्मण : नेमिनाथचरित्र
१४. शुभकीर्ति : शान्तिनाथचरित्र
१५. श्रीधर : पार्श्वपुराण, वर्द्धमानचरित्र, सुकुमालचरित्र
१६. श्रीचंद : कथाकोश

उक्त अपभ्रंश काव्यों का सम्पादन-समालोचन तथा स्वतन्त्र रूप से समीक्षात्मक अध्ययन किया जा सकता है। वस्तुतः सम्पादन के कार्य में डॉ. पी. एल. वैद्य, डॉ. ह.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चू. भायाणी तथा डॉ. हीरालाल जैन के कार्य आदर्श हैं। अनुवाद की दृष्टि से भी डॉ. जैन के कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने प्राकृत तथा अपभ्रंश दोनों प्रकार के काव्यग्रन्थों का सम्पादन तथा समालोचन कुशलता के साथ किया है। अतएव शोध-कार्य करने वालों को उन के कार्यों का तथा विषय का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, जिस से किसी प्रकार की पुनरावृत्ति न हो। भाषा की दृष्टि से भी इधर डॉ. भायाणी के प्रकाशित प्राकृत तथा अपभ्रंश-सम्बन्धी कतिपय निबन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश के काव्यों में प्रयुक्त छन्दों के अध्ययन पर डॉ. एच. डी. वेलणकर का कार्य महत्त्वपूर्ण है। वे इस विषय के एकमात्र अधिकारी विद्वान् हैं। स्वयम्भूछन्द तथा छन्दोनुशासन आदि उपयोगी ग्रन्थ उन के द्वारा सम्पादित तथा समालोचित हैं। अतः उन का उपयोग किया जा सकता है।

वर्तमान और भविष्य

इधर विगत दशक में कई संगोष्ठियों, परिषदों तथा सेमिनार में प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा और साहित्य विषयक शोधपत्रों का वाचन होता रहा है। मई १९६८ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता द्वारा शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर में एक त्रिदिवसीय 'प्राकृत सेमिनार' आयोजित हुआ था। इस में लगभग चालीस अध्येता सम्मिलित हुए थे। १९६८ के अक्तूबर मास में ही अखिल भारतवर्षीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के अवसर पर भारतीय ज्ञानपीठ के द्वारा 'जैन साहित्य संगोष्ठी' का भव्य आयोजन किया गया था, जिस में ५० विद्वान् सम्मिलित हुए थे। अधिवेशन में पठित शोध-निबन्धों की सूची इस प्रकार है (प्रकाशित, अनेकान्त, २२, ३-४, पृ० १८९ से उद्धृत)—

१. द समराइच्च कहा एंड विलासवईकहा।
२. अपभ्रंश साहित्य की एक अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण कृति—पुण्णासवकहा।
३. अपभ्रंश का एक महत्त्वपूर्ण काव्य : सिरीपालचरिउ।
४. द अपभ्रंश पैसेज फ्राम अभिनवगुप्ताज़ तन्त्रसार एंड द्वात्रिंशिकावृत्ति।
५. प्राकृतिज़्म इन वेदाज़।

इस प्रकार भारतीय विद्याओं में रुचि रखने वाले विद्वानों का झुकाव अब दिनों-दिन उक्त अध्ययन की ओर बढ़ रहा है। इस से जहाँ अपभ्रंश भाषा और साहित्य के शोध-अनुसन्धान की प्रगति होगी वहीं प्राच्यविद्याओं के ज्ञान का भी विकास होगा। अतः आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तथा उन के साहित्य में शोध-अनुसन्धान कार्य में तथा अध्येताओं को अब विशेष रूप से इस के अध्ययन-अनुशीलन में प्रवृत्त होना चाहिए।

अपभ्रंश भाषा का आज तक कोई शब्दकोश नहीं लिखा गया। केवल पाइय-सद्दमहण्णव तथा अर्द्धमागधी कोश के पाँचवें भाग में लगभग एक सहस्र शब्द मिलते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, जो ठेठ अपभ्रंश के हैं। लेखक ने 'अपभ्रंशकोश' के निर्माण की दिशा में कुछ कार्य किया है और लगभग तीन सहस्र अपभ्रंश के शब्दों की संकलना हो चुकी है। यह ठीक है कि प्राकृत भाषा और साहित्य से अपभ्रंश भाषा और साहित्य विच्छिन्न नहीं रहा है, किन्तु यह भी ठीक है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और उन के साहित्य के लिए भी अपभ्रंश भाषा और साहित्य उपजीव्य रहा है। इस सम्बन्ध में स्व. डॉ. वासुदेवशरण जी अग्रवाल के विचार उद्धरणीय हैं। नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६३, अंक १ में पृ. ४९ पर उन्होंने लिखा था : "अपभ्रंश साहित्य का जब तक कोश के रूप में संग्रह न होगा तब तक हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं के सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति का उद्धार नहीं हो सकता।" इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा :

नाइत मांझ भंवर हति गीवां।—पद्मावत, ५३७,६ (जायसी)

इस में 'नाइत' शब्द सामुद्रिक व्यापारी के अर्थ में प्रयुक्त है। यही अर्थ स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' (३१,७,१) तथा 'भविसयत्तकहा' (८,१३,१) में परम्परा से पहले से ही वर्तमान था। किन्तु अपभ्रंश साहित्य की जानकारी न होने से यह अर्थ ज्ञात न हो सका। इस लिए हिन्दी कोश के सम्पादन के लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि पहले अपभ्रंश कोश का निर्माण हो जाये। डॉ. अग्रवाल जी ने यह भी बताया कि अपभ्रंश भाषा में जो विशुद्ध संस्कृत परम्परा से बाहर लोक जीवन में प्रचलित थे और पार्श्वदार से संस्कृत में सम्मिलित किये गये, ऐसे शब्द भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए : वैदिक 'इड्र' शब्द आज भी हिन्दी में इंडुरी रूप में प्रचलित है। अँगरेज़ी, हिन्दी तथा गुजराती में प्रकाशित कई लेखों में तथा परिषदों के शोध-पत्रों में इस विषय के निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु समग्र रूप से किसी भाषा विशेष का व्युत्पत्तिमूलक कोश केवल मराठी को छोड़ कर इधर प्रकाशित नहीं हुआ। आज सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के शब्दों के सर्वेक्षण का कार्य होना चाहिए, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का वास्तविक महत्त्व भी इस प्रकार के कार्यों से तथा 'कोश-रचना' से भली-भाँति प्रकट हो सकेगा। संस्कृत में भी देशी भाषाओं के जिन शब्दों का समावेश तथा संस्कृतीकरण हो गया है, वह भी एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। सम्प्रति ऐसे ही विषयों पर शोध-कार्य वास्तविक एवं उपादेय हो सकता है। केवल एक ही विषय पर विविध प्रकार से आवृत्ति करना शोध-जगत् के लिए कदापि मान्य एवं उचित नहीं होगी। किन्तु आज हिन्दी-जगत् में शोध-कार्य के नाम पर भाषा, लोक-साहित्य तथा विभिन्न विधाओं पर जो प्रबन्ध प्रकाश में आ रहे हैं, वे केवल देखते ही बनते हैं।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अध्याय

अपभ्रंश विषयक प्रकाशित शोध निबन्ध, पुस्तकें तथा प्रबन्ध

अपभ्रंश विषयक प्रकाशित शोध-निबन्धों, पुस्तकों तथा प्रबन्धों की सूची

इस सूची में सन् १८३६ से लेकर १९७१ ई. तक अपभ्रंश भाषा और साहित्य से सम्बन्धित संसार की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण निबन्धों, पुस्तकों तथा प्रबन्धों का संक्षिप्त विवरण वर्षानुक्रम से दिया गया है। जो निबन्ध शीर्षक से अपभ्रंश के प्रतीत नहीं होते, किन्तु जिस में अपभ्रंश के किसी भी अंग का महत्त्वपूर्ण विचार किया गया है उन्हें भी सूची में सम्मिलित किया गया है। इस विषय की संक्षिप्त सूची 'परिषद्-पत्रिका' में लेखक के द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है, किन्तु लगभग साढ़े सात सौ की सूची प्रथम बार इस पुस्तक में प्रकाशित हो रही है।

१. होएफर : डे प्राकृत डिआलेक्टो लिब्रि दुओ, बर्लिन, १८३६ ई.

२. लास्सन : इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए, बॉन, १८३७

३. स्पीगल : म्युंशनर गेलैर्ने आन्त्साइगन, १८४९

४. डॉ. अर्नेस्ट ट्रम्प : ग्रैमर ऑव द सिन्धी लैंग्वेज कम्पेयर्ड विद द संस्कृत, प्राकृत एंड द काग्नेट इंडियन वर्नाक्युलर्स, १८७२ (मूल जरमन, १८६१-६२)

५. फ्रेडरिक हेग : वर्गलेचुंग डेस् प्राकृत उन्ड डेर रोमानिश्चन-श्प्राखन, १८६९

६. जॉन बीम्स : कम्पेरेटिव ग्रैमर ऑव द आर्यन लैंग्वेजेज़ ऑव इंडिया, लन्दन, १८७२

७. एफ. एस. गूज : ऑन द नॉन-आर्यन एलीमेण्ट इन हिन्दी स्पीचेज, द इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द १, पृ. १०३–१०६, ५ अप्रैल, १८७२

८. डॉ. जे. एच. ब्युह्लर : द देशी शब्दसंग्रह ऑव हेमचन्द्र, जिल्द २, वहीं, पृ. १७–२१, १८७४

९. डॉ. जे. एच. ब्युह्लर : ऑन ए प्राकृत ग्लासरी इनटायटिल्ड पाइयलच्छी, जिल्द २, वहीं, पृ. १६६–१६८, १८७४

१०. रिचर्ड पिशेल : डे ग्रामटिकिस प्राकृतिकिस, बर्लिन, १८७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. ई. बी. कॉवेल : ए शार्ट इंट्रोडक्शन टु द आर्डनरी प्राकृत ऑव द संस्कृत ड्रामाज विद ए लिस्ट ऑव कामन इर्रेगुलर प्राकृत वर्ड्‌स, लन्दन, १८७५

१२. ई. म्युलर : बाइत्रेगे त्सूर ग्रामाटीक डेस जैन प्राकृत, बर्लिन, १८७६

१३. रिचर्ड पिशेल : हेमचन्द्राज ग्रामाटीक डेर प्राकृत श्प्राखन (हेमचन्द्र का प्राकृतव्याकरण), २ जिल्दों में, हॉल, १८७७–१८८०

१४. राजेन्द्रलाल मित्र : ए डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑव संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑव द एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, प्रथम भाग, कलकत्ता, १८७७

१५. कापेल्लर : येनाएर लिटेराट्‌रत्साइटुंग, १८७७

१६. डॉ. जे. एच. ब्युह्लर (सं.) : पाइयलच्छीनामाला, (धनपाल), गॉटिंगन, १८७९

१७. फ्रायर : प्रोसीडिंग्स ऑव द एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, १८७९

१८. एस. गोल्दश्मित्त : रावणवह या सेतुबन्ध, सम्पादित, स्ट्रासवर्ग, १८८०

१९. डॉ. रूडोल्फ हॉर्नले : द प्राकृतलक्षणम् एंड चंडाज ग्रैमर ऑव द एन्शियेंट (आर्ष) प्राकृत, कलकत्ता, १८८०

२०. डॉ. रूडोल्फ हॉर्नले : ग्रैमर ऑव हिन्दी कम्पेयर्ड विद द अदर गौडियन लैंग्वेजेज़, १८८०

२१. रिचर्ड पिशेल : देशी नामलाला, सम्पादित, कील (जरमन), १८८०, इंडियन एंटिक्वेरी, अक्तूबर, १८८१

२२. वेबर : इण्डिश स्टूडियन, १८८२

२३. जॉर्ज ग्रियर्सन : सेवन ग्रैमर्स ऑव द डाइलेक्ट्स एंड सब-डाइलेक्ट्स ऑव द बिहारी लेंग्वेज, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया, खण्ड १, कलकत्ता, १८८३

२४. शिवदत्त और परब : प्राकृतपिंगलसूत्राणि, सम्पादित, काव्यमाला सं. ४१ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८८४

२५. हर्मन जेकोबी : औसगेँ वैल्त एत्से लुंगन इन महाराष्ट्री, लिपज़िग, १८८६

२६. भण्डारकर : लिस्ट्स ऑव संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज़ इन द बाम्बे प्रेसिडेन्सी, भाग १, बम्बई, १८९३

२७. जेकब, वाकरनागल : आल्टइण्डिशे ग्रामातिक, १८९६, द्वितीय जिल्द, १९०५, तृतीय जिल्द, १९३०

२८. ई. ल्युमन : ए लिस्ट ऑव द मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी एट स्ट्रासबर्ग वियेना ओ. जर्नल, जिल्द ११, पृ. २७९, १८९७

२९. केटलॉग ऑव प्रिंटेड बुक्स एंड मैन्युस्क्रिप्ट्स इन संस्कृत बिलांगिंग ऑव द एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, कलकत्ता, १८९९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०. रिचर्ड पिशेल : ग्रैमेटिक देअर प्राकृत-श्प्राखन, स्ट्रासबर्ग, १९००

३१. कोनो स्टेन : कर्पूरमंजरी, हार्डवर्ड ओरियंटल सीरीज़, जिल्द ४, १९०१

३२. रिचर्ड पिशेल : माटेरिआलिएन् त्सूर केन्टनिस् डेस् अपभ्रंश, बर्लिन, १९०२

३३. चन्द्रमोहन घोष : प्राकृतपैंगलम्, बिब्लिओथिका इण्डिका, १९०२

३४. निकोलस मिरनोव : द धर्मपरीक्षा—ए स्टडी इन द लिटरेचर एंड हिस्ट्री ऑव रिलीजन्स, लिपज़िग, १९०३

३५. कीथ : द डेवलपमेंट ऑव संस्कृत लैंग्वेज, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०६

३६. ग्युरिनॉट : एसे डि बिब्लियाग्राफि जैन, पेरिस, १९०६

३७. सर जॉर्ज ग्रियर्सन : द पैशाची लैंग्वेजेज़ ऑव नार्थ-वेस्टर्न इण्डिया, एशियाटिक सोसायटी मोनोग्राफ्स, जिल्द ८, १९०६, प्रथम सं. लन्दन, १९०६, द्वितीय सं. फरवरी १९६९, दिल्ली

३८. हूल्टजश्च : सिंहराज का प्राकृतरूपावतार, सम्पादित, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०९

३९. बाबू जगन्मोहन वर्मा : आर्ष प्राकृत व्याकरण, काशी नागरी प्र. सभा, जुलाई, १९०९

४०. पं. नाथूराम प्रेमी : दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उन के ग्रन्थ, बम्बई, १९११

४१. जॉर्ज ग्रियर्सन : द डिरिवेशन ऑव पैशाची एंड इट्स रिलेशन टु अदर लैंग्वेजेज, जर्नल ऑव द जरमन ओरियंटल सोसायटी, १९१२

४२. हर्मन जेकोबी : प्राकृत देर जैंस, उबर आइने नीव सन्धिरीगल इन पाली उण्ड इन, उण्ड उबर दी बेटोमिंग इण्डिश्चन स्प्राखन (जरमन में), केस्टगबे डेलब्रुक स्मृतिग्रन्थ, स्ट्रासबर्ग, पृ. २११-२२१, १९१२-१३ ई.

४३. भट्टनाथ स्वामिन् : मार्कण्डेय का प्राकृतसर्वस्व, विजगापट्टम, १९१२

४४. तुकाराम लद्दू : त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरण की भूमिका, हॉल, १९१२

४५. पीटर्सन : वैदिक संस्कृत एंड प्राकृत, जर्नल ऑव द अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द ३२, १९१२

४६. जॉर्ज ग्रियर्सन : अपभ्रंश एकार्डिग टु मार्कण्डेय एंड ढक्की प्राकृत, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, पृ. ८७५-८८३, १९१३

४७. डॉ. एल. पी. टेस्सिटरी : ओरिजन ऑव द डेटिव एंड जेनेटिव एंड डेटिव-पोस्ट-पोज़ीशन इन गुजराती एण्ड मारवाड़ी, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४८. आ. विजयराजेन्द्रसूरि : अभिधानराजेन्द्र, ४ भाग, १९१३ पंचम भाग १९२१, षष्ठ-सप्तम भाग १९३४

४९. चिमनलाल डाह्याभाई दलाल : पाटणना भण्डारो अने खास करीनो तेमां रहेलुं अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती साहित्य, लाइब्रेरी मिसेलेनी, सितम्बर, १९१४

५०. हर्मन जेकोबी : विमलसूरि का पउमचरिउ, भावनगर, १९१४

५१. सुदर्शन शास्त्री : अपभ्रंश वर्सेज इन दशरूप, गुजराती प्रिंटिग प्रेस, बम्बई, १९१४

५२. डॉ. एल. पी. टेस्सिटरी : नोट्स ऑन द ग्रैमर ऑव द ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी विद स्पेशल रिफ्रेन्स टु अपभ्रंश एंड गुजराती एंड मारवाड़ी, इंडियन एंटिक्वेरी, १९१४–१९१६

५३. रायवहादुर कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी (सं.) : षड्भाषाचन्द्रिका, बम्बई, १९१६

५४. म. म. हरप्रसाद शास्त्री : बौद्धगान ओ दोहा, वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, १९१६

५५. आर. एल. टर्नर : द इंडो-जर्मेनिक एक्सेण्ट इन मराठी, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९१६

५६. पं. नाथूराम प्रेमी : हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, बम्बई, १९१७

५७. बाबू जुगलकिशोर मुख्तार : प्राकृत आदिपुराण, जैनहितैषी, भाग १३, अंक ३, पृ. १०३–१०७, मार्च, १९१७

५८. जॉर्ज ग्रियर्सन : द प्राकृत विभाषाज, द इंडियन एंटिक्वेरी, १९१८

५९. हर्मन जेकोबी : भविसयत्तकहा सम्पादित, मॅचन (जरमन), १९१८

६०. डॉ. ए. पी. बनर्जी शास्त्री : इवोल्यूशन ऑव मागधी

६१. पी. डी. गुणे : द संजममंजरी ऑव महेसरसूरि, एनल्स ऑव द भण्डारकर रि. इं., पूना जिल्द १, पृ. १५७-१६६, १९१८ ई.

६२. जॉर्ज ग्रियर्सन : एन अरेबिक वर्ड क्वेटेड बाय हेमचन्द्र—ए नोट, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९१९

६३. सुपार्श्वदास गुप्त (सं.) : ए केटलॉग ऑव संस्कृत, प्राकृत एंड हिन्दी वर्क्स इन द जैन सिद्धान्त भवन, आरा, १९१९

६४. मोहनलाल जी जैन भंडार-सूची, प्रकाशक : झवेरचन्द, गोपीपुरा, सूरत, १९१८

६५. जैन ग्रन्थावली, प्रकाशक : श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बम्बई, वि. सं. १९६५

६६. मुनि जिनविजय जी (सं.) : कुमारपालप्रतिबोध, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, सेण्ट्रल लायब्रेरी, बड़ौदा, १९२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७. पं. लालचन्द्र भगवान गान्धी : प्राचीन गुर्जरकाव्यसंग्रह, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़, बड़ौदा, १९२०

६८. आर. एल. टर्नर : गुजराती फ़ोनोलॉजी, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९२१

६९. डॉ. वेनी माधव बरुआ (सं.) : प्राकृत धम्मपद, कलकत्ता, १९२१

७०. हर्मन जेकोबी : सणयकुमारचरिउ, सम्पादित, मँचन (जरमन), १९२१

७१. सर जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : द अपभ्रंश स्तबकाज ऑव रामशर्मन्, द इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ५१, जनवरी, १९२२

७२. सर जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : स्पाण्टेनियस नेसलाइजेशन इन द इण्डो आर्यन लैंग्वेजेज, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९२२

७३. सर जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : अपभ्रंश, इंडियन एंटिक्वेरी, १९२२–२३

७४. पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : पुरानी हिन्दी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग २, पृ. ४–५९, १२१–१५८, २४१–२४९, ३७१–४६२, वि. सं. १९७८, प्रकाशित पुस्तक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि. सं. २००५

७५. बाबू पूर्णचन्द्र नाहर : प्राचीन जैन हिन्दी साहित्य, वहीं, पृ. १७१-१८८

७६. हर्मन जेकोबी : जूर फ्राग नाक डेम उरस्प्रंग डेस अपभ्रंश, प्रकाशित (फेस्टगिश्रिफ्ट जे. वाकरनागल), पृ. १२४–१३१, गॉटिंगन, १९२३

७७. सी. डी. दलाल तथा पी. डी. गुणे : भविसयत्तकहा, सम्पादित, गायकवाड़ ओ. सीरीज़, बड़ौदा, १९२३

७८. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी की पूर्ववर्ती आर्यभाषाएँ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४, अंक ४, पृ. ३७९–३९०, माघ सं. १९८०

७९. दलाल तथा लालचन्द्र भ. गान्धी : केटलॉग ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स इन जेसलमेर भाण्डाराज, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़ सं. २१, बड़ौदा, १९२३

८०. बाबू सत्यजीवन वर्मा : हिन्दी के कारक-चिह्न, ना. प्र. प., भाग ५, अंक ४, पृ. ३८५–४३६, माघ सं. १९८१

८१. जॉर्ज ग्रियर्सन : प्राकृत धात्वादेश, मेमोरीज ऑव द एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, जिल्द ८, सं. २, १९२४

८२. आर. श्मिदित : एलीमेण्टर बुक डेर शौरसेनी, १९२४

८३. लिस्ट्स ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स कलेक्टेड फ़ॉर द गवर्नमेण्ट मैन्युस्क्रिपट्स लाइब्रेरी, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इं., पूना, १९२५

८४. पं. नाथूराम प्रेमी : महाकवि पुष्पदन्त और उन का महापुराण, जैन साहित्य संशोधक, खंड २, अंक १, पृ. ५७–८०

८५. जॉर्ज ग्रियर्सन : पैशाची, सर आशुतोष मुकर्जी, सिलवर जुबिली, जिल्द ३, भाग २, पृ. ११९–१४१, कलकत्ता, १९२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८६. हीरालाल जैन : अपभ्रंश लिटरेचर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, भाग १, पृ. १५७–१८५, १९२५

८७. डॉ. वी. एस. सुकठंकर : ऑन द प्राकृत ऑव द मास ड्रामाज, जर्नल ऑव द बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९२५

८८. रायबहादुर हीरालाल : केटलॉग ऑव्र संस्कृत एंड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी सी. पी. एण्ड बरार, नागपुर, १९२६

८९. रायबहादुर हीरालाल : हिन्दीके शिला और ताम्र लेख, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, अंक १, पृ. १–१२ वैशाख सं. १९८२,

९०. वाल्टर शुब्रिंग : प्राकृत डिचटुंग उण्ड प्राकृत ग्रैमेतीक (जरमन में) एफ़. स्टेगवे जेकोबी, पृ. ८९–९७, बॉन (जरमन), १९२६

९१. बाबू सत्यजीवन वर्मा : अपभ्रंश भाषा, ना. प्र. पत्रिका, भाग ६, अंक १, पृ. ३३–४१, वैशाख, सं. १९८२

९२. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी : द ओरिजन एंड डेवलपमेंट ऑव बेंगाली लैंग्वेज, कलकत्ता, १९२६

९३. पी. एल. वैद्य : आब्जर्वेशंस ऑन हेमचन्द्राज देशीनाममाला, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रिसर्च इं., पूना, जिल्द ८, भाग १, अप्रैल १९२६

९४. मोहनलाल दलीचन्द देसाई : जैन गुर्जर कविओ, भाग १, १९२६, द्वितीय भाग १९३१

९५. लालचन्द्र भ. गान्धी : अपभ्रंश-काव्यत्रयी, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा, १९२७

९६. आर. एल. टर्नर : द फोनेटिक वीकनेस ऑव टर्मिनेशनल एलीमेंट्स इन इंडो-आयर्न, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, पृ. २२७-२३९, १९२७

९७. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया, जिल्द प्रथम, भाग १, १९२७

९८. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : भाषा एंड विभाषा, इंडियन एंटिक्वेरी, १९२७-२८

९९. ए. सी. वुलनर : इंट्रोडक्शन टु प्राकृत, लाहौर, १९१७, द्वि. सं. १९२८, तृ. सं. १९३९

१००. एच. डी. वेलणकर : वैराग्यसार ऑव सुप्रभाचार्य, एनल्स ऑव भण्डारकर ओरियंटल रि. इं., पूना, जिल्द ९, पृ. २७२-२८०, १९२८

१०१. काशीप्रसाद जायसवाल : पुरानी हिन्दी का जन्म-काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अंक २, पृ. २१९-२२७, श्रावण, सं. १९८४

१०२. पी. एल. वैद्य : हेमचन्द्र-प्राकृत व्याकरण, पूना, १९२८

१०३. एल. आल्सडोर्फ : डेर कुमारपाल प्रतिबोध, हम्बर्ग, १९२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०४. एम. शहीदुल्ला : लेस चांट्स मिस्टिक्स डे कण्ह एट डे सरह, पेरिस, १९२८

१०५. पं. हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ : पाइअ-सद्द-महण्णवो, कलकत्ता, १९२८, द्वि. सं. १९६३

१०६. स्टेन कोनो : खरोष्ट्री इंस्क्रिपशंस, १९२९

१०७. डॉ. बाबूराम सक्सेना (सं.) : कीर्तिलता, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२९

१०८. पी. वी. रामानुजस्वामी : स्व. डॉ. टी. के. लद्दू द्वारा लिखित इंट्रोडक्शन टु त्रिविक्रम प्राकृत ग्रैमर का अनुवाद, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., जिल्द १०, भाग ३-४, पृ. १७७-२१८, अप्रैल, १९२९

१०९. मुनिश्री चतुरविजय जी (सं.) : लींबड़ीना जैनज्ञान भण्डारनी हस्त-लिखित सूची, आगमोदय समिति सूरत, बम्बई, वि. सं. १९८५

११०. नारायण बापूजी उतगीकर (सं.) : द प्राकृत्स एंड द अपभ्रंश कलेक्टेड वर्क्स ऑव सर आर. जी. भण्डारकर, जिल्द ४ पृ. ३१९-३७३, पूना, १९२९

१११. एम. सी. मोदी : भावनासन्धिप्रकरणम् ऑव जयदेव मुनि (एन अपभ्रंश पोइट्री), एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना, जिल्द ११, भाग १, पृ. १-३१, १९३०

११२. केशवप्रसाद मिश्र : डॉ. कीथ ऑन अपभ्रंश, इंडियन एंटिक्वेरी, भाग ५९, पृ. १-५, १९३० तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५६, अंक १, पृ. ३८७-३९८

११३. ज्यूल ब्लॉख : फोरलान लेक्चर्स, बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियंटल स्टडीज़, लन्दन, ५, ४, १९३०

११४. ज्यूल ब्लॉख : सम प्रोब्लेम्स ऑव इंडो-आर्यन फ़िलालॉजी, बुलेटिन स्कूल ऑव ओरियंटल स्टडीज़, लन्दन, १९३०

११५. एच. डी. वेलणकर : केटलाग ऑव प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, जिल्द ३–४, बम्बई, १९३०

११६. प्रो. एम. बी. एमेन्यु : कन्फ्युज़न इन प्राकृत बिटवीन द संस्कृत प्रिपोज़ी-शन्स प्रति एण्ड परि, जर्नल ऑव अमरीकन ओरियण्टल सोसायटी, ८,५१, पृ. ३३–३९, १९३१

११७. सत्यजीवन वर्मा : पैशाची भाषा, नागरी प्र. पत्रिका, भाग ११, अंक १, पृ. ३५–७४, वैशाख, सं. १९८७

११८. रायबहादुर हीरालाल : देशभाषा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११ अंक ४, पृ. ४३९–४४३, माघ, सं. १९८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११९. एम. बनर्जी : द देशीनाममाला ऑव हेमचन्द्र, कलकत्ता, १९३१
१२०. डॉ. परशुराम लक्ष्मण वैद्य : जसहरचरिउ, कारंजा, १९३१
१२१. एस. स्मिथ : देजीनांस दु तीप अपभ्रंश आं पाली, बी. एस. एल., ३३, पृ. १६९-७२
१२२. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : ऑन द माडर्न इण्डो-आयर्न वर्नाक्युलर्स, इण्डियन एण्टिक्वेरी, सप्लीमेण्ट, १९३१–१९३३
१२३. डॉ. आ. ने. उपाध्ये : जोइन्दु एण्ड हिज अपभ्रंश वर्क्स, एनल्स ऑव भण्डारकर ओरि. रिसर्च इं., जिल्द १२, भाग २, पृ. १३२–६३, १९३१
१२४. डॉ. आ. ने. उपाध्ये : योगीन्द्रदेव का एक और अपभ्रंश ग्रन्थ, अनेकान्त, १, ८–१० पृ. ५४४–५४८, वि. सं.१९८७
१२५. डॉ. आ. ने. उपाध्ये : कनारीज वर्ड्स इन देशी लेक्सिकन्स, एनल्स ऑव द भ. ओ. रि. इं., जिल्द १२, भाग ३, पृ. २७४–८४, १९३१
१२६. डॉ. आ. ने. उपाध्ये : शुभचन्द्र एण्ड हिज़ प्राकृत ग्रैमर, एनल्स ऑव द भ. ओ. रि. इं., जिल्द १३, भाग १, पृ. ३७–५८, पूना, १९३२
१२७. हीरालाल जैन (सं.) : सावयधम्मदोहा, सम्पादित, कारंजा, १९३२
१२८. हीरालाल जैन : पाहुडदोहा, सम्पादित, कारंजा, १९३३
१२९. हीरालाल जैन : णायकुमारचरिउ, सम्पादित, कारंजा, १९३३
१३०. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : सिण्टेक्टिक पोज़ीशन ऑव प्रिपोज़ीशन इन अर्द्ध-मागधी, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, ९, ४, पृ. ९८७–८८, १९३३
१३१. मुनि जिनविजय जी (सं.) : मेरुतुंगाचार्य रचित प्रवन्धचिन्तामणि, शान्तिनिकेतन, वि. सं. १९८९
१३२. एन. बी. दिवेटिया : नागर अपभ्रंश एण्ड नागरी स्क्रिप्ट, एनल्स ऑव द भ. ओ. रि. इं., जिल्द १४, भाग १–२, पृ. १०३–१२५, १० जनवरी, १९३३
१३३. डॉ. आल्सडोर्फ : ज़िट्श्चिफ्ट फुर इण्डोलॉजिक एण्ड ईरानिस्टिक, लिपज़िग, १९३३
१३४. वी. जे. चौकसी : द विवागसुयम एण्ड कम्पेरेटिव प्राकृत ग्रैमर, अहमदाबाद, १९३३
१३५. एम. विण्टरनित्स : ए हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर, जिल्द २, कलकत्ता, १९३३
१३६. एच. डी. वेलणकर : छन्दकोश ऑव रत्नशेखरसूरि, जर्नल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव बॉम्बे, २, ३, पृ० ५४-६०, नवम्बर, १९३३
१३७. मोहनलाल दलीचन्द देसाई : जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, बम्बई, १९३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३८. डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची : मेटेरियल्स फ़ॉर ए क्रिटिकल एडिशन ऑव द ओल्ड बेंगाली चर्यापदाज, जर्नल ऑव द डिपार्टमेंट्स ऑव लेटर्स, भाग २८, ३०, १९३३

१३९. एम. घोष : महाराष्ट्री ए लेटर फेज ऑव शौरसेनी, जर्नल ऑव द डिपार्टमेंट्स ऑव लेटर्स, १९३३

१४०. के. अमृत राव : द द्राविडियन एलीमेंट इन प्राकृत, द इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ४६

१४१. एन. एन. चौधुरी : डाकार्णव

१४२. डब्ल्यु. शुब्रिंग : वियटरग जूर इंडिश्चिन वर्सकुण्डे (छन्दकोश), जेड. डी. एम. जी., जिल्द ७५, पृ. ९७

१४३. आर. एल. टर्नर : लिंग्विस्टिका, शहीदुल्ला की समीक्षा, बी. एस. ओ. एस. जिल्द ७, पृ. ३९९, १९३३-३५

१४४. लुडविग आल्सडोर्फ : अपभ्रंश मटेरेलियन जूर केंटनिस, डेस, वेमर-कुनजन जू पिशेल, एम. विंटरनित्स स्मृतिग्रन्थ, पृ. २९–३६, लिपज़िग, १९३३

१४५. एन. बी. दिवेटिया : द वाइड साउंड ऑव ए एंड ओ इन काठियावाड़ी, जर्नल ऑव द बॉम्बे ब्रान्च ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द १०, १९३४

१४६. टी. बरो : द लैंग्वेज ऑव द खरोष्ट्री डाकुमेंट्स, बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़, १९३४

१४७. ज्यूल ब्लॉख : एल 'ए' इंडो-आर्यन (भारतीय आर्यभाषा), पेरिस, १९३४, हिन्दी अनुवाद डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९६३

१४८. प्रो. देवेन्द्रकुमार बनर्जी : ऑन द ओरिजन ऑव संस्कृत एंड द प्राकृत्स, के. बी. पाठक स्मृति ग्रन्थ, पृ. ३१९–३३२, भण्डारकर ओ. रि. इं. पूना, १९३४

१४९ पं. बेचरदास जीवराज दोशी : प्राकृतमार्गोपदेशिका, अहमदाबाद, वि. सं. १९९१, द्वि. सं.

१५०. ए. एम. घाटगे : द शौरसेनी प्राकृत, जर्नल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव बॉम्बे, १९३५

१५१. ए. एम. घाटगे : नेरेटिव लिटरेचर इन जैन महाराष्ट्री, एनल्स ऑव द भ. ओ. रि. इ., जिल्द १६, भाग १–२, १५ अप्रैल, १९३५

१५२. पी. सी. बागची (टिप्पण व अनुवाद) : दोहाकोश, जर्नल ऑव द डिपार्टमेंट ऑव लेटर्स, जिल्द २८, पृ. ९–१८०, १९३५

१५३. एम. सी., मोदी : अपभ्रंश-पाठावली (गुजराती में), अहमदाबाद, १९३५

१५४. डॉ. त्र्यम्बकलाल एन. दवे : ए स्टडी ऑव द गुजराती लैंग्वेज इन द सिक्सटीन्थ सेंचुरी, लन्दन, १९३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५५. हीरालाल जैन : स्वयम्भू एंड हिज़ टू पोइम्स इन अपभ्रंश, नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल, अंक १, पृ. ७९–८४, दिसम्बर, १९३५

१५६. हीरालाल जैन : अमरकीर्तिगणि और उन का षट्कर्मोपदेश, जैन सिद्धान्त भास्कर २, ३, पृ. ८७–९३, दिसम्बर, १९३५

१५७. हीरालाल जैन : सम फ्रेश लाइट ऑन द धाराशिव केव्स एंड द ओरिजन ऑव द शिलाहार डाइनेस्टी, जिल्द १६, १–२ एनल्स ऑव द भ. ओ. रि. इं., पूना, पृ. १–११, १५ अप्रैल, १९३५

१५८. हीरालाल जैन : अमरकीर्तिगणि और उन का षट्कर्मोपदेश, जैन सिद्धान्त भास्कर, २, ४, पृ. १२०–१३१, मार्च, १९३६

१५९. हीरालाल जैन : हिन्दी और अपभ्रंश, जैन सिद्धान्त भास्कर, ३, १, पृ. १५–२२, जून, १९३६

१६०. मुनि जिनविजय जी (सं०) : राजशेखरसूरि कृत प्रबन्धकोश, शान्तिनिकेतन, वि. सं. १९९१

१६१. मुनि जिनविजय जी (सं.) : पुरातन प्रबन्ध संग्रह, कलकत्ता, वि. सं. १९९२

१६२. लुडविग आल्सडोर्फ : हरिवंशपुराण (महापुराण के अन्तर्गत), हम्बर्ग, १९३६

१६३. एच. डी. वेलणकर : स्वयम्भूछन्द, जर्नल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव बॉम्बे, जिल्द ५, नवम्बर, १९३६

१६४. एम. डी. देसाई : अपभ्रंश काव्य, कुमारपालना समयनु एक, जैनाचार्य श्री आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ, चतुर्थ विभाग, पृ. २४६–२५९, बम्बई, १९३६

१६५. हीरालाल जैन : जैन मिस्टिसिज्म, आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ, पृ. ४३–५२, बम्बई, १९३६

१६६. डब्ल्यु. शुब्रिंग : जैन रिसर्च, नेसेसिटी ऑव, आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ, पृ. ३१–३३, बम्बई, १९३६

१६७. ल्युजिआ नित्ति : प्राकृत ग्रैमेरिअन्स टर्डिस एट डायलेक्ट्स डु (फ्रेंच में), बुलेटिन स्कूल ऑव ओरियंटल एंड अफ्रिकन स्टडीज़, सं. ८, पृ. ६८१-६८३, लन्दन, १९३६

१६८. बनारसीदास जैन : पंजाब के जैन भण्डारों का महत्त्व, जैनाचार्य श्री आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ, भाग १, आगरा, १९५०

१६९. ए. एन. उपाध्ये : मिस्टिक एलीमेंट्स इन जैनिज्म, द जैन एंटिक्वेरी, जिल्द ३, सं. २, पृ. २७–३०, सितम्बर, १९३७

१७०. पं. के. भुजबली शास्त्री : जैन प्राकृत-वाङ्मय, जैन सिद्धान्त भास्कर, ४, २, पृ. ९०–१०१, सितम्बर, १९३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७१. टी. बरो : द लैंग्वेज ऑव द खरोष्ठी डाकुमेंट्स फ्रॉम चाइनीज़ तुर्किस्तान, केम्ब्रिज, १९३७

१७२. प्रो. एच. आर. कापड़िया : फोलिएशन ऑव जैन मैन्युस्क्रिप्ट्स एंड लेटर न्युमेरल्स, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना, जिल्द १८, भाग २, पृ. १७१–१८६, १५ मार्च, १९३७

१७३. लुडविग आल्सडोर्फ : द ओरिज़न ऑव द न्यू इंडो-आर्यन स्पीचेज़, लिंग्विस्टिक कान्फ्रेन्स बर्लिन में ८ दिसम्बर, १९३६ में पठित शोधपत्र।

१७४. लुडविग आल्सडोर्फ : अपभ्रंश स्टडियन, लिपज़िग, १९३७

१७५. सी. डी. दलाल और पं. लालचन्द्र भ. गान्धी : ए डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स एट पाटन, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़, बड़ौदा, १९३७

१७६. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये : परमप्पयासु (परमात्मप्रकाश, योग-सार), परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, १९३७

१७७. राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्त्व निबन्धावली, १९३७, द्वि. सं. १९५८, किताब महल, इलाहाबाद

१७८. डॉ. उमेश मिश्र : विद्यापति ठाकुर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३७

१७९. एच. आइ. पोलेमन (सं०) : ए सेन्सस ऑव इंडिक मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द युनाइटेड स्टेट्स एंड कनाडा, १९३८

१८०. केशरी चन्द्र झवेरी (सं.) : सूरत भण्डार सूची (ग्रन्थ नाम मात्र), जैन साहित्य फण्ड, सूरत, १९३८

१८१. पी. सी. बागची : दोहाकोश, सम्पादित, कलकत्ता, १९३८

१८२. पी. वी. रामानुजस्वामी (सं.) : द देशीनाममाला ऑव हेमचन्द्र बाय आर. पिशेल, विजयानगरम, १९३८

१८३. ले प्राकृतानुशासन डे पुरुषोत्तम केहिमस, डी ला सोसायटी एशियाटिक, पेरिस, सं. ६, १९३८

१८४. एच. डी. वेलणकर : अपभ्रंश एंड मराठी मीटर्स, न्यू इण्डियन एंटि-क्वेरी, जिल्द, १, पृ. २१५-२२८, १९३८-४०

१८५. श्रीमती लुइगा नित्ति डोलची : लैस ग्रैमेरियन्स प्राकृत्स, पेरिस, १९३८

१८६. श्रीमती लुइगा नित्ति डोलची : डु प्राकृतकल्पतरु डेस् रामशर्मन् बिब्लियोथिक डि ले आल हेट्स इट्यूड्स, पेरिस, १९३९

१८७. विल्तोरे पिसानी : एन अननोटिस्ड प्राकृत इडियम, न्यू इण्डियन एंटिक्वेरी, १, २, जिल्द २, पृ. १९०-१९२, १९३९-४०

१८८. एस. एम. कत्रे : नेम्स ऑव प्राकृत लैंग्वेजेज, न्यू इण्डियन एंटिक्वेरी, जिल्द २, पृ. २९६-३०१, १९३९-४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८९. बनारसीदास (सं.) : पंजाब भण्डार-सूची, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३९

१९०. प्रो. हीरालाल जैन : अणुव्रतरत्नप्रदीप, जैन सिद्धान्त भास्कर, ६, २, पृ. १५५-१७७, दिसम्बर, १९३९

१९१. एस. एम. कत्रे : टु मिडिल इण्डो-आर्यन वर्ड्‌स, ए वाल्यूम ऑव ईस्टर्न एंड इण्डियन स्टडीज़, पृ. १४१-१४३, बम्बई, १९३९

१९२. श्रीमती लुइगा नित्ति डोलची : द अपभ्रंश स्तवकाज ऑव रामशर्मन (फ़्रांसीसी में अनुवाद), १९३९

१९३. श्रीमती लुइगा नित्ति डोलची : द शौरसेनी एंड मागधी स्तवकाज़ ऑव रामशर्मन, १९३९

१९४. मधुसूदन चिमनलाल मोदी : अपभ्रंशकविओ—चतुर्मुख स्वयम्भू अने त्रिभुवन स्वयम्भू (गुजराती), भारतीय विद्या, वर्ष १, अंक १, पृ. १५७-१७८, मार्च, १९४० तथा १, ३, पृ. २५३-२९४, अगस्त, १९४०

१९५. ए. एम. घाटगे : एन इण्ट्रोडक्शन टु अर्द्धमागधी, कोल्हापुर, १९४०

१९६. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पं. बबुआ मिश्र (सं.) : ज्योतिरीश्वर कविशेखर कृत वर्णरत्नाकर, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९४०

१९७. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, १९४०

१९८. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्रबन्धचिन्तामणि, हिन्दी अनुवाद, सिन्घी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४०

१९९. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : पैशाची लैंग्वेज एंड लिटरेचर, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं. पूना, जिल्द २१, भाग १-२ पृ. १-३७, १६ दिसम्बर, १९४०

२००. ए. एम. घाटगे : कान्कर्ड इन प्राकृत सिण्टेक्स, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना, जिल्द २१, भा. १-२, पृ. ७३-९६, दिसम्बर, १९४०

२०१. एम. ए. महेन्डले : टाक्की ऑर ढाक्की, बुलेटिन ऑव द डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टिटयूट, १९४०

२०२. पं. नाथूराम प्रेमी : महाकवि पुष्पदन्त, अनेकान्त ४, ८, पृ. ४५५–४६१, सितम्बर, १९४१

२०३. पं. नाथूराम प्रेमी : चतुर्मुख और स्वयम्भू—दो भिन्न कवि हैं, भारतीय विद्या, भाग २, अंक १, पृ. ५७–६१, अक्तूबर, १९४१

२०४. महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा : प्राचीन हिन्दी, प्राचीन भारत पत्रिका, वर्ष १, सं. १, पृ. २८–३१, कलकत्ता, जनवरी, १९४१

२०५. महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा : प्राचीन हिन्दी, प्राचीन भारत पत्रिका, पृ. १०५–१०९, जनवरी, १९४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०६. अमृतलाल सवचन्द गोपाणी : नाणपंचमी अने भविस्सयत्तकहा, भारतीय विद्या, २, १, अक्तूबर, १९४१

२०७. दीपचन्द पाण्डया : अपभ्रंश भाषा के दो ग्रन्थ, अनेकान्त, ४, ९, पृ. ५२०–५२४, अक्तूबर, १९४१

२०८. डॉ. पी. एल. वैद्य (सं.) : महापुराण ऑव पुष्पदन्त, माणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७–४१

२०९. लड्डू और गोरे (सं.) : पउमचरिउ, पूना, १९४१

२१०. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : हरिषेणाज धर्मपरीक्षा इन अपभ्रंश, ग्यारहवीं रिपोर्ट, ऑल इंडिया ओरियंटल कान्फ्रेन्स, अर्द्धमागधी सेक्शन, १९४१

२११. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : हरिषेणाज धर्मपरीक्षा इन अपभ्रंश, एनल्स ऑव द. भ. ओ. रि. इं., पूना, जिल्द २२, पृ. ५९२–६०८, १९४२

२१२. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : ए प्राकृत ग्रैमर एट्रिब्युटेड टु समन्तभद्र, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द १७, पृ. ५११–५१६, १९४२

२१३. पं. लालचन्द्र भगवान गान्धी : भरतबाहुबलिरास (गुजराती), सम्पादित, अहमदाबाद, वि. सं. १९९७

२१४. खम्भात शान्तिनाथ प्राचीन ताड़पत्रीय जैन भण्डार सूचीपत्र, प्रकाशक—शा. प्रा. ता. जैन ज्ञान भण्डार, खम्भात, १९४२

२१५. पं. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, १९४२, द्वि. सं. १९५६

२१६. पं. नाथूराम प्रेमी : महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू, अनेकान्त, ५, ८-९, पृ. २९७–३०९, सितम्बर-अक्तूबर, १९४२

२१७. पं. नाथूराम प्रेमी : महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू, भारतीय विद्या, २, ३, पृ. २४१–२६६, अक्तूबर, १९४२

२१८. मुनि कान्तिसागर : जैनियों का अपभ्रंश साहित्य, अनेकान्त, ४, ११–१२, पृ. ५८१–५८३, दिसम्बर-जनवरी, १९४१–४२

२१९. अगरचन्द नाहटा : वीर गाथा काल का जैन साहित्य, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ४६, ३, वि. सं. १९९८

२२०. हीरालाल जैन : सम रीसेंट फाइंड्स ऑव अपभ्रंश लिटरेचर, नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल, पृ. ८९–९१, दिसम्बर, १९४२

२२१. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी : इंडो-आर्यन एंड हिन्दी, १९४२

२२२. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का शान्तिनाथचरित्र, अनेकान्त, वर्ष ५, अंक ६–७, पृ. २५३–२५६, १९४२

२२३. पं. परमानन्द शास्त्री : धनपाल नाम के चार विद्वान् कवि, अनेकान्त ६, ७–८, पृ. ८२–८५, १९४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२४. दिनेशचन्द्र सरकार : ए ग्रैमर ऑव द प्राकृत लैंग्वेज, कलकत्ता, १९४३, द्वि. सं. दिल्ली, १९७०

२२५. ए. एम. घाटगे : प्राकृत्स इन प्रोग्रेस, इंडिक स्टडीज, पृ. १५३–१७४, १९४३

२२६. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध कवि पं. रइधू, अनेकान्त ५, १२, पृ. ४०१–४०४, जनवरी, १९४३

२२७. रामजी उपाध्याय : सुकौशलचरित, जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २, पृ. ५५–५९, दिसम्बर, १९४३

२२८. ह. चू. भायाणी : प्राकृतव्याकरणकारो (गुजराती), भारतीय विद्या, २, ४, पृ. ४०१–४१६, जुलाई, १९४३

२२९. डोलरराय रं. मांकड : पैशाचवर्गनी बोली ओनी उपयोगिता, भा. विद्या, २, ४, पृ. ३४४–३४८, जुलाई, १९४३

२३०. हीरालाल जैन : संस्कृत में प्राकृत का प्रभाव, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४७, अंक १, पृ. १४५–१५६, (नवीन संस्करण) वि. सं. १९९९

२३१. डब्ल्यु. ई. क्लर्क : मागधी एंड अर्द्धमागधी, जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, १९४४

२३२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई : जैन गूर्जर कविओ भाग ३, खण्ड १–२, १९४४

२३३. एस. एम. कत्रे : हिस्टॉरिकल लिंग्विस्टिक्स इन इंडो-आर्यन, बम्बई विश्वविद्यालय, १९४४

२३४. कालीपाद मित्र : सम न्यू इंडो आर्यन वर्ड्स फ्रॉम अपभ्रंश, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, २०, ३, पृ. २५१–२७४, १९४४

२३५. डॉ. हीरालाल जैन : अपभ्रंश स्टडीज़, नागपुर विश्वविद्यालय से १९४४ में डी. लिट्. के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध

२३६. हरि दामोदर वेलणकर : जिनरत्नकोश, पूना, १९४४

२३७. एस. एम. कत्रे : प्राकृत लैंग्वेज एंड देयर कंट्रिब्युशन टु इंडिया, बम्बई, १९४५

२३८. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्य-धारा, इंडियन प्रेस लि., प्रयाग, १९४५

२३९. रामसिंह तोमर : सुदंसणचरिउ, विश्वभारती, खण्ड ४, अक्तूबर–दिसम्बर, १९४५

२४०. मुनि जिनविजय और भायाणी (सं.) : सन्देशरासक, (अब्दुल रहमान), भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४१. ह. चू. भायाणी : एंडिंगलेस जेनिटिव इन अपभ्रंश, भारतीय विद्या, १९४५

२४२. सिवेन्द्रनाथ घोषाल : वुमन इन सेपरेशन (प्रोषितभर्तृका) इन द अपभ्रंश स्ट्रोफीज़ ऑव हेमचन्द्र, जैन एंटिक्वेरी, जिल्द ११, सं. १, पृ. २०–२६, जुलाई, १९४५

२४३. मनमोहन घोष : प्राकृतकामधेनु ऑव लंकेश्वर, न्यू इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ८, पृ. ३७–३९, १९४६

२४४. डॉ. दशरथ शर्मा और प्रो. मीनाराम रंगा : द ओरिजनल पृथ्वीराज-रास एन अपभ्रंश वर्क, राजस्थान भारती, भा. १, अंक १, पृ. ९४–१००,१९४६

२४५. ह. चू. भायाणी : स्वयम्भू एंड द प्राकृतमीटर्स, भारतीय विद्या, सं. ८–९–१०,१९४६

२४६. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : हरिषेण की धम्मपरिक्खा, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना, जिल्द २३, पृ. ५९२–६०८,१९४६

२४७. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : हरिषेण कृत अपभ्रंश-धर्मपरीक्षा, अनेकान्त ८, १, पृ. ४८–५३, जनवरी, १९४६ तथा—अनेकान्त ८,२, पृ. ९०–९६, फ़रवरी, १९४६

२४८. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : प्राकृत लिटरेचर, सं. जे. टी. शिपले—इन्साइक्लो-पोडिया ऑव लिटरेचर, जिल्द १, पृ. ४८१–४९०, न्यूयार्क, १९४६

२४९. हीरालाल जैन : अपभ्रंश भाषा और साहित्य, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, ५०,१–२, वि. सं. २००२

२५०. जी. सी. बसु : लंकेश्वर कृत प्राकृतकामधेनु, न्यू इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ८, पृ. ३७–३९,१९४६

२५१. ए. एम. घाटगे : द बेसिक टेंडेन्सी ऑव प्राकृत लेंग्वेज, बी. सी. ला वाल्यूम, भाग २, पृ. ११८–१२३,१९४६

२५२. हजारीप्रसाद द्विवेदी : जैन साहित्य, प्रेमी—अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. ४४८–४५४, टीकमगढ़, १९४६

२५३. कामताप्रसाद जैन : जैन साहित्य में प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री, प्रेमी–अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. ४५५–४६३, टीकमगढ़, १९४६

२५४. रामसिंह तोमर : जैन साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन, प्रेमी—अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. ४६४–४६९,१९४६

२५५. डॉ. ए.एन. उपाध्ये : श्रीचन्द एंड हिज़ अपभ्रंश कथाकोश, भारत-कौमुदी (आर. के. मुकर्जी स्मृतिग्रन्थ), जिल्द २, पृ. १००५–१०१६, इलाहाबाद, १९४७

२५६. अगरचन्द नाहटा : जिनदत्तसूरि जी के ग्रन्थ और राहुल जी, विशाल भारत, अप्रैल, १९४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५७. अगरचन्द नाहटा : महाकवि स्वयम्भू और राहुल सांकृत्यायन, वीर, २३,२०

२५८. अगरचन्द नाहटा : जैन कथा साहित्य, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १२, किरण १

२५९. पं. बेचरदास दोशी : विलासवती, भारतीय विद्या (हिन्दी), वर्ष ५, अंक ४–६, दिसम्बर-फ़रवरी, १९४७

२६०. कामताप्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, १९४७

२६१. धनपाल विरचित पाइयलच्छी नाममाला, पाटण, वि. सं. २००३

२६२. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : महाकवि सिंह और प्रद्युम्नचरित, अनेकान्त, वर्ष ८, अंक १०–११, पृ. ३८९–३९४, १९४७

२६३. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : कविवर लक्ष्मण और जिनदत्तचरित, अनेकान्त, ८,१०–११, पृ. ४००–४०१,१९४७

२६४. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : श्रीधर और विबुध श्रीधर नाम के विद्वान्, अनेकान्त, ८,१२, पृ. ४६२–४६५, १९४७

२६५. ह. चू. भायाणी : स्वयम्भू एंड हेमचन्द्र, भारतीय विद्या, भाग ८, अंक ८–१०, पृ. २०२–२०६, १९४७

२६६. ह. चू. भायाणी : लैंग्वेज ऑव गुजरात फ्रॉम अर्लिएस्ट टाइम्स टु क्रा. १३०० ई., भारतीय विद्या, ८,१२, पृ. २८९–३१८, दिसम्बर, १९४७

२६७. ह. चू. भायाणी : द पउमचरिउ एंड द भविसयत्तकहा, भारतीय विद्या, ८,१–२, १९४७

२६८. सिवेन्द्रनाथ घोषाल : द पुराणिक एंड हिस्टॉरिकल रिफ्रेन्सेज इन द अपभ्रंश स्टेन्ज़ाज़ ऑव हेमचन्द्र, जैन एंटिक्वेरी, जिल्द १२, सं. २, जनवरी, १९४७

२६९. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का काल, जैन सिद्धान्त भास्कर, पृ. ३८–४०

२७०. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : भट्टारक यशःकीर्ति, जैन सिद्धान्त भास्कर, पृ. ९४–९६

२७१. एच. डी. वेलणकर : अपभ्रंश मीटर्स, भारत कौमुदी (आर. के. मुकर्जी–स्मृति ग्रन्थ), पृ. १०६५–१०६८, इलाहाबाद, १९४७

२७२. ह. चू. भायाणी : अब्दुलरहमान्स सन्देशरासक एंड जायसीज़ पद्मावती, भारतीय विद्या, भाग १०, १९४८ तथा के. एम. मुंशी स्वर्णमहोत्सव ग्रन्थ, भाग १, पृ. ८१–८९, १९४८

२७३. रामसिंह तोमर : अपभ्रंश का एक शृंगार-वीरकाव्य (वीर कृत जम्बू स्वामीचरित), अनेकान्त, वर्ष ९, अंक १०, पृ. ३९४–४०४, १९४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७४. मधुसूदन मोदी तथा भायाणी (सं.) : पउमसिरीचरिउ, सम्पादित, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४८

२७५. एम. ए. महेन्डले : हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑव इन्स्क्रिप्सिनल प्राकृत्स, पूना, १९४८

२७६. गजानन वासुदेव तगारे : हिस्टॉरिकल ग्रैमर ऑव अपभ्रंश, पूना, १९४८

२७७. आर. एन. वाले : वर्बल कम्पोज़ीशन इन इण्डो-आर्यन, पूना, १९४८

२७८. ए. एन. उपाध्ये : भृंगारसन्देश : ए प्राकृतकाव्य, करमरकर स्मृतिग्रन्थ, पृ. २१७–२२१, पूना, १९४८

२८९. नॉर्मन ब्राउन : जैन महाराष्ट्री प्राकृत, सम लेनीकल मटेरियल इन, के. एम. मुंशी स्वर्ण महोत्सव ग्रन्थ, नवम विभाग, पृ. २७–३२, १९४८

२८०. गजानन वासुदेव तगारे : अपभ्रंश एंड द आभीराज, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओरियंटल रि. इं. सिलवरजुबिली वाल्यूम, जिल्द २३, पृ. ५५९–५६६

२८१. अगरचन्द नाहटा : अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगम्बर जैन ग्रन्थ, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५२, अंक १, पृ. १०५–१०८, वि. सं. २००४

२८२. उदयसिंह भटनागर : अपभ्रंश, शोध-पत्रिका, भाग १, वर्ष १. पृ. १४–२४, १९४८

२८३. मुनि जिनविजय जी (सं.) : कथाकोश-प्रकरण, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४९

२८४. कालीपाद मित्र : न्यू इण्डो-आर्यन वर्ड्स फ्रॉम अपभ्रंश सम, समरी ऑव आल इंडिया ओरियंटल कान्फ्रेन्स, सेशन, १-१२, पूना, १९४९

२८५. डी. जी. बोर्से : अहीरानी डाइलेक्ट, ऑल इण्डिया ओरियंटल कान्फ्रेन्स, सेशन, १०, १, पूना, १९४९

२८६. अगरचन्द नाहटा : आचार्यप्रवर तरुणप्रभसूरि, जर्नल ऑव द यू. पी. हिस्टॉरिकल सोसायटी, वर्ष २२, खंड १-२, १९४९

२८७. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी : राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, १९४९

२८८. ए. एन. उपाध्ये : कोउहल कृत लीलावईकहा, सम्पादित, सिन्घी जैन ग्रन्थमाला, १९४९

२८९. पं. परमानन्द शास्त्री : महाकवि रइधू, वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. ३९८-४१५, १९४९

२९०. पं. परमानन्द शास्त्री : सोलहवीं शताब्दी के दो अपभ्रंश काव्य, अनेकान्त, वर्ष १०, किरण ४-५, पृ. १६०-१६२, अक्तूबर-नवम्बर, १९४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९१. राघवन नम्बियार (सं.) : एन अल्फाबेटिकल लिस्ट ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, जिल्द २, १९५०

२९२. फतेहचन्द बेलानी : जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, बनारस, अक्तूबर, १९५०

२९३. कस्तूरचन्द कासलीवाल : प्रशस्ति संग्रह, महावीर भवन, जयपुर, १९५०

२९४. देवेन्द्रकुमार जैन : अपभ्रंश-प्रकाश, वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९५०

२९५. वी. राघवन : प्राकृत वर्क्स नोन फ्रॉम भोजाज श्रृंगारप्रकाश, सिद्धान्त भारती २, होशियारपुर, १९५०

२९६. सुकुमार सेन : प्राकृत एंड वर्नाक्युलर वर्सेस इन धर्मदासाज विदग्धमुख-मण्डन, सिद्धान्तभारती १, पृ. २५७-२६४, होशियारपुर, १९५०

२९७. हजारीप्रसाद द्विवेदी : जैन अपभ्रंश ग्रन्थ और साहित्य, श्री महावीर स्मृति ग्रन्थ, भाग १, पृ. १७४-१७७, आगरा, १९५०

२९८. अल्फ्रेड मास्टर : ग्लोनिंग्स फ्रॉम कुवलयमालाकहा, बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़, जिल्द १३, भाग २, ४, १९५०-५१

२९९. डॉ. सुकुमार सेन : ए कम्पेरेटिव ग्रैमर ऑव मिडिल इण्डो-आर्यन, पूना, १९५१, द्वि. सं. १९६०

३००. केशवराम काशीराम शास्त्री : गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन, १९५१

३०१. मनोहर शर्मा : प्राचीन राजस्थानी, शोध-पत्रिका, भाग ३, अंक १, पृ. २१-३८, सितम्बर, १९५१

३०२. वि. श्री. वाकणकर : धार से प्राप्त एक शिलालेख, नागरी प्र. पत्रिका, वर्ष ५५, अंक १-२, पृ. ३०६-३०८, वि. सं. २००७

३०३. ज्योतिभूषण श्रीवास्तव : हिन्दी साहित्य में अपभ्रंशकाव्य, साहित्य सन्देश, पृ. ३९०-३९४, मार्च, १९५२

३०४. डॉ. हीरालाल जैन : श्रुतकीर्ति और उन की धर्मपरीक्षा, अनेकान्त, वर्ष ११, किरण २, पृ. १०५-१०७, अप्रैल, १९५२

३०५. भोलाशंकर व्यास : भारतीय आर्यभाषाएँ तथा अनुनासिक ध्वनियाँ, शोध-पत्रिका, भाग ४, अंक १, पृ. २८-४६, वि. सं. २००९

३०६. डॉ. नामवर सिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, इलाहाबाद, मार्च, १९५२, द्वि. सं. १९५४, तृ. सं. १९६१, चतुर्थ सं. १९६४

३०७. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य, १९५२

३०८. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०९. डॉ. ए. एम. घाटगे : जेकोबीज इण्ट्रोडक्शन टु आसजेह्वाल अर्जिंथुगन इन महाराष्ट्री, जैन एंटिक्वेरी, जिल्द १८, सं. ११, दिसम्बर, १९५२

३१०. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का पासचरिउ और कविवर देवचन्द, अनेकान्त, वर्ष ११, किरण ४-५, पृ. २११-१२, जून-जुलाई, १९५२

३११. पं. परमानन्द शास्त्री : महाकवि रइधू, अनेकान्त ११, ७-८, पृ. २६५-६८, सितम्बर–अक्तूबर, १९५२

३१२. पं. परमानन्द शास्त्री : महाकवि रइधू, अनेकान्त, ११, ९, पृ. ३१९-२८, नवम्बर, १९५२

३१३. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का नेमिनाथचरित्र, अनेकान्त, ११, १२, पृ. ४१४-१५, मई, १९५३

३१४. अगरचन्द नाहटा : सन्देशरास का रचनाकाल, विकास, २,१

३१५. ,, ,, : अपभ्रंश भाषा के सन्धिकाव्य और उन की परम्परा, राजस्थानी, भाग १, पृ. ५५-६४, राजस्थानी सा. प., कलकत्ता

३१६. अगरचन्द नाहटा : सन्देशरास-परिचय, राजस्थानी, ३, २

३१७. ,, ,, : गयसुकुमालरास, राजस्थान-भारती, ३, २

३१८. ,, ,, : अपभ्रंश भाषा का वर्धमान-पारणक, हिन्दी-अनुशीलन, ३,२

३१९. डॉ. ह. चू. भायाणी (सं.) : पउमचरिउ भा. १-२, सम्पादित, सिन्घी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९५३

३२०. एस. एन. घोषाल : इंट्रोडक्शन टु द भविसयत्तकहा—डॉ. हर्मन जेकोबी का जरमन से अँगरेज़ी अनुवाद, जर्नल ऑव द ओ. रि. इं., बड़ोदा, जिल्द २, मार्च, १९५३

३२१. एम. जी. पाँसे : लिंग्विस्टिक पिक्युलरटीज़ ऑव ज्ञानेश्वरी, अधिनिबन्ध, डेक्कन कॉलेज, पूना, १९५३

३२२. डॉ. रामसिंह तोमर : प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य और उस का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, आलोचना, जुलाई, १९५३

३२३. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : कनारीज वर्ड्स इन देशी लेक्सिकन्स, एनल्स ऑव द भण्डारकर रिसर्च इं., पूना, भाग ८, पृ. ६३-७१

३२४. डॉ. पी. एल. वैद्य : आब्ज़र्वेशंस ऑव हेमचन्द्राज़ देशीनाममाला, एनल्स ऑव द भण्डारकर रिसर्च इं., पूना, भाग ८, पृ. २७४-२८४

३२५. डॉ. सुकुमार सेन : हिस्टॉरिकल सिंटेक्स ऑव द मिडिल इंडो-आर्यन, इंडियन लिंग्विस्टिक्स, १९५३

३२६. श्रीनिवास गोपालाचार्य (सं.) : प्राकृतमणिदीप ऑव अप्पयदीक्षित, मैसूर विश्वविद्यालय, १९५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२७. प्रो. राजकुमार जैन : अपभ्रंश साहित्य : एक संक्षिप्त परिचय, जैन सिद्धान्त भास्कर, २०, २, पृ. १८-४२, दिसम्बर, १९५३

३२८. डॉ. ह. चू. भायाणी : वाग्व्यापार (गुजराती में), भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५४

३२९. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : एज ऑव द परमात्मप्रकाश, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जिल्द ३४, पृ. १६६-१६७, पूना, १९५४

३३०. प्रबोध बेचरदास पण्डित : प्राकृत भाषा, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, १९५४

३३१. प्रबोध बेचरदास पण्डित : इंडो-आर्यन सिविलेन्ट्स इन गुजराती, इंडियन लिंग्विस्टिक्स, १९, १९५४

३३२. डॉ. पी. एल. वैद्य -(सं.) : प्राकृत ग्रैमर ऑव त्रिविक्रम, शोलापुर, १९५४

३३३. अगरचन्द नाहटा : चौदहवीं शती की कतिपय राजस्थानी जैन गद्य-रचनाएँ, देवनागर, वर्ष १, अंक ३, पृ. ५५-५८, कार्तिक, वि. सं. २०१०

३३४. अगरचन्द नाहटा : अपभ्रंश चित्रकला का पाण्डवचरित्र (१५वीं शती) की सचित्र प्रति, कल्पना, अप्रैल, १९५४

३३५. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा के अप्रकाशित कुछ ग्रन्थ, अनेकान्त, १२,९, पृ. २९३-९४, फ़रवरी, १९५४

३३६. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का जम्बूस्वामीचरिउ और महाकवि वीर, अनेकान्त, १३, ६, पृ. १४९-१५७, दिसम्बर, १९५४

३३७. राहुल सांकृत्यायन : महाकवि स्वयम्भू, ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. ४१०-४१४, प्र.-अ. भा. दि. जैन महिला परिषद्, आरा, १९५४

३३८. जेम्स फुलर भुमहर्ट : केटलॉग ऑव द गुजराती एंड राजस्थानी मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, ओ. यू. पी., १९५४

३३९. प्रो. ज्योतिप्रसाद : हिन्दी की जननी अपभ्रंश, ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. ४५८-४६१

३४०. हीरालाल रसिकदास कापड़िया : डिस्क्रिपटिव केटलॉग ऑव मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द गवर्नमेंट मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, भण्डारकर ओ. रि इं., पूना, १९५४

३४१. कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, भाग २, जयपुर, १९५४

३४२. के. एम. मुंशी : गुजरात एंड इट्स लिटरेचर, १९५४

३४३. मनमोहन घोष (सं.) : रामशर्मन्स प्राकृत-कल्पतरु, द एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, बिब्लोथिका इंडिका, सं. २७८, १९५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४४. एस. एन. घोषाल : अपभ्रंश एंड पोस्ट-अपभ्रंश फ़ीचर्स इन द अर्ली प्राकृतस, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली, जिल्द ३०, सं. ३, पृ. २४५-२६३, सितम्बर, १९५४

३४५. दोहाणुपेहा—लक्ष्मीचन्द, अनेकान्त, १२, ९, पृ. ३०२, फ़रवरी, १९५४

३४६. अक्षयचन्द्र वर्मा : सिरिथूलभद्दफागु—पर्यालोचन, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ५९, १, पृ. १९-३५, वि. सं. २०११

३४७. डॉ. धर्मवीर भारती : सिद्ध-साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५

३४८. जगन्नाथ शर्मा : अपभ्रंश-दर्पण, पटना, १९५५

३४९. शिवप्रसाद सिंह : कीर्तिलता और अवहट्ट, साहित्य भवन लि., इलाहाबाद, १९५५

३५०. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का पार्श्वनाथचरित्र, अनेकान्त, १३, १०, पृ. २५२—२५३, अप्रैल, १९५५

३५१. इन्द्रपाल सिंह : आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लखनऊ विश्वविद्यालय से १९५५ में पीएच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध ।

३५२. डॉ. हरिवंश कोछड़ : अपभ्रंश-साहित्य (शोध-प्रबन्ध), भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९५६

३५३. डॉ. शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, बनारस, १९५६

३५४. जी. वी. दवाने : नॉमिनल कम्पोज़ीशन इन मिडिल इण्डो-आर्यन, डेकन कॉलेज, पूना, १९५६

३५५. एम. सी. मोदी : गुर्जररासावलि, बड़ौदा, १९५६

३५६. पं. परमानन्द शास्त्री : महाकवि स्वयम्भू और उस का तुलसीदास जी की रामायण पर प्रभाव, अनेकान्त, १४,२ पृ. ५६—५८, १९५६

३५७. डॉ. सुकुमार सेन : 'ब्रजबोली' की कहानी, भारतीय साहित्य, वर्ष १, अंक १, पृ. ७१—८४, जनवरी, १९५६

३५८. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी : हिन्दी का उत्तराधिकार, भारतीय साहित्य, वहीं, १५—३५, जनवरी १९५६

३५९. अगरचन्द नाहटा : मंगल काव्य, भारतीय साहित्य, वहीं, पृ. १३९—१४७, जनवरी, १९५६

३६०. डॉ. हॉर्नली : हिन्दी-धातु-संग्रह, व्युत्पत्ति और वर्गीकरण, भारतीय साहित्य, वर्ष १, अंक ३, पृ. १—८५, जुलाई, १९५६

३६१. डॉ. हॉर्नली : हिन्दी-धातु-संग्रह खंड २, भारतीय साहित्य, १,४ पृ. १९—४८, अक्तूबर, १९५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३६२. चन्द्रभान रावत : उकारबहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज की बोली, भारतीय साहित्य, वर्ष १, अंक ४, पृ. ६५–७९, अक्तूबर १९५६

३६३. एस. एन. घोषाल : एन इन्क्वायरी इनटु ईस्टर्न अपभ्रंश, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द २२, सं. १, १९५६

३६४. डॉ. ह. चू. भायाणी : प्राकृत एंड जेनिस्ट स्टडीज़ (१९५३–५५), भारतीय विद्या, १९५६

३६५. डॉ. ह. चू. भायाणी : जैन परम्परानुं अपभ्रंश साहित्यमां प्रदान (गुजराती में), आ. विजयवल्लभसूरि स्मृतिग्रन्थ, गुजराती सेक्सन, पृ. ३१–४०, बम्बई, १९५६

३६६. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : द शांतिनाहचरिउ इन अपभ्रंश, जर्नल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव पूना, पृ. १४४–१६५, १९५६

३६७. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : प्राकृत लैंग्वेज एंड कशमीर शैविज्म, डॉ. एस. के. बेल्वल्कर स्मृतिग्रन्थ, पृ. ५७–६२, पटना, १९५६

३६८. प्रबोधचन्द्र बागची और शान्तिभिक्षु शास्त्री : चर्यागीति-कोश, विश्व-भारती, शान्तिनिकेतन, १९५६

३६९. प्रो. के. बी. व्यास : ए हिस्टॉरिकल आउटलाइन ऑव द लैंग्वेजेज ऑव वेस्टर्न इंडिया, आ. विजयवल्लभसूरि स्मृतिग्रन्थ, पृ. १५७–१६८,

३७०. पं. बेचरदास दोशी : प्राकृतपालि भाषानो फालो—भाषाना विकासमां (गुजराती), आ. विजयवल्लभसूरि स्मृतिग्रन्थ, पृ. २०–३०, बम्बई, १९५६

३७१. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : सन्देशरासक के विचारणीय पाठ और अर्थ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ६१,१, पृ. ११३–१३१, वि. सं. २०१३

३७२. एस. एन. घोषाल : नसल्स इन कांटेक्ट विद म्यूट्स इन द प्राकृत—पैंगलम्, एनल्स ऑव द भंडारकर ओ. रि. इं., पूना, जिल्द ३६, पृ. २२७–२३०, २० अगस्त, १९५६

३७३. डॉ. शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास, बनारस, १९५६

३७४. एस. एन. घोषाल : कंट्रोवर्सी ओवर द सिग्निफ़िकेन्स ऑव अपभ्रंश, जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, जिल्द २२, खंड १, १९५६

३७५. डॉ. एल. ए. स्वार्ज्स चाइल्ड : नोट्स ऑन सम मिडिल इण्डो-आर्यन वर्ड्स, जर्नल ऑव द अमरीक़न ओरियंटल सोसायटी, ७७, ३, जुलाई-सितम्बर, १९५७

३७६. डॉ. एच. जेकोबी (मूल), अनु. एस. एन. घोषाल : इण्ट्रोडक्शन टु द सनत्कुमारचरितम्, जर्नल ऑव द बड़ौदा ओ. रि. इं. ७, १-२, पृ. ३६-४३, सितम्बर-दिसम्बर, १९५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७७. प्रो. डी. वी. डिस्कालकर : संस्कृत एंड प्राकृत पोइट्स नोन फ़्रॉम इन्स्क्रिपशन्स, जर्नल ऑव द ओ. रि. इं., बड़ौदा, ७, १-२, पृ. ७८-८५, सितम्बर-दिसम्बर, १९५७

३७८. प्रो. देवेन्द्रकुमार : अपभ्रंश-कवि पुष्पदन्त, अनेकान्त, १४, १०, पृ. २९२-९५, १९५७

३७९. देवेन्द्र कुमार जैन (अनु.) : पउमचरिउ भाग १, ज्ञानपीठ प्रकाशन नवम्बर, १९५७

३८०. राहुल सांकृत्यायन (सं.) : दोहाकोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५७

३८१. जुगलकिशोर मुख्तार : पुराने साहित्य की खोज, अनेकान्त, पृ. २०३-६, १४, ७ फ़रवरी, १९५७

३८२. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : महार्थमंजरी और उस की संस्कृत टीका, बेल्वलकर फेलेशियन वाल्यूम, दिल्ली, १९५७

३८३. डॉ. ह. चू. भायाणी : अपभ्रंश एंड ओल्ड गुजराती स्टडीज, भारतीय विद्या, जिल्द १७, सं. ३-४, पृ. १२२-१२६, १९५७

३८४. प्रो. न. भो. दिवेटिया (संक्षेपकार के. का. शास्त्री) : गुजराती भाषा अने साहित्य, फोर्वस गुजराती सभा, बम्बई, १९५७

३८५. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, तृतीय भाग, अगस्त, १९५७

३८६. डॉ. ह. चू. भायाणी : प्रिन्स ऑव वेल्स म्यूजियम स्टोन इन्स्क्रिप्सन फ़्रॉम धार, १, २, भारतीय विद्या, १९५७, १९५९

३८७. डॉ. ए. एन. उपाध्ये और पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री : ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९५७

३८८. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : सन्देशरासक के विचारणीय पाठ और अर्थ (२), नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, ६२,१, पृ. १-७, वि. सं. २०१४

३८९. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : सन्देशरासक के विचारणीय पाठ और अर्थ (३), वहीं, पृ. २५१-२६६

३९०. डॉ. शिवप्रसाद सिंह : ब्रजभाषा का उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश, ना. प्र. पत्रिका, ६२, १, पृ. ४६-१०४, वि. सं. २०१४

३९१. डॉ. ह. चू. भायाणी : अपभ्रंश एंड ओल्ड गुजराती स्टडीज, भारतीय विद्या, जिल्द १८, सं. ३-४, बम्बई, १९५८

३९२. के. आर. नॉर्मन : सम्प्रसारण इन मिडिल इंडो-आर्यन, जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, भाग १-२, १९५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९३. डॉ. एस. एन. घोषाल : ए नोट ऑन ए प्राकृत वोकेबल, जर्नल ऑव द ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ७, ३, पृ. १९६–२०१, मार्च, १९५८

३९४. देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर (अनु.) : पउमचरिउ, भाग २, ३, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, जनवरी, १९५८

३९५. डॉ. हरिहरप्रसाद गुप्त : देशी नाममाला में कृषि शब्दावली, हिन्दुस्तानी, भाग १९, अंक ३, पृ. ८१–१०५, जुलाई–सितम्बर, १९५८

३९६. कस्तूरचन्द कासलीवाल : हिन्दी साहित्य के आदिकाल की एक प्राचीन कथा-कृति 'जिनदत्तचउपई,' हिन्दुस्तानी, भाग १९, अंक ४, पृ. २०–३१, अक्तूबर–दिसम्बर, १९५८

३९७. जयेन्द्र त्रिवेदी : सौराष्ट्री, हिन्दुस्तानी, १९, ४, पृ. ३–१०, अक्तूबर-दिसम्बर, १९५८

३९८. डॉ. ह. चू. भायाणी : चतुर्मुख—वन ऑव द अर्लिएस्ट अपभ्रंश एपिक पोइट्स, जर्नल ऑव द ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ८, ३, जनवरी, १९५८

३९९. हरिशंकर शर्मा 'हरीश' : रास परम्परा और भरतेश्वर बाहुबलीरास, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११, अंक २, पृ. २५–३६, अप्रैल-जून, १९५८

४००. हरिशंकर शर्मा 'हरीश' : भरतेश्वर बाहुबलीरास अध्ययन, हिन्दी अनुशीलन, ११, ३, पृ. २५–३९, जुलाई–सितम्बर, १९५८

४०१. डॉ. सुमित्र मंगेश कत्रे : व्युत्पत्तिशास्त्र और ऐतिहासिक व्याकरण, भारतीय साहित्य, वर्ष ३, अंक ४, पृ. १–११, अक्तूबर, १९५८

४०२. वि. वि. आर. शर्मा : द्राविड़ भाषाओं के देशीय शब्द, भारतीय साहित्य, ३, ४, पृ. ५६–६४, अक्तूबर, १९५८

४०३. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : सन्देशरासक के विचारणीय पाठ और अर्थ (परिशिष्ट), नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ६३, १, पृ. ८९–९२, वि. सं. २०१५

४०४. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी भाषा के कोश निर्माण की कुछ समस्याएँ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ६३, १, पृ. ४३–५३, वि. सं. २०१५

४०५. राजवली पांडेय (सं.) : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, काशी नागरी प्र. सभा, सं. २०१४ वि.

४०६. डॉ. के. डी. ब्रीस : अपभ्रंश स्टडीज, जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द ७९, सं. १, जनवरी–मार्च, १९५९

४०७. भो. जे. संडेसरा : प्रोग्रेस ऑव प्राकृत एंड जैन स्टडीज, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, पृ. १५२–१८७, ९, २, दिसम्बर, १९५९

४०८. राजाराम जैन : अभिमानमेरु पुष्पदन्त, जैन सन्देश, शोधांक, पृ. १९३–९६, २२ अक्तूबर, १९५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०९. डॉ. भोलाशंकर व्यास (सं.) : प्राकृतपैंगलम्, सम्पादित, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, १९५९

४१०. वासुदेवसिंह : आणंदा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६४, अंक १, पृ. ५७–६३, वि. सं. २०१६

४११. डॉ. राजकुमार जैन : पुष्पदन्त—एक अध्ययन, पीएच. डी. के लिए आगरा विश्वविद्यालय से १९५९ में स्वीकृत शोध-प्रबन्ध (अप्रकाशित)

४१२. विश्वेश्वरानन्दसंस्थानीय हस्तलेखसंग्रह—परितालिका, द्वितीय खण्ड, होशियारपुर, १९५९

४१३. हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा वि. त्रिपाठी (सम्पादित व अनु.) : सन्देश-रासक, बम्बई, १९६०

४१४. एस. एन. घोषाल : द इयुफ़ोनिक-ग्लाइड एच इन प्राकृत, जर्नल ऑव द ओरि. इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ९, ३ पृ. २५६–२५९, मार्च, १९६०

४१५. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-काव्य 'सन्देशरासक,' हिन्दुस्तानी, २१, ४, पृ. ३३–४१, अक्तूबर–दिसम्बर, १९६०

४१६. डॉ. के. डी. ब्रीस : ए द्राविडियन ईडियम इन अपभ्रंश, प्रो. पी. के. गौड़ कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ. १०३–१०५, १९६०

४१७. भोगीलाल जे. संडेसरा : प्राचीन फागु-संग्रह, विश्वविद्यालय, बड़ौदा, १९६०

४१८. आर. एल. टर्नर : सम प्राब्लेम्स ऑव साउंड चेंज इन इंडो-आर्यन, पी. डी. गुणे स्मृति-भाषण १, पूना विश्वविद्यालय, १९६०

४१९. ए. एन. उपाध्ये : सम पैरेलल. थाट्स ऑव जैन अनुप्रेक्षाज, जर्नल ऑव द ओरि. इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ९, ४, पृ. ४१९–४२१, जून, १९६०

४२०. एच. जेकोबी (मूल) अनु. एस. एन. घोषाल : ऑन एक्सेंट इन द क्लासिकल संस्कृत एंड द प्राकृत डायलेक्ट्स, जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ौदा, १०, १, पृ. ३४–५२, सितम्बर, १९६०

४२१. हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी : सिद्धहेमगत अपभ्रंश व्याकरण (गुज-राती), बम्बई, १९६०, द्वि. सं. १९७१

४२२. एल. आल्सडोर्फ़ : द ओरिजन ऑव द न्यू-इंडो-आर्यन स्पीचेज, जर्नल ऑव द ओरि. इं., बड़ौदा, १० फ़रवरी, १९६०

४२३. एस. एन. घोषाल : सम स्टडीज इन प्राकृत, जर्नल ऑव द डिपार्टमेंट ऑव लेटर्स (न्यू सीरीज), जिल्द ३, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९६०

४२४. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : सन्देशरासक और हिन्दी काव्यधारा, सप्तसिन्धु, पृ. १–१०, अप्रैल, १९६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४२५. डॉ. दशरथ शर्मा : वि. सं. ८३५ में राजस्थान में रचित एक चर्चरी-रास, मरुभारती, ८, १, पृ. ३–४, अप्रैल, १९६०

४२६. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल : कुछ मध्यकालीन अपभ्रंश नाम, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्रवर्मा विशेषांक, वर्ष १३, अंक १-२, पृ. २२५–२२९

४२७. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : रोडा कृत 'राउलवेल' (राजकुलविलास)—(ग्यारहवीं शती का एक शिलांकित भाषाकाव्य), हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, वर्ष १३, अंक १–२ (जनवरी–जून, १९६०), पृ. २१–३८

४२८. डॉ. हेमचन्द्र जोशी : हिन्दी पर नयी शोध और हिन्दी कोश, सरस्वती पृ. ११-१४, जनवरी, १९६१

४२९. एस. एन. घोषाल : ए प्राकृत वर्ड एंड सम लिंग्विस्टिक फ़ेनोमेना एट द बेकग्राउंड ऑव इट्स ओरिजन, जर्नल ऑव द ओ इ., बड़ौदा, १०, ३, मार्च, १९६१

४३०. लुडविग आल्सडोर्फ़ (मूल) अनु. एस. एन. घोषाल : द ओरिजन ऑव द न्यू इंडो-आर्यन स्पीचेज, जर्नल ऑव द ओ. इ., बड़ौदा, पृ. १२९-१४६, मार्च, १९६१

४३१. डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया : राउलवेल की भाषा, भारतीय साहित्य, ६, ४, अक्तूबर, १९६१

४३२. जॉर्ज एस. लेन : ऑन द इनफ्लेक्शन ऑव द इंडो-यूरोपियन डिमान्स्ट्रेटिव लैंग्वेज, जर्नल ऑव द लिंग्विस्टिक सोसायटी, अमरीका, अक्तूबर, १९६१

४३३. राजाराम जैन : अपभ्रंश भाषा के सन्धिकालीन महाकवि रइधू, आचार्य भिक्षुस्मृतिग्रन्थ, पृ. १०१-१५, १९६१

४३४. ह. दा. वेलणकर (सं.) : छन्दोऽनुशासन, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९६१

४३५. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : प्राकृत छन्द कोश, हिन्दुस्तानी, भाग २२, अंक ३–४, पृ. ४०–४९, जुलाई-दिसम्बर, १९६१

४३६. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश कथा-काव्य, शोध-पत्रिका, वर्ष १२, अंक ४, पृ. ९–१७, जून, १९६१

४३७. डॉ. एच.सी. भायाणी : अपभ्रंश लिटरेचर, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, पृ. ५९–६९, कलकत्ता, १९६१

४३८. डॉ. देवेन्द्रकुमार (इन्दौर) : पुष्पदन्त की रामकथा, आचार्य भिक्षु स्मृतिग्रन्थ, पृ. ९८–१००, १९६१

४३९. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, चतुर्थ भाग, जयपुर, १९६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४४०. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश के 'प्पणु' और 'तण' प्रत्यय, ना. प्र. पत्रिका, ६५,४, पृ. २९९–३०५, वि. सं. २०१७

४४१. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास, १९६१

४४२. किशोरीदास वाजपेयी : 'शौरसेन' अपभ्रंश और हिन्दी आदि भाषाएँ, मध्यप्रदेश सन्देश, २३ दिसम्बर, १९६१

४४३. डॉ. एच. सी. भायाणी : द लेट मिडिल इंडो-आर्यन सफ़िक्स—अण, ब्रह्मविद्या, जिल्द २५, १९६१

४४४. डॉ. एच. सी. भायाणी : पउमचरिउ, सम्पादित, भाग ३, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, १९६१

४४५. पं. दीपचन्द पाण्ड्या (सं.) : कवि श्री लक्ष्मीचन्द्र विरचित सावयधम्मुदोहा, केकड़ी, वि. सं. २०१७

४४६. डॉ. धन्यकुमार जैन : प्राचीन हिन्दी साहित्य पर जैन साहित्य का प्रभाव, पीएच. डी. की उपाधि के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय से १९६१ में स्वीकृत शोधप्रबन्ध (अप्रकाशित)।

४४७. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पीएच. डी. की उपाधि के लिए बिहार विश्वविद्यालय से १९६१ में स्वीकृत व प्रकाशित शोधप्रबन्ध ।

४४८. डॉ. के. ऋषभचन्द्र : ए क्रिटिकल स्टडी ऑव पउमचरियं ऑव विमलसूरि, प्राकृत जैन विद्यापीठ, वैशाली से पीएच. डी. की उपाधि के लिए १९६२ में स्वीकृत तथा वहीं से १९७१ में प्रकाशित शोधप्रबन्ध ।

४४९. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : अपभ्रंश का रसात्मक साहित्य, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, १९६१–६२

४५०. हीरालाल रसिकदास कापड़िया : द जैन रिकार्ड्स अबाउट वर्ड्स, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओरियंटल रि. इं., पूना, पृ. ५९–१०७, जिल्द ६३, १९६२

४५१. डॉ. सुकुमार सेन : थ्री लेक्चर्स ऑन मिडिल इंडो-आर्यन, जर्नल ऑव द ओरि. इं., बड़ौदा, १९६२

४५२. अगरचन्द नाहटा : श्वेताम्बर अपभ्रंश साहित्य, महावीर-जयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९६२

४५३. डॉ. राजकिशोर सिंह : देशज, हिन्दुस्तानी, भाग २४, अंक ३, पृ. ६१–६९, जुलाई–सितम्बर, १९६२

४५४. डॉ. भोलाशंकर व्यास : पुरानी हिन्दी भाषा और साहित्य के विषय में 'प्राकृतपैंगलम्' का योग, राजस्थान विश्वविद्यालय से डी. लिट्. के लिए स्वीकृत, १९६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५५. डॉ. गोवर्धनदास शर्मा : प्राकृत और अपभ्रंश—उन का डिंगल साहित्य पर प्रभाव, राजस्थान विश्वविद्यालय से १९६२ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत।

४५६. डॉ. ओमप्रकाश दीक्षित : जैन कवि स्वयम्भू कृत पउमचरिउ तथा तुलसी कृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा विश्वविद्यालय से १९६२ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत।

४५७. वीरेन्द्र श्रीवास्तव : कविराज विद्यापति का अपभ्रंश पांडित्य, चम्पा पत्रिका, अंक १, भागलपुर विश्वविद्यालय, १९६२

४५८. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश कथाकाव्य और भविसयत्तकहा, हिन्दुस्तानी, भाग २३, अंक १, पृ. २१४–२३४, जनवरी–मार्च, १९६२

४५९. डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया : पुष्पदन्त की भाषा, महावीरजयन्ती स्मारिका, पृ. १६०–१६६, जयपुर, १९६२

४६०. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश भाषा का रासा साहित्य, महावीरजयन्ती स्मारिका, पृ. २२४–२२८, जयपुर, १९६२

४६१. परमानन्द शास्त्री : १३वीं शताब्दी का एक अपभ्रंश ग्रन्थ, जैन सन्देश, शोधांक, २५, ४५, पृ. ८७–९०, १५ फ़रवरी, १९६२

४६२. सलेकचन्द्र जैन : अपभ्रंश कवि स्वयम्भू—एक अध्ययन, जैन सन्देश, वहीं, पृ. ९१–९८, १५ फ़रवरी, १९६२

४६३. ह. दा. वेलणकर (सं.) : स्वयम्भूछन्द, सम्पादित, जोधपुर, १९६२

४६४. डॉ. प्रेमसागर जैन : जैन अपभ्रंश का मध्यकालीन हिन्दी के भक्तिकाव्य पर प्रभाव, अनेकान्त, १५, २, पृ. ५७–६४, जून, १९६२

४६५. अगरचन्द नाहटा : बीकानेर के ज्ञान-भण्डारों में प्राप्त तीन अपभ्रंश दिगम्बर ग्रन्थ, वीरवाणी, ५, १४

४६६. अगरचन्द नाहटा : अपभ्रंश-भाषा के कतिपय अन्य दिगम्बर ग्रन्थ, ना. प्र. पत्रिका, ५२, ६

४६७. अगरचन्द नाहटा : जिनप्रभसूरि और उन की अपभ्रंश-रचनाएँ, हिन्दी-अनुशीलन, ६, १

४६८. अगरचन्द नाहटा : आणंदा का रचनाकाल एवं रचयिता, वीरवाणी, ३, २१

४६९. डॉ. हीरालाल जैन (सं. व अनु.) : हरिदेव विरचित मयणपराजयचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६२

४७०. के. सी. श्रोत्रिय : खुम्माणरास और उस का अध्ययन, पीएच. डी. के लिए १९६२ में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से स्वीकृत शोधप्रबन्ध

४७१. मुनि पुण्यविजय जी (सं.) : आख्यानकमणिकोश, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, १९६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७२. आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : अपभ्रंश का रसात्मक साहित्य, सप्तसिन्धु, ९, ६. पृ. ३–१७, जून, १९६२

४७३. डॉ. हरीश : अपभ्रंश तथा आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में रसराज, सप्तसिन्धु, ९, ९, पृ. १४–२५, सितम्बर, १९६२

४७४. एम. जे. ड्रेसडन : नोट्स ऑन खोतानीज पोइट्री, इंडोलॉजीकल स्टडीज़ इन ऑनर ऑव डब्ल्यु. नॉर्मन ब्राउन, अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, पृ. ४२–५०, १९६२

४७५. डॉ. शशिभूषणदास गुप्त : चर्यापद की संध्या और संधा-भाषा, परिषद्-पत्रिका, वर्ष १, अंक ४, पृ. १७–२२, जनवरी, १९६२

४७६. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : देशीनाममाला : एक अध्ययन, परिषद्-पत्रिका, वर्ष २, अंक २, पृ. ५५–६६, जुलाई, १९६२

४७७. डॉ. माताप्रसाद गुप्त (सं.) : राउलवेल और उस की भाषा, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२

४७८. तिश्योशी नारा : शार्टनिंग ऑव द फ़ाइनल वावेल ऑव इन्स्ट. सीग. एन एंड फोनोलॉजी ऑव द लैंग्वेज इन सरह दोहा, बुलेटिन ऑव द फ़िलालॉजीकल सोसायटी ऑव कलकत्ता, ४, १, पृ. १–९, १९६३

४७९. एच. सी. भायाणी : मिडिल इंडो-आर्यन विट्ठुरिल्ल, मुंशी इंडोलॉजीकल स्मृतिग्रन्थ, भारतीय विद्याभवन प्रकाशन, पृ. २२१–२२४, जनवरी, १९६३

४८०. डॉ. देवेन्द्रनारायण शर्मा : पउमचरिउ और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पीएच. डी. की उपाधि के लिए १९६३ में बिहार विश्वविद्यालय से स्वीकृत व अप्रकाशित शोधप्रबन्ध ।

४८१. डॉ. विद्यानाथ मिश्र : प्राचीन हिन्दी काव्य में अहिंसा के तत्त्व, पीएच. डी. की उपाधि के लिए १९६३ में बिहार विश्वविद्यालय से स्वीकृत व अप्रकाशित शोधप्रबन्ध ।

४८२. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : हिन्दी पर अपभ्रंश का प्रभाव, हिन्दुस्तानी, २३, २, पृ. ५४–६५, अप्रैल–जनवरी, १९६३

४८३. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश का एक प्रमुख कथाकाव्य—भविसयत्त-कहा, भारतीय साहित्य, ८, २, पृ. ११३–२८, १९६३

४८४. डॉ. हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी : अपभ्रंश व्याकरण की कुछ समस्याओं पर विचार, भारतीय साहित्य, ८, २, पृ. १–९, आगरा, १९६३

४८५. पी. के. वी. आप्टे : हेमचन्द्र कृत अपभ्रंश व्याकरण, मराठी संशोधन पत्रिका, १०,२, पृ. ७७-९२, बम्बई, जनवरी, १९६३

४८६. सत्यरंजन बनर्जी : ए स्केल्टन ग्रैमर ऑव प्राकृत एट्रिब्युटेड टु जीव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामी, बुलेटिन ऑव द फिलालॉजिकल सोसायटी, कलकत्ता, ४, १, पृ. १०–३१, १९६३

४८७. डॉ. एच. सी. भायाणी : अपभ्रंश 'उव्विट्ठ', 'लास्ट टेस्ट' विकेम इन्सिपिड, जर्नल ऑव द ओ. रि. इं., बड़ौदा, १३, १, पृ. १७–२०, सितम्बर, १९६३

४८८. डॉ. एच. सी. भायाणी : स्टडीज़ इन हेमचन्द्राज देशीनाममाला, भारतीय विद्या, २२, १–४, पृ. ५१–५६, दिसम्बर, १९६३

४८९. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : जैनग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह (अपभ्रंश), द्वितीय भाग, दिल्ली, १९६३

४९०. बालचन्द्र जैन : जटाशंकर स्टोन इन्स्क्रिप्सन ऑव विजयसिंह, जर्नल ऑव इंडियन हिस्ट्री, जिल्द ६१, भाग ३, दिसम्बर, १९६३

४९१. बी. के. खडबडी : कन्नडवर्ड्स इन हेमचन्द्राज़ देशीनाममाला, जर्नल ऑव द कर्नाटक यूनिवर्सिटी, मैसूर, जिल्द ८ (ह्युमेनिटीज), पृ. २६५–६८, १९६३

४९२. डॉ. राजनारायण पाण्डेय : महाकवि पुष्पदन्त—एन अपभ्रंश पोइट ऑव टेन्थ सेंचुरी, आगरा विश्वविद्यालय से १९६३ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध।

४९३. मुनि जिनविजय जी (सं.) : ए केटलॉग ऑव संस्कृत एंड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द राजस्थान ओरि. रि. इं. जोधपुर संग्रह, १९६३

४९४. जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे : गुजराती साहित्य का इतिहास, हिन्दी-समिति उ. प्र., लखनऊ, १९६३

४९५. गोवर्द्धन शर्मा : अपभ्रंश और आभीरादि जातियाँ, मरुभारती, ११, ३, पृ. १४-१६, अक्तूबर, १९६३

४९६. एन. डी. शर्मा : अपभ्रंश काव्य में छन्दयोजना, आगरा विश्वविद्यालय से १९६३ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध।

४९७. के. आर. चन्द्र : प्लेस ऑव प्राकृत इन संस्कृत ड्रामाज़

४९८. डॉ. देवेन्द्रकुमार, इन्दौर : स्वयम्भू युग की अपभ्रंश काव्यधारा, महावीर-जयन्ती स्मारिका, पृ. ९-१३, जयपुर, १९६३

४९९. डॉ. हरीश : हिन्दी साहित्य के आदिकाल की विशिष्ट हिन्दी जैनकृति : जम्बूस्वामी सत्कवस्तु, पृ. २३-२५, महावीर-जयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९६३

५००. डॉ. वासुदेवसिंह : जैन तत्त्वज्ञान के विशिष्ट आख्याता : योगेन्द्र मुनि, पृ. २६-३३, महावीर-जयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९६३

५०१. प्रो. राजाराम जैन : महाकवि रइधू : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. ११८-१२३, महावीरजयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९६३

५०२. डॉ. मुरारीलाल शर्मा 'सुरस' : प्राकृत और अपभ्रंश में कृष्णकाव्य का विकास, सप्तसिन्धु, पृ. २३-२७, दिसम्बर, १९६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०३. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : हिन्दी के अज्ञात साहित्य की खोज, सप्तसिन्धु, पृ. २९-४१, फ़रवरी, १९६३

५०४. आर. एन. दाण्डेकर एंड वी. राघवन (सं.) : ओरियंटल स्टडीज़ इन इंडिया, नयी दिल्ली, १९६४

५०५. डॉ. प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६४

५०६. रश्मिकान्त तथा कान्तिलाल : अपभ्रंश साहित्य का इतिहास, सांस्कृतिक प्रकाशन मन्दिर, बम्बई, १९६४

५०७. डॉ. रामसिंह तोमर : प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य और उस का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी. फ़िल. के लिए १९५१ में स्वीकृत व वहीं से प्रकाशित, १९६४

५०८. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश कथा-काव्य, गुरुदेव श्रीरत्नमुनि स्मृति-ग्रन्थ, पृ. ३२८-३३८, आगरा, १९६४

५०९. शालिग्राम उपाध्याय : हेमचन्द्राचार्य के व्याकरणोद्धृत अपभ्रंश-दोहों का साहित्यिक मूल्यांकन, जैनसिद्धान्तभास्कर, २४, १, पृ. २८-४१, आरा, दिसम्बर, १९६४

५१०. डॉ. सत्यरंजन वन्द्योपाध्याय : द ईस्टर्न स्कूल ऑव प्राकृत ग्रैमेरियन्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९६४ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

५११. तिश्योशी नारा : ए स्टडी ऑव अवहट्ठ एंड प्रोटो-बेंगाली, कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९६४ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

५१२. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : पुरानी खड़ी बोली, भारतीय साहित्य, वर्ष ८, अंक ४,

५१३. डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया : राउलवेल में प्रयुक्त क्रियाएँ, ना. प्र. पत्रिका, मालवीयशती अंक, पृ. ४५३-४६१

५१४. हीरालाल रसिकदास कापड़िया : द जैन रिकार्ड्स अबाउट वर्ड्स, एनल्स ऑव द भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना, पृ. १०५-१४१, जिल्द ६५, भाग १-४, १९६४

५१५. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : हरिषेण नाम के आठ कवि (अनु. कुन्दनलाल जैन), सन्मति-सन्देश, ९, ५, पृ. ६२-६३, मार्च, १९६४

५१६. डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' : हेमचन्द्रीय व्याकरण की अपभ्रंश किस की पुत्री है ? परिषद्-पत्रिका, वर्ष ४, अंक ३, पृ. ५५-६०, अक्तूबर, १९६४

५१७. अगरचन्द नाहटा : अपभ्रंश-भाषा के सन्धि-काव्य, परिषद्-पत्रिका, पृ. ९३-९८, अक्तूबर, १९६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१८. डॉ. सरनामसिंह 'अरुण' : आर्यभाषा के विकासक्रम में अपभ्रंश, जयपुर, प्रथम संस्करण १९६४, द्वि. सं. १९६६

५१९. डॉ. अल्फ्रेड मास्टर : ए ग्रैमर ऑव ओल्ड मराठी, ऑक्सफोर्ड, १९६४

५२०. विद्यानन्द : भारतीय आर्यभाषा और अर्धमागधी, जैन सिद्धान्त भास्कर, २४, १, पृ. १२-१८, दिसम्वर, १९६४

५२१. पं. परमानन्द शास्त्री : अपभ्रंश का रासा-साहित्य, जैन सिद्धान्तभास्कर, २४, १, पृ. ४८-५२, दिसम्वर, १९६४

५२२. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : अपभ्रंश साहित्य के विकास में पंजाव का योगदान, सप्तसिन्धु, पृ. १-१०, अगस्त, १९६४

५२३. डॉ. वासुदेवसिंह : महयंदिण मुनि, महावीर-जयन्ती स्मारिका, पृ. ६८-७०, जयपुर, १९६४

५२४. मुनिश्री बुधमल : द कंट्रीब्यूशन ऑव जैन राइटर्स टु इण्डियन लैंग्वेजेज, पृ. ७६, ऑल इं. ओ. कान्फ्रेन्स, नयी दिल्ली, १९६४

५२५. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : भविसयत्तकहा और अपभ्रंश-कथाकाव्य, आगरा विश्वविद्यालय से १९६४ में स्वीकृत शोध-प्रवन्ध, प्रकाशित १९७०

५२६. डॉ. राजाराम जैन : रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पीएच. डी. के लिए (ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द वर्क्स ऑव महाकवि रइधू) १९६४ में गवर्नमेंट प्राकृत रि. इं., मुजफ्फरपुर (विहार) से स्वीकृत शोध-प्रवन्ध तथा विहार शासन की ओर से प्रकाशित, १९७१

५२७. डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय : विनयचन्द सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका', सम्मेलन-पत्रिका, भाग ४७, अंक २, पृ. ३४-४०, चैत्र-ज्येष्ठ, शक १८८३

५२८. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश और हिन्दी-कोश, हिन्दुस्तानी, २५, १-४, जनवरी–दिसम्वर, १९६४

५२९. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-कथाकाव्य, आलोचना, ३२, ६, पृ. ६२-७४, अक्तूबर, १९६४

५३०. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश और सिन्धी, सप्तसिन्धु, वर्ष ११, अंक १०, पृ. ५०-५६, अक्तूबर, १९६४

५३१. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश का एक प्रेमाख्यानक काव्य : विलासवईकहा, अनेकान्त, १७, ५, पृ. १९९-२०२, दिसम्वर, १९६४

५३२. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-काव्यों में अस्त्र-शस्त्रों के उल्लेख, त्रिपथगा, पृ. १३७-१४०, अगस्त, १९६४

५३३. हीरालाल जैन (सं.) : करकण्डचरिउ, सम्पादित हिन्दी अनुवाद सहित, भारतीय ज्ञानपीठ, १९६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३४. अगरचन्द नाहटा : नेमिनाहचरिउ, अनेकान्त, १७, ५, पृ. २२६-२२९, १९६४

५३५. अगरचन्द नाहटा : कविवर रइधू विरचित सावयचरिउ, अनेकान्त, १७, १, पृ. १०-१६, १९६४

५३६. पं. परमानन्द शास्त्री : कवि बल्ह या बूचिराज, अनेकान्त, १६, ६, पृ. २५४-२५७, फ़रवरी, १९६४

५३७. के. आर. नॉर्मन : मिडिल इंडो-आर्यन स्टडीज ४, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, १३, ३, पृ. २०७-२१३, मार्च, १९६४

५३८. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह : गुर्जर अपभ्रंश विशे वाधू, स्वाध्याय, गुजराती पत्रिका, १, २, पृ. १५६-१६८, जनवरी, १९६४

५३९. मुनि बुधमल जी : भारतीय भाषाओं को जैन साहित्य की देन, शोव-पत्रिका, १५, २, पृ. १०५-१२९, अप्रैल, १९६४

५४०. बी. के. खडवडी : कन्नडवर्ड्स इन देशी स्टॉक, जर्नल ऑव द कर्नाटक यूनिवर्सिटी, मैसूर, जिल्द ७, पृ. २६५-२६८, जिल्द ८, पृ. ८०-८६, १९६४

५४१. एन. रत्नाश्रीयन् : सम ओनोमेटोपोइअस फ़ॉम पुष्पदन्ताज महापुराण, भारतीय विद्या, २३, १-४, पृ. ८०-८६, सितम्बर, १९६४

५४२. एच. सी. भायाणी : ए. फ्यु प्रॉब्लेम्स ऑव अपभ्रंश रिकन्सीडर्ड, इंडियन लिंग्विस्टिक्स, जिल्द २५, पृ. ७०-७६, १९६४

५४३. एस. एन. घोषाल : द डेवलपमेंट ऑव द संस्कृत कंजंक्ट 'क' इन प्राकृत, ओरियंटल ऑल इं. कान्फ्रेंस, समरीज ऑव पेपर्स, पृ. १०९-११०, नयी दिल्ली, १९६४

५४४. गोकुलचन्द्र शर्मा : सन्देशरासक के रचयिता का निवासस्थान, ना. प्र. पत्रिका, वर्ष ६७, अंक २, पृ. १६१–१६३

५४५. प्रो. शालिग्राम उपाध्याय : हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरणोद्धृत पद्यों का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय जैन साहित्य, सं. प., भा. १, आरा, १९६५

५४६. प्रेम सुमन जैन : अपभ्रंश साहित्य और साहित्यकार, वहीं, पृ. ७८–८५, आरा, १९६५

५४७. डॉ. राजाराम जैन : अपभ्रंश में कड़वक छन्द, वहीं, पृ. ७४-७७, आरा, १९६५

५४८. डॉ. राजाराम जैन : रइधू कृत 'सावयचरिउ' 'समत्तकउमुइ' ही है, अनेकान्त, १७, ६, पृ. २५०–२५२, फ़रवरी, १९६५

५४९. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश का एक प्रमुख कथाकाव्य, अनेकान्त, पृ. २६३–२७४, फ़रवरी, १९६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५०. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश जैन साहित्य, मुनिश्री हजारीमल स्मृति-ग्रन्थ, पृ. ८०४–८, ब्यावर,१९६५

५५१ डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य, समरीज़ ऑव पेपर्स, ऑल इंडिया ओ. कान्फ्रेन्स, २२ वाँ सेशन, गौहाटी, जनवरी, १९६५

५५२. डॉ. सत्यरंजन बनर्जी : फ्रेग्मेंट्स ऑव द अर्लिएस्ट ईस्टर्न प्राकृत ग्रैमेरियन्स, वहीं, पृ. १४५, गौहाटी, जनवरी, १९६५

५५३. डॉ. एच. सी. भायाणी : फ़ोर देश्य वर्ड्स, वहीं, पृ. १४५, गौहाटी, जनवरी, १९६५

५५४. श्रीमती काजल घोष : अपभ्रंश वर्सेज इन द विक्रमोर्वशीय, वहीं, पृ. १४५, जनवरी,१९६५

५५५. राजाराम जैन : रइधू साहित्य की प्रशस्तियों में ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सामग्री, मुनिश्री हजारीमल स्मृति-ग्रन्थ, पृ. ६५४–६६५, ब्यावर, १९६५

५५६. डॉ. हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी : तीन अर्धमागधी शब्दों की कथा, वहीं, ७७१–७२

५५७. डॉ. गोवर्धन शर्मा : अपभ्रंश का विकास, वहीं, पृ. ९००–९१६, ब्यावर, १९६५

५५८. डॉ. गोवर्धन शर्मा : प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल-साहित्य पर प्रभाव, कानपुर, १९६५

५५९. डॉ. हरिशंकर शर्मा 'हरीश' : आदिकाल का हिन्दी गद्य साहित्य (सं. १०००–१५००), रामा प्रकाशन, लखनऊ, १९६५

५६०. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : 'सन्देशरासक' के पाठ और अर्थ में संशोधन के कुछ सुझाव, परिषद्-पत्रिका, ३, २, पृ. ७५-७८, जुलाई, १९६५

५६१. डॉ. ई. वी. कॉवेल (मूल) अनु. नटवरलाल अम्बालाल व्यास : प्राकृत-व्याकरण-संक्षिप्त परिचय, भारतीय साहित्य, १०, ३–४, जुलाई-अक्तूबर, १९६५

५६२. प्रफुल्लकुमार मोदी (सं.) : पद्मकीर्ति कृत पासणाहचरिउ, हिन्दी अनुवाद सहित, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, १९६५

५६३. ज्यूल ब्लॉख (अनु. अल्फ्रेड मास्टर) : इंडो-आर्यन, पेरिस, १९६५

५६४. एस. एन. घोषाल : द संस्कृत कन्जंक्ट्स ऑव मोर देन टु कान्सोनेन्ट्स एंड एन आस्पेक्ट ऑव देअर डेवलपमेंट इन प्राकृत, ऑल इं. ओ. कान्फ़्रेन्स गौहाटी, जनवरी, १९६६

५६५. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (इन्दौर) : अपभ्रंश-भाषा और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, १९६५

५६६. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-कथाकाव्य, शोध-भारती, खण्ड १, अंक १–२, लखनऊ, पृ. ८९–९५, दिसम्बर, १९६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६७. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश के कथाकाव्य और चरितकाव्य, हिन्दुस्तानी, २६, ३-४, पृ. ६०-७१, जुलाई-दिसम्बर, १९६५

५६८. परिक्षित हजारिका : द कामरूपी अपभ्रंश, ऑल इंडिया ओ. कान्फ्रेन्स, गौहाटी, जनवरी, १९६५

५६९. डॉ. एच. सी. भायाणी : पोस्ट-पोज़ीशनल इनवरसन इन ओल्ड गुजराती, वहीं, जनवरी, १९६५

५७०. डॉ. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह : सम प्राकृत स्टेन्ज़ाज़ ऑव कश्मीर शैव राइट्स, वहीं, जनवरी, १९६५

५७१. डॉ. बी. जे. संडेसरा : द हम्मीर प्रबन्ध (१५१८ ई.) ऑव अमृत-कलश—एन अन-नोटिस्ड ओल्ड गुजराती पोयम इयुलोजिसिंग द एक्सप्लाइट्स ऑव हम्मीर, द रूलर ऑव रणथम्भोर, ऑल इंडिया ओ. का., गौहाटी, जनवरी, १९६५

५७२. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : लैंग्वेज एंड डायलेक्ट्स यूज्ड इन द कुवलय-माला, वहीं, १९६५

५७३. डॉ. सुभद्र झा (अनु.) : कम्पेरेटिव ग्रैमर ऑव द प्राकृत लैंग्वेजेज, द्वि. सं., दिल्ली, १९६५

५७४. वीरेन्द्र श्रीवास्तव : अपभ्रंश-भाषा का अध्ययन, पटना विश्वविद्यालय से डी. लिट्. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, दिल्ली, १९६५

५७५. राजाराम जैन : सावयचरिउ, सार्द्धशताब्दि स्मृतिग्रन्थ, कलकत्ता, १९६५

५७६. पी. आर. देशमुख : प्रकृति-प्राकृत, नवभारत, १८, १०, पृ. ३४-४३, जुलाई, १९६५

५७७. बी. के. खडबडी : कन्नड एलीमेंट इन धात्वादेशाज, जर्नल ऑव द कर्नाटक यूनिवर्सिटी (ह्युमैनिटीज), मैसूर, जिल्द १९, पृ. ११८-२८, १९६५

५७८. तिश्योशी नारा : अपभ्रंश एंड अवहट्ठ—प्रोटो न्यू इंडो-आर्यन स्टेजेज, गेंगो केन्क्यु, जर्नल ऑव द लिंग्विस्टिक सोसायटी ऑव जापान, टोकियो, जिल्द ४२, पृ. ४७-५८, १९६५

५७९. एन. रत्नाश्रीयन् : सम फ़ॉरन लोन-वर्ड्स इन पुष्पदन्ताज़ अपभ्रंश, भारतीय विद्या, २५, १-२, पृ. २७-३७

५८०. पं. परमानन्द शास्त्री : ब्रह्मनेमिदत्त और उन की रचनाएँ, अनेकान्त, १८, २, पृ. ८२-८४, जून, १९६५

५८१. जगदीशप्रसाद कौशिक : अपभ्रंश भाषा के क्षेत्रीय भेद : समस्या और समाधान, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ७०, २. पृ. १२३, वि. सं. २०२०

५८२. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : डॉ. हर्मन जेकोबी और जैन साहित्य, श्री तनसुखराय जैन स्मृतिग्रन्थ, दिल्ली, पृ. ३६३-३६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८३. डॉ. एच. सी. भायाणी : द नॉमिनल सफ़िक्स ओट इन संस्कृत, एच. डी. वेलणकर कमोमेरेशन वाल्यूम, पृ. ४–१०, बम्बई, १९६५

५८४. डॉ. श्रीमती रत्ना एन. श्रीयन् : स्टडी ऑव द देश्य एंड रेयर वर्ड्स फ़्रॉम पुष्पदन्त्स महापुराण, वेलणकर कमोमेरेशन वाल्यूम, पृ. १५४–६०

५८५. डॉ. जी. के. भट : एन आब्सक्योर अपभ्रंश वर्स क्वोटेड इन द दशरूप, वहीं, पृ. १९७–२०२ तथा वेलणकर स्मृतिग्रन्थ, बम्बई, अक्तूबर, १९६५

५८६. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश की दो लघु रासो रचनाएँ, सम्मेलन-पत्रिका, भाग ४९, सं. ३–४, पृ. २०९–२१६, आषाढ़–मार्गशीर्ष, शक १८८५

५८७. डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' : हिन्दी-भाषा (अतीत और वर्तमान), आगरा, १९६५

५८८. डॉ. ह. चू. भायाणी : प्राकृतनां सादृश्यमूलक आख्यातिक कर्मणि अंगो (गुजराती में), विद्या, ८, २, १९६५

५८९. डॉ. ह. चू. भायाणी : अनुशीलनो (गुजराती में), पाप्युलर पब्लिशिंग हाउस, सूरत, १९६५

५९०. डॉ. ह. चू. भायाणी : शोध अने स्वाध्याय (गुजराती में), आर. आर. सेठ, बम्बई, १९६५

५९१. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : जसहरचरिउ की एक कलात्मक सचित्र पाण्डुलिपि, अनेकान्त, पृ. ५१–५३, अप्रैल–जून, १९६६

५९२. डॉ. राजाराम जैन : महाकवि रइधू कृत सावयचरिउ, अनेकान्त, १९, १–२, पृ. १०१–४, जून, १९६६

५९३. डॉ. ह. चू. भायाणी : स्टडीज़ इन हेमचन्द्राज़ देशीनाममाला, पार्श्वनाथ-विद्याश्रम, वाराणसी, १९६६

५९४. डॉ. ह. चू. भायाणी : थ्री जिप्सी फ़ार्मेटिव सफ़िक्सेज़, विद्या, ९, १, १९६६

५९५. पी. बी. पण्डित : इंडियन लिंग्विस्टिक्स, १९६४, बुलेटिन ऑव द डेक्कन कॉलेज रि. इं., पूना, सिलवर जुबिली वाल्यूम, पृ. १–१०, १९६६

५९६. डॉ. गोविन्द रजनीश : फागु का छन्द विधान, भारतीय साहित्य, वर्ष ११, अंक १–२, पृ. १७१–७७, अप्रैल, १९६६

५९७. एस. एम. कत्रे : प्रॉब्लेम्स ऑव मॉडर्न इंडियन लिंग्विस्टिक्स, प्रोग्रेस ऑव टुअंटी-सिक्स्थ कांग्रेस ऑव ओरियंटलिस्ट्स, पृ. ११४, नयी दिल्ली, १९६६

५९८. काजल पलीत : कालिदासाज प्राकृत एंड द बासिम कापर प्लेट्स इन्स्क्रिप्सन, प्रोग्रेस ऑव टुअंटी-सिक्स्थ कांग्रेस ऑव ओरियंटलिस्ट्स, पृ. ११५, नयी दिल्ली, १९६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५९९. के. सी. आचार्य (सं.) : प्राकृतसर्वस्व ऑव मार्कण्डेय, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, १९६६

६००. डॉ. हीरालाल जैन (सं. व अनु.) : सुगन्धदशमीकथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६६

६०१. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वाराणसी, १९६६

६०२. डॉ. भोलानाथ तिवारी : हिन्दी भाषा, किताब महल, इलाहाबाद, १९६६

६०३. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : वसन्तविलास और उस की भाषा, आगरा विश्वविद्यालय, १९६६

६०४. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : कीर्तिलता के पाठ तथा अर्थसंशोधन के कुछ सुझाव, भारतीय साहित्य, ११, ३-४, पृ. १-२५, जुलाई-अक्तूबर, १९६६

६०५. शम्भुनाथ द्विवेदी : पुरानी हिन्दी के सर्वनाम, विश्वम्भरा, वर्ष ३, अंक ३, पृ. १३-२२, १९६६

६०६. विश्वजीत : पृथ्वीराजरासउ की भाषा, भारतीय साहित्य, पृ. २७-३६, जुलाई-अक्तूबर, १९६६

६०७. डॉ. सत्यरंजन बनर्जी : चण्डीदेवाज प्राकृत-दीपिका, ए कमेन्टरी ऑव क्रमदीश्वराज प्राकृत ग्रैमर-आइडेंटीकल विद द वृत्ति ऑव जुमरनन्दि, १९६६

६०८. डॉ. सत्यरंजन बनर्जी : प्राकृत वैयाकरणों की पाश्चात्य शाखा का विहंगमावलोकन, अनेकान्त, १९, १-२, पृ. १७५-८०, अप्रैल-जून, १९६६

६०९. एच. सी. भायाणी : मिडिल इंडो-आर्यन मिस्सेलनी, विद्या पत्रिका, ९, २, पृ. १-५, अगस्त, १९६६

६१०. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-साहित्य के चरितकाव्य, परिषद्-पत्रिका, वर्ष ६, अंक २, पृ. ५०-६६, जुलाई, १९६६

६११. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : प्राकृत का एक प्रेमाख्यानकाव्य तरंगवतीकथा, भारतीय साहित्य, वर्ष ११, अंक १-२, पृ. ३१-३७, जनवरी-अप्रैल, १९६६

६१२. डॉ. कैलाशचन्द्र अग्रवाल : प्रद्युम्नचरित की भाषा, भारतीय साहित्य, ११, १-२, पृ. १२२-१४२, जनवरी-अप्रैल, १९६६

६१३. डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' : अपभ्रंश और ब्रजभाषा, सम्मेलन-पत्रिका, भाग ५०, सं. २-३, पृ. ५२-६३, चैत्र-भाद्रपद, शक १८८६

६१४. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : हिन्दी की प्राचीन अज्ञात कृतियाँ, सम्मेलन-पत्रिका, वहीं, पृ. ११२-१२४, शक १८८६

६१५. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश का एक प्रेमाख्यानकाव्य 'विलास-वईकहा', सम्मेलन-पत्रिका, ५०, २-३, पृ. १७०-७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६१६. श्यामनारायणसिंह यादव : वैयाकरण कवि मार्कण्डेय तथा उन का काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ७१, ३-४, पृ. ३०७-३२०, वि. सं. २०२३

६१७. अजित शुकदेव : वज्जिका-भाषा और साहित्य, ना. प्र. प., ७१, ३-४, पृ. ४२५-२८, वि. सं. २०२३

६१८. डॉ. राजाराम जैन : महाकवि रइधू कृत सावयचरिउ, अनेकान्त, १९, १-२, अप्रैल-जून, १९६६

६१९. डॉ. एन. पी. शर्मा : अपभ्रंश के स्फुट साहित्यिक मुक्तक, बिहार विश्वविद्यालय से १९६६–६७ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध (अप्रकाशित)

६२०. द्विजराम यादव : वज्रयानी सिद्ध सरहपाद, विश्वभारती, ७, १, पृ. ६२–७०, चैत्र-ज्येष्ठ, वि. सं. २०२३

६२१. द्विजराम यादव : वज्रयानी सिद्ध काण्हपा की रचनाओं की सूची, विश्वभारती, खण्ड ७, अंक ३, पृ. २८९–२९८, आश्विन–मार्गशीर्ष, वि. सं. २०२३

६२२. रामसिंह तोमर : महाराज भोजराज और अपभ्रंश, विश्वभारती, ७, १, पृ. ८६–९१, चैत्र–ज्येष्ठ, वि. सं. २०२३

६२३. डॉ. माताप्रसाद गुप्त तथा डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल (सं. व अनु.) : रल्ह कृत जिणदत्तचरित, जयपुर, १९६६

६२४. बलवीरप्रकाश गुप्त : द प्रॉब्लेम ऑव जेंडर एज कान्कर्ड कैटेगरी इन हिन्दी लेख, सुकुमार सेन स्मारक ग्रन्थ, पृ. ४९–६५, पूना, १९६६

६२५. मधुसूदन मल्लिक : मेटाथीसिस इन पालि, वहीं, पृ. ९३–९५, पूना, १९६६

६२६. डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय : आदिकालीन हिन्दी-साहित्य (१०००–१४००), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि के लिए १९६६ में स्वीकृत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से १९७० में प्रकाशित

६२७. एस. एन. घोषाल : ऑन द इटिमोलॉजी ऑव द प्राकृत वोकेबल पोर, विश्वेश्वरानन्द इंडोलॉजिकल जर्नल, होशियारपुर, ५, १, पृ. ३८–४१, मार्च, १९६७

६२८. एस. एन. घोषाल : द नसल्स इन्फ़्ल्युएन्स अपॉन द नेबरिंग सिलेबस, बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ. २५१–२५९, कलकत्ता, १९६७

६२९. अगरचन्द नाहटा : राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९६७

६३०. परममित्र शास्त्री : सूत्रशैली और अपभ्रंश-व्याकरण, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि. सं. २०२४

६३१. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी : अपभ्रंश-साहित्य और मणिधारी श्रीजिनचन्द्र सूरि कृत 'व्यवस्था-शिक्षाकुलम्,' बा. छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ. ३५५–६२, १९६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६३२. श्याम वर्मा : हिन्दी आदिकाल के जैन प्रबन्धकाव्य, वा. छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ. ८३–८९

६३३. डॉ. देवेन्द्रकुमार (इन्दौर) : पुष्पदन्त का कृष्णकाव्य, श्रमण, १९, १–२, पृ. ३–१३, नवम्बर–दिसम्बर, १९६७

६३४. प्रेमचन्द जैन : अपभ्रंश कथाकाव्यों का हिन्दी-प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर प्रभाव, श्रमण, १९, १–२, पृ. ४३–५३, नवम्बर–दिसम्बर, १९६७

६३५. कीर्तिचन्द रावका : कविवर राजसिंह (रल्ह) का जिणदत्तचरित, स्मारिका, पृ. ४७–४८, राजस्थान जैन साहित्य परिषद्, जयपुर, १९६७–६८

६३६. जगदीशप्रसाद कौशिक : 'पउमसिरीचरिउ का भाषा वैज्ञानिक महत्त्व,' नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ७२, १–४, पृ. ७३–८७, वि. सं. २०२४

६३७. डॉ. एस. एन. घोषाल : द संस्कृत-कन्जन्कट्स ऑव टु डिस्सिमिलर क्लॉस-नसल्स एंड देयर ट्रान्सफ़ॉर्मेशन इन प्राकृत, गोपीनाथ कविराज अभिनन्दनग्रन्थ, पृ. २६६–२७०, लखनऊ, १९६७

६३८. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : भविसयत्तकहा तथा उस का रचना-काल, परिषद्-पत्रिका, वर्ष ७, अंक १, पृ. २६-३४, अप्रैल, १९६७

६३९. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : धनपाल विरचित भविसयत्तकहा और उस की रचना-तिथि, अनेकान्त, वर्ष २०, किरण १, पृ. ३३-३९, अप्रैल, १९६७

६४०. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भण्डाराज़ इन राजस्थान, जयपुर, १९६७

६४१. आर. एल. टर्नर : जेमिनेट्स आफ्टर लांग वोवेल इन इंडो-आर्यन, बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियंटल एंड अफ्रिकन स्टडीज़, ३०, १, पृ. १९६७

६४२. डॉ. गजानन मराठे : स्वयम्भू कृत पउमचरिउ और तुलसी कृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पीएच. डी. की उपाधि के लिए १९६७ में बम्बई विश्वविद्यालय से स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

६४३. गोकुलचन्द्र जैन : कुवलयमालाकहा : एक महत्त्वपूर्ण प्राकृत चम्पू, विश्वज्योति, १५, २, पृ. २९-३३, जनवरी, १९६७

६४४. बाबू रामबालक प्रसाद : अपभ्रंश दोहा साहित्य : एक दृष्टि, गुरु गोपालदास वरैया स्मृतिग्रन्थ, सागर, पृ. ४९२-५००, १९६७

६४५. डॉ. राजाराम जैन : महाकवि रइधू कृत अणथमिउकहा, वहीं, पृ. ५१६-५२१

६४६. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में संगृहीत सचित्र एवं कलात्मक पाण्डुलिपियाँ, वहीं, पृ. ५३९-५४३, १९६७

६४७. पं. परमानन्द शास्त्री : धारा और उस के जैन सारस्वत, वहीं, पृ. ५४३-५५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४८. पं. परमानन्द शास्त्री : रासा-साहित्य : एक अध्ययन, जैन सिद्धान्त भास्कर, ३३, २५, पृ. १४-३३, जुलाई, १९६७

६४९. जगदीशप्रसाद : पउमसिरीचरिउ की भाषा का ध्वन्यात्मक अध्ययन, राजस्थान भारती, भाग १०, अंक ३, पृ. ३७-४६, दिसम्बर, १९६७

६५०. एन. ए. देशपांडे : क्रॉनालॉजी ऑव अपभ्रंश वर्क्स, भारतीय विद्या, भाग २७, सं. १-४, १९६७

६५१. डॉ. विपिन विहारी त्रिवेदी : अपभ्रंश-प्रवेश, पारुल प्रकाशन, लखनऊ, १९६७

६५२. डॉ. छोटेलाल शर्मा : प्राकृत रामकाव्य की छन्दोयोजना, राजस्थान यूनिवर्सिटी स्टडीज इन संस्कृत एंड हिन्दी, सं. २, पृ. ९९-१२८, जुलाई, १९६७

६५३. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : भट्टारक विनयचन्द के समय पर विचार, जैन सिद्धान्त भास्कर, २०, १, पृ. ३०-३२, अप्रैल, १९६७

६५४. एच. डी. सांकलिया : इंडियाज लैंग्वेज ई. पू. ३००-१९६० ई., बुलेटिन ऑव द डेक्कन कॉलेज रि. इं., पूना, पृ. १२-१९, दिसम्बर, १९६८

६५५. डॉ. ह. चू. भायाणी : अपभ्रंश साहित्यमां कृष्णकाव्य, विश्वमानव, गुजराती पत्रिका, अप्रैल, १९६८

६५६. मुनिश्री मृगेन्द्र जी (सं.) : पंचशती प्रबोध सम्बन्ध, भूमिका डॉ. भायाणी द्वारा लिखित, सूरत, १९६८

६५७. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' : विद्यापति की छन्द-योजना, विश्वभारती, खण्ड ९, अंक २, पृ. २४०-२६०, जुलाई-सितम्बर, १९६८

६५८. डॉ. सनत्कुमार रंगाटिया : जैन रास-साहित्य में स्वप्नवर्णन, जैनसिद्धान्त-भास्कर २५, २, पृ. १४,२२, दिसम्बर, १९६८

६५९. डॉ. राजाराम जैन : यशोधर कथा का विकास एवं महाकवि रइधू कृत जसहरचरिउ : एक अध्ययन, जैनसिद्धान्तभास्कर २५, २, पृ. ६२-६९, दिसम्बर, १९६८

६६०. डॉ. राजाराम जैन : यशोधर कथा का विकास एवं महाकवि रइधू कृत जसहरचरिउ : एक अध्ययन, ऑल इंडिया ओरियंटल कान्फ्रेंस में १९६८ में पठित

६६१. डॉ. सत्यपाल गुप्त : नानकवाणी की भाषा, अपभ्रंश तथा प्राचीन ब्रजभाषा, राजस्थान यूनिवर्सिटी स्टडीज इन संस्कृत एंड हिन्दी, सं. ३, पृ. ५३-६०, जयपुर, १९६८-६९

६६२. डॉ. नीलरत्नसेन : प्राचीन बंगला छन्द : चर्यापद, श्रीकृष्णकीर्तन, विद्यापतिपदावली, १९६८ में दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रदत्त व्याख्यान

६६३. डॉ. सत्यरंजन बनर्जी : चण्डीदेवाज प्राकृतदीपिका, ए कंटेररी ऑव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रमदीश्वराज प्राकृत ग्रैमर आइडेंटीक्ल विद द वृत्ति ऑव जुमरनन्दी, आल इं. ओरियंटल कान्फ्रेंस, पृ. ५७-५८, १९६८

६६४. डॉ. विमलप्रकाश जैन : ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द लाइफ़ ऑव जम्बूसामि ऑन द बेसिस ऑव जम्बूसामिचरिउ ऑव वीर, जबलपुर विश्वविद्यालय से १९६८ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत तथा भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित शोधप्रबन्ध

६६५. डॉ. सिद्धनाथ पाण्डेय : अपभ्रंश के आख्यानक काव्य और उन का हिन्दी के आख्यानक काव्यों (१७वीं शताब्दी ई. तक) पर प्रभाव, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से १९६८ में डी. फिल. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध

६६६. डॉ. राजाराम जैन : ग्वालियर दुर्ग के कुछ जैन मूर्ति-निर्माता एवं महाकवि रइधू, श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव-ग्रन्थ, भाग, १, पृ. ४३-४८, १९६८

६६७. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-साहित्य, वहीं, पृ. ६५-७०, १९६८

६६८. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश-साहित्य : एक शोध-सर्वेक्षण, परिषद्-पत्रिका, वर्ष ८, अंक ३-४, पृ. ८७-११६, अक्तूबर ६८, जनवरी, १९६९

६६९. डॉ. हरिशंकर शर्मा 'हरीश' : राउलवेल की भाषा : एक दृष्टि, अन्वेषणा, वर्ष १, अंक १, पृ. २५-३९, जनवरी-मार्च, १९६८

६७०. डॉ. देवेन्द्रकुमार, इन्दौर : सन्देशरासक : शिल्प-सन्दर्भ, विशिष्ट पाठ और अर्थ, परिषद्-पत्रिका, वर्ष ८, अंक १, पृ. १०७-११४, अप्रैल, १९६८

६७१. डॉ. माताप्रसाद गुप्त : 'वसन्तविलास' के कतिपय शब्दों की अर्थ-विचारणा, हिन्दुस्तानी, भाग २९, अंक १-४, पृ. १४२-१५१, जनवरी-दिसम्बर, १९६८

६७२. डॉ. रामअवध पाण्डेय तथा रविनाथ मिश्र : पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९६८

६७३. डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय : महाकवि पुष्पदन्त, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, १९६८

६७४. डॉ. विमलप्रकाश जैन (सं. व अनु.) : वीर कृत जम्बूसामिचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६८

६७५. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य, महावीरजयन्ती-स्मारिका, पृ. १४५-५४, जयपुर, अप्रैल, १९६८

६७६. पवनकुमार जैन : अदिकालीन जैन काव्य में वीररस, वहीं, पृ. ४५-४८, अप्रैल, १९६८

६७७. डॉ. के. ऋषभचन्द्र : जैन पुराण साहित्य, श्री महावीर जैनविद्यालय सुवर्णमहोत्सवग्रन्थ, भा. १, पृ. ७०-७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७८. डॉ. एस. एन. घोषाल : द नन इन्फ्लेक्टेड जेनेटिव इन अपभ्रंश, वहीं, भा. १, पृ. १८७-२०३

६७९. प्रो. एल. ए. श्चवरजश्चाल्ड : सम इंट्रोगेटिव पार्टिकल्स इन प्राकृत, वहीं, भा. १, पृ. २०४-२०९

६८०. डॉ. प्रबोध वी. पण्डित : हेमचन्द्र एंड द लिंग्विस्टिक ट्रेडिशन, भा. १, वहीं, पृ. २१०-२१२

६८१. डॉ. सत्यरंजन बनर्जी : फ्रेगमेंट्स ऑव द अर्लिएस्ट ईस्टर्न प्राकृत ग्रैमेरियन्स (शाकल्य, माण्डव्य, कोहल एंड कपिल), भा. १, वहीं, पृ. २७०-२७४

६८२. पं. बेचरदास दोशी : भारतीय वाङ्मय में प्राकृतभाषा का महत्त्व, श्रमण पत्रिका, वर्ष १९, अंक १०, पृ. ६-१६, अगस्त, १९६८

६८३. डॉ. फतहसिंह (सं.) : ठाकुर संग्रामसिंह विरचित बालशिक्षा, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६८

६८४. केशवराम काशीराम शास्त्री (अनु.) : आदिम गुजराती, आदिम राजस्थानी, राजस्थान भारती, भाग ११, अंक २, पृ. ७७-८६

६८५. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश की जैनेतर कृतियों का काव्यशिल्प, राजस्थानभारती, ११, ४, पृ. १६३-६९, १९६९

६८६. प्रेमचन्द जैन : अपभ्रंश कथाकाव्यों का हिन्दी प्रेमाख्यान के शिल्प पर प्रभाव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६९ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत

६८७. चन्द्रप्रकाश त्यागी : हिन्दी में प्रयुक्त देशी शब्दों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६९ में पीएच. डी. के लिए स्वीकृत

६८८. मूलचन्द प्राणेश : जिणदत्तचरित के कतिपय सन्दिग्ध अर्थ, शोध-पत्रिका, वर्ष २०, अंक १, पृ. ५५–६४, जनवरी-मार्च,१९६९

६८९. मूलचन्द प्राणेश : प्रद्युम्न चरित के कुछ सन्दिग्ध अर्थ, वरदा पत्रिका, ५२–५८, पृ. १२, ३, जुलाई, १९६९

६९०. डॉ. मदन केवलिया : सन्देश रासक—आदिकालीन महत्त्वपूर्ण खण्डकाव्य, विश्वम्भरा, ६, १, पृ. ७१–७६, १९६९

६९१. प्रेम सुमन जैन : राजस्थान का प्राकृत साहित्य को योगदान, विश्वम्भरा, ६, १, पृ. ७७–८८, १९६९

६९२. कलानाथ शास्त्री : संस्कृतेतर छन्दों में संस्कृत कविता, विश्वम्भरा, ५, ४, पृ, ५१–५६, १९६९

६९३. डॉ. रामगोपाल गोयल : राजस्थान के प्रेमाख्यान : परम्परा और प्रगति, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, १९६९

६९४. पं. परमानन्द शास्त्री : धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचना-काल पर विचार, अनेकान्त, २२, १, पृ. २-६, अप्रैल, १९६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६९५. श्रीमती (डॉ.) रत्नाश्रीयन् : ए क्रिटिकल स्टडी ऑव महापुराण ऑव पुष्पदन्त, श्री ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद–९

६९६. परमानन्द शास्त्री : ग्वालियर के कुछ काष्ठासंघी भट्टारक, अनेकान्त, २२, २, पृ. ६४–७०, जून, १९६९

६९७. प्रेम सुमन जैन : जैन विद्या का अध्ययन-अनुशीलन : प्रगति के पथ पर, अनेकान्त, २२, ३–४, पृ. १८७–१९१, अगस्त-अक्तूबर, १९६९

६९८. डॉ. ह. चू. भायाणी : ऑन द उपरूपकाज़ काल्ड डोम्बिका एंड सिडगक, विद्या, वर्ष १२, सं. १, पृ. १–१४, जनवरी, १९६९

६९९. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : शुभचन्द्र का प्राकृत व्याकरण, अनेकान्त, २२, १, पृ. ३२, अप्रैल, १९६९

७००. डॉ. सुकुमार सेन, अनु. महावीर प्रसाद लखेड़ा : तुलनात्मक पालि-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९

७०१. बी. एच. कापड़िया : पुष्पदन्तनी अपभ्रंश कृति 'जसहरचरिउ' मा देश्य शब्दो (गुजराती), बुलेटिन ऑव द चूनीलाल गान्धी विद्याभवन, सूरत, सं. १४, अगस्त, १९६९

७०२. जगदीशचन्द्र जैन : द इम्पोर्टेन्स ऑव प्राकृत लिटरेचर विद रिफ़ेन्स टु द स्प्रेड ऑव जैन रिलीजन इन इट्स अर्लिअर स्टेज ड्युरिंग द अर्लीसेन्चुरीज़, जर्नल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव बॉम्बे, जिल्द ३८, सं. ७४, अक्तूबर, १९६९

७०३. अगरचन्द नाहटा : आणंदा का रचयिता—समय एवं पाठ पर विचार, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ७४, ४, पृ. ७३-७९, वि. सं. २०२६ .

७०४. के. आर. चन्द्र : प्राकृत टर्मिनेशन 'य', जर्नल ऑव द ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा, २०, २, पृ. १२१-१३६, दिसम्बर, १९७०

७०५. पी. एम. उपाध्ये : कुवलयमाला : ए कल्चरल स्टडी, जर्नल ऑव द ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, २०, २, पृ. १४८–१५४, दिसम्बर, १९७०

७०६. पी. एम. उपाध्ये : ओनोमेटोपोइटिक वर्ड्स इन प्राकृत, जर्नल ऑव द ओरियंटल रिसर्च इं. बड़ोदा, जिल्द सं. ४, जून, १९७०

७०७. पं. हीरालाल : रइधू विरचित महावीरचरित, महावीर-जयन्ती स्मारिका, द्वितीय खण्ड, पृ. ५७-६२, जयपुर, १९७०

७०८. जगदीश प्रसाद कौशिक : अपभ्रंश के विकास क्रम में पश्चिमी राजस्थानी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से १९७० में पीएच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध

७०९. डॉ. प्रेमसागर जैन : जैन शोध और समीक्षा, जयपुर, जनवरी, १९७०

७१०. श्रीरंजन सूरिदेव : प्राकृत के विकास में बिहार की देन, श्रमण, वर्ष २१, अंक १०, पृ. २०–२६, अगस्त, १९७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७११. डॉ. कोमलचन्द्र जैन : बुन्देलखण्डी भाषा में प्राकृत के देशी शब्द, श्रमण, २१, ७, पृ. २०–२२, मई, १९७०

७१२. डॉ० हीरालाल जैन (सं.) : सुदंसणचरिउ, सम्पादित हिन्दी अनुवाद सहित, प्राकृत जैन विद्यापीठ, वैशाली, १९७०

७१३. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश कोश : एक परिचय, हिन्दुस्तानी, भाग ३१, अंक १–२, पृ. १९–३९, जनवरी–जून, १९७०

७१४. डॉ. राजाराम जैन : अपभ्रंश के कडवक छन्द का स्वरूप-विकास, हिन्दुस्तानी, वहीं, पृ. ११६–११९

७१५. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' : ब्रह्म साधारण की पहली कृति कोइल-पंचमीकहा, अनेकान्त, २३, १, पृ. २५, जनवरी, १९७०

७१६. रामवल्लभ सोमाणी : जम्बूसामिचरिउ में वर्णित गुर्जरता प्रदेश, अनेकान्त, २३, १, जनवरी, १९७०

७१७. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : द विलासवई ऑव साधारण, जर्नल ऑव द शिवाजी यूनिवर्सिटी, पृ. १–२९

७१८. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : द विलासवईकहा : एक परिचयात्मक अध्ययन, अनेकान्त, २३, ४, अक्तूबर, १९७०

७१९. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ, १९७०

७२०. डॉ. सिद्धनाथ पाण्डेय : अपभ्रंश के आख्यानक काव्य और उन का हिन्दी के आख्यानक काव्यों (१७०० ई. तक) पर प्रभाव, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष २३, अंक १–४, पृ. ७५–८४, जून–दिसम्बर, १९७०

७२१. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : अमरकीर्ति नाम के आठ विद्वान्, अनेकान्त, २२, ६, पृ. २८९–२९०, फ़रवरी, १९७०

७२२. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (इन्दौर) : अपभ्रंश काव्यधारा, कल्याणमल एंड सन्स, जयपुर, १९७०

७२३. डॉ. ह. चू. भायाणी : 'हालरडुं', 'पारणुं' (अपभ्रंश साहित्यमां), संस्कृति, गुजराती पत्रिका, जुलाई, १९७०

७२४. एन. दांडेकर एंड घाटगे (सं.) : प्रोसीडिंग्स ऑव द सेमीनार इन प्राकृत स्टडीज़, पूना, १९७०

७२५. ह. चू. भायाणी : ध्वन्यालोक (उद्योत ३, ४) ना प्राकृत उदाहरणोनी पाठचर्चा (गुजराती), विद्या, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, जिल्द १४, सं. १, जनवरी, १९७१

७२६. देवेन्द्रमुनि शास्त्री : प्राकृत जैन कथा-साहित्य, श्रमण, वर्ष २२, अंक ५, पृ. ३–१०, मार्च, १९७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७२७. डॉ. एच. सी. भायाणी और मधुसूदन मोदी (सं.) : हरिभद्रसूरि कृत नेमिनाहचरिय, अहमदाबाद, १९७०–७१

७२८. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश शब्दों का अर्थ-विचार, अनेकान्त, वर्ष २३, किरण ५–६, पृ. २१२–२२०, फ़रवरी, १९७१

७२९. प्रेम सुमन जैन : राजस्थान का अपभ्रंश साहित्य को योगदान, वरदा, १९७१

७३०. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर : पउमचरिउ (हिन्दी अनुवाद), भाग ४, ५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७१

७३१. संकटाप्रसाद उपाध्याय : महाकवि स्वयम्भू (शोधप्रबन्ध), प्रकाशित, अलीगढ़, १९७१

७३२. श्रीरंजन सूरिदेव : प्राकृत और उस का विकास-स्रोत, श्रमण- २२, ६, पृ. ३–९, अप्रैल, १९७१

७३३. डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा : उद्भव और विकास, अणिमा, राजस्थान साहित्य संस्कृति कला विशेषांक, पृ. ८९-९९, मई, १९७१

७३४. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंशकाव्यत्रयी : एक अनुशीलन, मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ, दिल्ली, पृ. १७४-१७६, १९७१

७३५. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश का एक अचर्चित चरितकाव्य, अनेकान्त, वर्ष २४, किरण २, पृ. ५३-५७, जून, १९७१

७३६. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर : सिरिपालचरिउ : एक मूल्यांकन, श्रमण, वर्ष २२, अंक ८, पृ. ३-७, जून, १९७१

७३७. रमेश जैन : संदेशरासक री भासा, राजस्थान भारती, भाग १३, अंक ३, पृ. ५२-५३, जून, १९७१

७३८. के. आर. नॉर्मन : मिडिल इंडो-आर्यन स्टडीज़, जर्नल ऑव द ओरि. इं. म. शि. विश्वविद्यालय, बड़ोदा, जिल्द २०, सं. ४, पृ. ३२९-३३६, जून, १९७१

७३९. एच. सी. भायाणी : जम्बुसामिचरिय ऑव वीर (समीक्षा), वहीं, पृ. ३४७-३५६

७४०. मधुसूदन मल्लिक : पालि एण्ड लेटर प्राकृत्स, वहीं पृ. ३५७-३६२,

७४१. डॉ. देवेन्द्रकुमाशर शास्त्री : अपभ्रंश का जयमाला-साहित्य, अनेकान्त, वर्ष २४, किरण ३, पृ. १२८-१२९, जुलाई-अगस्त, १९७१

७४२. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, स्मृति अने संस्कृति (स्मृति ग्रन्थ), पोरबन्दर (गुजरात), द्वितीय खण्ड, पृ. १०५०-१०५५, १९७१

७४३. शारदा श्रीनिवासन : द्राविडियन वर्ड्स इन देशीनाममाला, जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ोदा, जिल्द २१, सं. १-२, पृ. ११४-१३४, सितम्बर-दिसम्बर, १९७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७४४. डॉ. भागचन्द्र जैन : ब्रह्म साधारण कृत दुद्धारसि कथा, अनेकान्त, वर्ष २४, किरण ४, पृ. १४४-१४६, सितम्बर-अक्तूबर, १९७१

७४५. डॉ. बालकृष्ण अकिंचन : अपभ्रंश भाषाके कवियों का नीतिवर्णन, वहीं, पृ. १४७-१४९

७४६ डॉ. बालकृष्ण अकिंचन : अपभ्रंश भाषाके कवियों का नीतिवर्णन, अनेकान्त, वर्ष २४, किरण ५, पृ. २०१-२०४, नवम्बर-दिसम्बर, १९७१

७४७. डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री : अपभ्रंश की एक अज्ञात जयमाला, वहीं, पृ. २२९-२३१

७४८. डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री : अपभ्रंश भाषा (संस्कृत में), सागरिका, संस्कृत-परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, १० वर्ष, ४ अंक पृ. ४९९-५०९, जून-मार्च, १९७१-७२

७४९. डॉ. राजाराम जैन : रइधू-ग्रन्थावली भा. १, हिन्दी अनुवाद सहित, जीवराज ग्रन्थमाला से प्रकाशित।

७५०. डॉ. हीरालाल जैन : जसहरचरिउ, हिन्दी अनुवाद सहित, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

७५१. डॉ. हीरालाल जैन : णायकुमारचरिउ, हिन्दी अनुवाद सहित, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अध्याय

अपभ्रंश के हस्तलिखित ग्रन्थ

विभिन्न भण्डारों में प्राप्त अपभ्रंश के हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण

भारतवर्ष में अनेक जैन शास्त्र-भण्डार हैं। इन की संख्या लगभग एक सौ से ऊपर होगी। किन्तु अपभ्रंश के ग्रन्थ बहुत कम भण्डारों में मिलते हैं। उन सभी भण्डारों की खोज-खबर लेना बहुत कठिन काम है। जिन भण्डारों की ग्रन्थ-सूचियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं उन से पर्याप्त सहायता ले कर निम्नलिखित विवरण संकलित किया जा रहा है। इन के अतिरिक्त भी लेखक ने स्वयं आगरा, दिल्ली, जयपुर, भरतपुर, अजमेर, ब्यावर, झालरापाटन, रामपुरा भानपुरा एवं प्रतापगढ़ आदि के शास्त्रभण्डारों का अवलोकन कर लगभग एक सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया है। विस्तार के भय से इस सूची में पाटण (गुजरात) के जैनभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण नहीं दिया जा सका है। उन ग्रन्थों के अंश अवश्य आकलित किये गये हैं, जो पंचम अध्याय में अपभ्रंश के अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों के अंश में प्रारम्भ में ही दिये गये हैं। विवरण-क्रम में प्रथम संख्या क्रमसंख्या और दूसरी संख्या शास्त्र-भण्डार में स्थित ग्रन्थानुक्रम के अनुसार है। ग्रन्थानुक्रम को देख कर हम वहाँ के शास्त्र-भण्डार से उस ग्रन्थ को सरलता से मँगवा कर प्राप्त कर सकते हैं।

[अ]

१. अंतरंगरास—जिनप्रभ। अनुक्रमांक १२ (३१)। पत्र सं. १९०-१९४। पाटन-भण्डार।

२. अंतरंगविवाह—जिनप्रभ। अनु. १२ (४१)। पत्र सं. २२०-२२१। पाटन-भण्डार।

३. अकृत्रिमचैत्यालय जयमाल—। गुटका सं. ६३। ६।×५॥। २० कडवक। श्री दि. जैन सरस्वती भण्डार, नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

४. अजितनाथपुराण—विजयसिंह। अनु. १८३६। पत्र सं. १२९। ९॥×४। र. का. सं. १५०५, कार्तिक शु. १५। ले. का. सं. १५८०, चैत्र शु. ५। पूर्ण। वे. सं. २२८। श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. अजितनाथपुराण—विजयसिंह । अपूर्ण । दि. जैन शास्त्र-भण्डार, मौजमाबाद (जयपुर)।
६. अणत्थमीकहा—रइधू । पत्र सं. ६७-६८ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।
७. ,, —रइधू । अ १४ । पत्र सं. १६६-१६९ । ,, ,, ।
८. अणथमियसन्धि—हरिचन्द अग्रवाल । अनु. अ १५ । पत्र सं. ३३-४१ । पंचायता दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।
९. ,, हरिचन्द अग्रवाल । अनु. ५६०२ । पत्र सं. १७-२४ । दि. जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर ।
१०. ,, —हरिचन्द अग्रवाल । अनु. २६८३ । पत्र सं. ६३-६९ । श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।
११. ,, —हरिचन्द अग्रवाल । अनु. २४० । गुटका सं. ५ । पत्र सं. १७७-१८२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।
१२. ,, —हरिचन्द अग्रवाल । गुटके में । पूर्ण । श्री ऋषभ दि. जैन मन्दिर, प्रतापगढ़ ।
१३. ,, —हरिचन्द अग्रवाल । गुटका सं. १२ । १६ कडवक । पत्र सं. ४३-४९ । वे. सं. २५० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।
१४. ,, —हरिचन्द अग्रवाल । अ १४ । पत्र सं. १५५-१६६ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।
१५. ,, —अज्ञात । गुटका सं. २२ । पत्र सं. १६१–१७६ । आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर ।
१६. अणुव्रतकथा—मुनि महीचन्द्र । अनु. व ५५८ । पत्र सं. ७ । ९॥ × ४॥ । ले. का. सं. १८६०, आसोज क्र. १, शुक्रवार । सरस्वती भवन, नागौर ।
१७. अनन्तव्रतकथा—नेमिचन्द । अ १४ । पत्र सं. ११८–१२७ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।
१८. ,, —नेमिचन्द । अ १५ । पत्र सं. १३–२६ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।
१९. अनस्तमितसन्धि—हरिश्चन्द । गुटका नं. ९१ । पत्र सं. १२१–१२७ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।
२० ,, —हरिश्चन्द । गुटका सं. ५ । पत्र सं. १७७–१८२ । आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर ।
२१. अनाथिसन्धि—जिनप्रभसूरि । अनु. १२ (२८) । पत्र सं. १७३–१७६ । पाटन-भण्डार ।
२२. अनुप्रेक्षा—ईश्वरचन्द । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. २३४–२३६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३. अनुप्रेक्षा—पं. जगसी । गुटका सं. ६ । पत्र सं. ३९–४१ । आमेर शास्त्र-भण्डार जयपुर ।

२४. „ —जल्हिग । गुटका सं. ३८ । पत्र सं. १५४–१६५ । श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

२५. „ —जल्हिग । गुटका सं. ३८ । पत्र सं. ५६ । श्री दि. जैन मन्दिर, बड़ौत ।

२६. „ —जल्हिग । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. २३३-२३४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२७. „ —लक्ष्मीचन्द । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. २३६-२३७ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२८. „ —लक्ष्मीचन्द । गुटका सं. ३८ । पत्र सं. १५१-१५४ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।

२९. „ —लक्ष्मीचन्द । गुटका सं. २५ । पत्र सं. २२ वाँ मात्र । ८ × ६ । अपूर्ण । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

३०. „ —पं. साधारण । पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में ।

३१. अपभ्रंश के दोहे—दंगड । पत्र सं. ११७-११८ । पाटन-भण्डार ।

३२. अमरसेनचरित्र—माणिक्कराज । पत्र सं. ९६ । वे. सं. ४० । ले. का. सं. १५५७ । जीर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३३. „ —माणिक्कराज । ले. का. सं. १२७७ । महेन्द्रकीर्ति भ., आमेर । आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर ।

३४. अष्टाह्निका पूजा— × । गुटका सं. २९ । ७॥ × ६॥ । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

३५. अर्हंकार अक्षर की पूजा— × । उ ६१ क ख । ६॥ × ५ । श्री पंचायती दि. मन्दिर, दिल्ली ।

३६. आकाशपंचमीकथा— × । अ १३ । पत्र सं. ३८-४३ । श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

३७. „ —गुणभद्रमुनि । अ १३-१४ । ५॥ × ५॥ । ले. सं. १६०२, श्रावण शु. ११ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।

३८. आत्मसम्बोधन काव्य—अज्ञात । पत्र सं. ३२ । वे. सं. ६९ । ले. का. सं. १५३४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३९. „ —अज्ञात । पत्र सं. ४० । वे. सं. ६६ । ले. का. सं. १६०७ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४०. „ —अज्ञात । पत्र सं. २९ । वे. सं. ६७ । ले. का. सं. १४४८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१. आत्मसम्बोधनकाव्य—अज्ञात । पत्र सं. २७ । वे. सं. ६८ । २२ से २६ तक पत्र नहीं हैं । अपूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४२. „ —अज्ञात । पत्र सं. ३२ । वे. सं. ६९ । ले. का. सं. १५३४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४३. „ —अज्ञात । पत्र सं. १८ । वे. सं. ७० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४४. „ —अज्ञात । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. ३२१-३३३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४५. „ —अज्ञात । पत्र सं. ६-२६ । ११ × ४ । ले. का. सं. १५५३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४६. आत्मसम्बोधन—रइधू । पत्र सं. २१ । ले. का. सं. १६१० । पूर्ण । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, भरतपुर ।

४७. आत्मसम्बोध—अज्ञात । पत्र सं. ६-२६ । ११ × ४ । ले. का. सं. १५५३ । पूर्ण । श्री दि. जैन आदिनाथ मन्दिर, बूंदी ।

४८. आत्मसम्बोधनकाव्य— × । ऊ २ । पत्र सं. २४ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।

४९. „ — × । ऊ २ (ख) । पत्र सं. २८ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।

५०. आत्मसम्बोधनकाव्य—अनुक्रमांक १२७२ । पत्र सं. २७ । १० × ४॥ । पूर्ण । वे. सं. १८५४ । दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

५१. आत्मसम्बोधनकाव्य—पत्र सं. ३१ । वे.सं. ५२ । दि.जैन संघीजी मन्दिर, जयपुर ।

५२. आत्मसम्बोधनकाव्य—रइधू । पत्र सं. २८ । ११ × ४॥ । ले. का. सं. १६१९, द्वितीय श्रावण कृ. ९ । पूर्ण । वे. सं. २४ । बधीचंद दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

५३. आत्मसम्बोधकुलक—जिनप्रभ । अनुक्रमांक १२ (६) । पत्र सं. ९६-९९ । पाटन-भण्डार ।

५४. आदिनाथ की आरती— × । गु. सं. ५ । ६ । × ५॥ । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

५५. आदिपुराण—पुष्पदन्त । ३७ सन्धि । पत्र सं.२४९ । अपूर्ण । दि.जैन मन्दिर, शाहगढ़ ।

५६. आदिपुराण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ५४५४ । गुटका सं. ७३ । पत्र सं. १०२-१३१ । अपूर्ण । दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

५७. आदिपुराण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक २९९ । पत्र सं. ४-२७६ । १२ × ५॥ । ले. का. सं. १५४३, आसोज शु. ९ । पूर्ण । वे. सं. १६४ । ठोलियों का दि.जैन मन्दिर, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८. आदिपुराण—पुष्पदन्त । सचित्र । अनुक्रमांक अ ४ । पत्र सं. १४३ । जीर्ण व खण्डित । दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

५९. (२) दूसरी प्रति । पत्र सं. १८६ । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली ।

६०. आदिपुराण—पुष्पदन्त । पत्र सं. २१० । १४×८।। । ले. का. सं. १९२५, फागुन सुदी १०, बुधवार । ७३०० श्लोकप्रमाण । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६१. आदिपुराण सटिप्पण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक १८५३ । पत्र सं. ३२५ । १०।। × ५ । ले. का. सं. १६३०, भाद्रपद शु. १० । पूर्ण । वे. सं. ५३ । श्री दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

६२. आदिपुराण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक १८५४ । पत्र सं. २९६ । वे. सं. २ । अपूर्ण । बीच के कई पत्र नहीं हैं । गोधों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६३. आदिपुराण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक १८५५ । पत्र सं. १०३ । अपूर्ण । वे. सं. ५४ । श्री दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

६४. आदिपुराण—पुष्पदन्त । टब्बा युक्त । अनु. १८५६ पत्र सं. २९५ । ले. का. सं. १७१९ । वे.सं. २९३ । श्रीपार्श्वनाथ दि.जैन मन्दिर, जयपुर ।

६५. आदिपुराण—पुष्पदन्त । पत्र सं. १५१-२७६ । १२×४।।। । अपूर्ण । श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा ।

६६. आदिपुराण—पुष्पदन्त । वे. सं. ७६ । पत्र सं. २५७ । ले. का. वि. सं. १४६१ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६७. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. ७७ । पत्र सं. ३०७ । ले. का. वि. सं. १६६३ । वहीं, जयपुर ।

६८. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. ७८ । पत्र सं. २१७ । ले. का. वि. सं. १६६२ । वहीं, जयपुर ।

६९. „ —पुष्पदन्त । वें. सं. ३७९ । पत्र सं. ३७९ । अधिकांश पत्र नहीं हैं । वहीं, जयपुर ।

७०. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. ८० । पत्र सं. २१८ । वहीं, जयपुर ।

७१. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. ८२ । पत्र सं. ९१ । अपूर्ण । वहीं, जयपुर ।

७२. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. ३०७ । पत्र सं. २८६ । आकार १२×५ । अपूर्ण । दि. जैन अभिनन्दननाथ मन्दिर, बूँदी ।

७३. „ —पुष्पदन्त । वे. सं. १३१ । पत्र सं. २३४ । आकार १२×५ । ले. का. सं. १६३१, भाद्रपद शु. १२ । बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

७४. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. ७ । अपूर्ण । भ. यशःकीर्तिधर्मार्थ ट्रस्ट, ऋषभदेव (उदयपुर) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७५. आदिपुराण—पुष्पदन्त । पत्र सं. २१७ । ले. का. वि. सं. १५३७ । पूर्ण । श्री महावीरजी ।
७६. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. ४३ । जीर्ण व खण्डित । दि. जैन पर्टोदी मन्दिर, जयपुर ।
७७. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. ३७५ । ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भण्डार, झालरा पाटन ।
७८. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. १८६ । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली ।
७९. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. ३७५ । सरस्वती भवन, व्यावर ।
८०. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. २६६ । आकार १२×५।।। । ले. का. वि. सं. १६१६ । दि. जैन शास्त्र-भण्डार, श्री महावीरजी ।
८१. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. २८७ । ११।।×४।। । ले. का. वि. सं. १५८५ । श्री महावीरजी ।
८२. „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. २९६ । ११।।×५ । ले. का. वि. सं. १५३७ । श्री महावीरजी ।
८३. „ —पुष्पदन्त । सं. ४४६ अ । क्र. सं. २१ । पत्र सं. ४१८ । १२×५ । ले. का. वि. सं. १६०८ माघ कृष्ण ११, गुरुवार । सरस्वती भवन, नागौर ।
८४. आदित्यवारकथा—पं. साधारण । पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में ।
८५. „ —भ. यशःकीर्ति । पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में ।
८६. आदित्यवारकथा—भ. यशःकीर्ति । पत्र सं. ३७५ । सरस्वती भवन, व्यावर ।
८७. आध्यात्मिक गाथा—भ. लक्ष्मीचन्द । अनुक्रमांक १३१४ । पत्र सं. ६ । १०×४ । वे. सं. १२४ । श्रीपार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।
८८. आनन्दसन्धि—विनयचन्द्रसूरि । सं. १०२० । ५७ । ले. का. वि. सं. १९५० । ला. द. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद—९ ।
८९. आनन्दतिलक (आनन्दा)—महानंद । पत्र सं. १३८-१४१ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, देहली ।
९०. „ —महानंद । वे. सं. ९६ । पत्र सं. ४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।
९१. „ —महानंद । ४३ पत्र । ६।।×४।। । १२८ वाँ पत्र मात्र । दि. जैन नया मन्दिर, देहली ।
९२. आराधनासार—देवसेन । सं. ७७३ ब । पत्र सं. १० । पूर्ण जीर्ण प्रति । सरस्वती भवन, नागौर ।
९३. „ —देवसेन । अनुक्रमांक ५४४० । गुटका सं. ५९ । ७।।×६ । र. का. सं. १०८६ । श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९४. आराधनासार—देवसेन। सं० ८३५ ब। पत्र सं. ११। आकार १०×४। स. भ. नागौर।

९५. ,, —वीर। गुटका सं. ५४। २० कडवक पृ. ३३३-३३९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९६. आराधनाप्रतिबोधसार—विमलकीर्ति। सं. २७४, क्र. सं. २४। पत्र सं. ८। आकार ९×५॥। अपूर्ण। १-२ पत्र नहीं हैं। सरस्वतीभवन, नागौर।

९७. आर्द्रकुमारविंवाहलु—देपाल कवि। सं. १२८६। १ वि. सं. १४८६। ३१ गाथाएँ। मुनिपुण्यविजय संग्रह, ला. द. भा. वि., अहमदाबाद।

[उ]

९८ उत्तरपुराण—पुष्पदन्त। अनुक्रमांक १०९। वे. सं. ११९। पत्र सं. ४७३। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९९. ,, —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ४७९। पत्र सं. ३२४ से ८३८। १२×५॥। ले. का. सं. १५५७, कार्तिक शु. १५। पूर्ण। वे. सं. ११७। बधीचंद दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

१००. ,, —पुष्पदन्त। पत्र सं. ३३९। ११॥×५। पूर्ण। ले. का. सं. १५३७। श्री महावीरजी।

१०१. ,, —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ९८२। पत्र सं. ४९३। १०॥×५। ले. का. सं. १६४१, चैत्र कृ. ११। पूर्ण। वे. सं. १५७। श्री दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

१०२. ,, —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ९८३। पत्र सं. ६-९३। १०×४॥। अपूर्ण। वे. सं. १५८। वहीं, जयपुर।

१०३. ,, —पुष्पदन्त (सटीक प्रभाचन्द्राचार्य) अनु. ११०। पत्र सं. ५७। ले. का. सं. १५७७। वे. सं. १२०। वहीं, जयपुर।

१०४. ,, —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ९८४। पत्र सं. ४२३। १२॥×५। ले. का. सं. १६१५। पूर्ण। वे. सं. १३७९। श्री दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

१०५. ,, —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ९८५। पत्र सं. ५३। ११×५ अपूर्ण एवं जीर्ण। वे. सं. (आ. प्रभाचन्द्र रचित संस्कृतटिप्पणयुक्त) १५९। तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

१०६. ,, —पुष्पदन्त (टिप्पणयुक्त)। सरस्वती भवन, बम्बई।

१०७. उत्तरपुराण (महापुराण)—पुष्पदन्त। अनुक्रमांक १९४४। पत्र सं. ५१४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९॥ × ४॥। अपूर्ण व जीर्ण। वे. सं. १०१। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

१०८. उत्तरपुराण (महापुराण)—पुष्पदन्त। पत्र सं. २८९। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, जावद (म. प्र.)।

१०९. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. २०१। ११॥ × ५॥। अपूर्ण व प्राचीन जीर्ण-शीर्ण। तेरहपंथी दि. जैन मन्दिर, दौसा।

११०. „ „ —पुष्पदन्त। (संस्कृत टिप्पण सहित)। वे. सं. ११२।६५। पत्र सं. ३३५। १२॥ × ४॥।] ले. का. सं. १५३८। कार्तिक शु.१३, रविवार। पूर्ण। श्री दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

१११. „ „ —पुष्पदन्त। वे. सं. ८३। पत्र सं. २५७। ११॥ × ४॥। पूर्ण। दि. जैन अग्रवाल बड़ा मन्दिर, फतेहपुर, शेखावाटी।

११२. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ३४९। १०॥ × ५॥। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

११३. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ३५७। ११ × ४॥। वे. सं. ४३७। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

११४. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. १२८-३००। दि. जैन मन्दिर सम्भवनाथ जी, उदयपुर।

११५. „ „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ८४६१। ले० का. सं. १२५५। ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

११६. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. २८३। ले. का. सं. १५८५। बस्ता सं. ११। श्री महावीरजी।

११७. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ३३९। ले. का. सं. १५३७। पूर्ण। बस्ता ११। श्री महावीरजी।

११८. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. २७६। ले. का. सं. १६१६। पूर्ण। बस्ता सं. ७२। श्री महावीरजी।

११९ „ „ —पुष्पदन्त। (सटिप्पण) पत्र सं. २७। अ. नं. ५८। अपूर्ण। दूसरी प्रति पत्र सं० ८७५। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

१२०. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ८७५। १०॥ × ५॥ अ. नं. ५९। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

१२१. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ३७९। वे. सं. ९७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१२२. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ४४६। श्री दि. जैन भाईजी का मन्दिर, प्रतापगढ़।

१२३. „ „ —पुष्पदन्त। पत्र सं. ११०। अपूर्ण। „ „ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२४. उत्तरपुराण (महापुराण)—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६१ । पत्र सं. ४१३ । आदिपुराण मात्र । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१२५. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६२ । पत्र सं. १०७-२७८ । बीच में कुछ पत्र नहीं हैं । १०॥ × ५ । अपूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१२६. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६३ । पत्र सं. २७१ । १०॥ × ५॥ । ले. का. सं. १५९४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१२७. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६४ । पत्र सं. २८९ । १० × ४॥ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१२८. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६५ । पत्र सं. ३९८ । १२ × ४ । ले. का. सं. १३९१ । आमेर शास्त्र-मण्डार, जयपुर ।

१२९. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ८६६ । पत्र सं. ३५० । १३ × ६ । अपूर्ण । ३५० के आगे पत्र नहीं हैं । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१३०. „ „ (संस्कृत टिप्पण सहित)—पुष्पदन्त । वे. सं. ८७१ । पत्र सं. १०६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

१३१. „ „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. २६७ । अपूर्ण । जैन साहित्य शोधसंस्थान, आगरा ।

१३२ „ „ (संस्कृत टिप्पण सहित)—पुष्पदन्त । पत्र सं. १५० । अपूर्ण व जीर्ण । जैन साहित्य शोधसंस्थान, आगरा ।

१३३. „ „ —पुष्पदन्त । पत्र सं. १०२ । ले. सं. १३५२ । जैन साहित्य शोधसंस्थान, आगरा ।

१३४. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ३४३ ब । पत्र सं. ४०३ । १२। × ५ । ले. का. सं. १६०४, कार्तिक कृ. ११ । सरस्वती भवन, नागौर ।

१३५. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ४९८ ब । पत्र सं. ३४९ । १२ × ५ । ले. का. सं. १६१०, कार्तिक शु. १२, रविवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

१३६. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ५३६ ब । पत्र सं. ३४३ । १२ × ६ । पूर्ण व जीर्ण । स. भ., नागौर ।

१३७. „ „ —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ९७१ ब । पत्र सं. ५७० । ११॥ × ५॥ । पूर्ण व जीर्ण । स. भ., नागौर ।

१३८. उपदेशकुलक—जिनदत्तसूरि । अनुक्रमांक २८० (३) । पत्र सं. ३ । ४० पद्य । जैसलमेर भण्डार ।

१३९. „ —देवसूरि । अनु. ३०२, २५ गाथा । ८ वां पत्र मात्र । जैन ज्ञान भण्डार, लींबडी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४०. उपदेशरत्नमाला—रइधू। पत्र सं. ६। १६१ गाथा। ले. का. सं. १९९०। श्री ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, ब्यावर।

१४१. उपासकाचारदोहा—लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक १५५। पत्र सं. २७। १०॥×४॥। ले. का. सं. १८२१, वैशाख कृ. १२। २२४ दोहे। पूर्ण। वे. सं. १७८। दि. जैन मन्दिर वधीचन्द जी, जयपुर।

१४२. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक ६५३। पत्र सं. २७। ११×५। ले. का. सं. १५५५, कार्तिक शु. १५। पूर्ण। वे. सं. २२३। दि. जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।

१४३. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक ६५४। पत्र सं. १४। वे. सं. २४८। दि. जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।

१४४. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक ६५५। पत्र सं. १ १। वे. सं. १७। दि. जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।

१४५. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक ६५६। पत्र सं. १५। वे. सं. २९४। दि. जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।

१४६. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनुक्रमांक ६५७। पत्र सं. ७७। वे. सं ६९५। दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

[ऋ]

१४७. ऋषभचरितस्तवन—जिनप्रभ। अनुक्रमांक १२ (३०) पत्र सं. १७९-१८२। पाटन-भण्डार।

[क]

१४८. कथाकोष—हरिषेण। अनु. ४६२४। दि. जैन. ऐ. प. स. भवन, ब्यावर।

१४९. ,, —श्रीचन्द। अनु. २४६५। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

१५०. करकंडुचरिउ—मुनि कनकामर। पत्र सं. १४-६९। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

१५१. ,, —मुनि कनकामर। वे. सं. १८८। पत्र सं. ६८। ले. का. सं. १५६३। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१५२. ,, —मुनि कनकामर। वे. सं. १८९। पत्र सं. ६२। ले. का. सं. १५८१। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१५३. ,, —मुनि कनकामर। वे. सं. १९०। पत्र सं. ६१। ले. का. सं. १६१६। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५४. करकंडुचरिउ—मुनि कनकामर। वे. सं. १९१। पत्र सं. ८३। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार। जयपुर।

१५५. „ —मुनि कनकामर। पत्र सं. ३-७७। १२×५। दि. जैन अभिनन्दननाथ मन्दिर, बूंदी।

१५६. „ —मुनि कनकामर। अनु. ज २६। पत्र सं. १४-६९। अपूर्ण व जीर्ण। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

१५७. „ —मुनि कनकामर। अनु. ४२९ ब। पत्र सं. ७६। १०॥×४। ले. का. सं. १५८३, मार्गशीर्ष शु. २। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

१५८. „ —मुनि कनकामर। अनु. ४३० ब। पत्र सं. ६२। ९॥।×४॥। अपूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

१५९. „ —मुनि कनकामर। अनु. ५३२ ब। पत्र सं. ६४। ११×५। ले. का. सं. १५२५, फाल्गुन शु. ५, रविवार, नागौर।

१६०. „ —मुनि कनकामर। अनु. ३१० ब। पत्र सं. ७५। ११×४। ले. का. सं. १६०६, मार्गशीर्ष कृ. १। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

१६१. „ —मुनि कनकामर। अनु. ४६३३। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

१६२. „ —मुनि कनकामर। अनु. २००७। पत्र सं. ६१। १०॥×५। ले. का. सं. १५९५, फाल्गुन कृ. १२। वे. सं. १०२। दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

१६३. „ —मुनि कनकामर। पत्र सं. २१८। १०॥×४॥। श्री दि. जैन मन्दिर, भानपुरा (म. प्र.)।

१६४. कल्याणकवर्णन—मनसुख। अनुक्रमांक ७६९। गुटका सं. ७९। वे. सं. १०८५। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

१६५. कल्याणकविधि—मुनि विनयचन्द। अनुक्रमांक ५६०२। पत्र सं. ७-१३। गुटका सं. २२०। पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

१६६. कषायपाथडी—अज्ञात। पत्र सं. ३५८-३५९। गुटका सं. ५४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१६७. कुमारपालदेवरास—सोमतिलक। अनु. २८४१।३९। वि. सं. १४७३। ला. द. भा. वि. अहमदाबाद।

१६८. कुमारपालप्रबन्ध—अज्ञात। पत्र सं. ८९। अनु. १६। पाटन-भण्डार।

१६९. „ —अज्ञात। पत्र सं. ७। अनु. ५१। ले. सं. १४८८। पूर्ण। विश्वेश्वरानन्द वै. रि. इं. होशियारपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७०. केशीगौतमसन्धि—रत्नशेखरसूरि। अनु. १२८६।५। वि. सं. १४८६। ला. द. भा. वि. अहमदाबाद।

१७१. " " —अज्ञात। अनु. ९०।९४४। पत्र सं. ४। ले. का. सोलहवीं शती। रा. प्रा. वि. प्र., चित्तौड़गढ़।

[क्ष]

१७२. क्षमावाणी अर्घ—गुटका सं. ६३। ६।×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

१७३. क्षमावाणी पूजा—नरेन्द्रसेन (शिष्य ब्रह्मसेन)। गु. सं. ३१। पत्र ९८ वाँ मात्र। ५॥×३॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

[ग]

१७४. गौतमस्वामीरास—विनयप्रभ उपाध्याय। अनु. ५६११। पत्र सं. ३३-३५। ४४ गाथा। २६. ६–११. २। ले. सं. १४७३। मुनिपुण्यविजयजी का संग्रह, ला. द. भा. वि., अहमदाबाद।

१७५. चउरंगसन्धि— × । ६११८ (अ)। पत्र सं. ५। गाथा ६०। ओरियंटल रि. इं., बड़ोदा।

१७६. चच्चरि-सोलण— × । अनुक्रमांक ५६(७)। गाथा ३८। पत्र सं. १००-१०३। पाटन-भण्डार।

१७७. चन्द्रप्रभचरित्र—भ० यशःकीर्ति। अनुक्रमांक २०५०। पत्र सं. १०९। १०॥×४॥। ले. का. सं. १६४१, पौष शु. ११। पूर्ण। वे. सं. ९९। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

१७८. " —भ. यशःकीर्ति। अनुक्रमांक ३१९।४७३४। पत्र सं. २९-९९। २६-११. ६। ले. का. १८ वीं शती। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़।

१७९. चन्दप्पहचरिउ—भ. यशःकीर्ति। ले. का. सं. १५३०। पं. परमानन्द जी शास्त्री के निजी संग्रह में।

१८०. " —भ. यशःकीर्ति। अनुक्रमांक २३६ ब। पत्र सं. १०२। १२×५। ले. का. सं. १५६९, माघ कृ. ११। पूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

१८१. " —भ. यशःकीर्ति। वे. सं. ३१९। पत्र सं. ११७। ले. का. सं. १५८३, आषाढ़ शु. ३। पूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८२. चन्दप्पहचरिउ —भ. यशःकीर्ति। वे. सं. ३२०। पत्र सं. १०८। ले. का. सं. १६११, चैत्र कृ. ५। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१८३. „ —भ. यशःकीर्ति। वे. सं. ३२१। पत्र सं. १२०। ले. का. सं. १६०३, श्रावण शु. १०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१८४. „ —भ. यशःकीर्ति। वे. सं. ३२२। पत्र सं. १०१। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१८५. „ —भ. यशःकीर्ति। वे. सं. ३२३। पत्र सं. ७८। अपूर्ण। कई पत्र नहीं हैं। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१८६. „ —कवि दामोदर। अनुक्रमांक ३१२, ३६७०। २ प्रतियाँ। ऐ. प. दि. जैन स. भ., ब्यावर।

१८७. „ —कवि दामोदर। अनु. ३०७३। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

१८८. „ —श्रीचन्द। वे. सं. ८९। पत्र सं. १२९। ले. का. सं. १७९३। कोटड़ियों का दि. जैन मन्दिर, डूंगरपुर।

१८९. चन्दनषष्ठीकथा—गुणभद्रमुनि। अ १३-१४। ५॥ × ५॥। ले. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

१९०. चन्दनषष्ठीव्रतकथा—लाखू। पत्र सं. ८१-८५। अ १५। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

१९१. „ —अमरकीर्ति। अनुक्रमांक २६८८ (व्रतकथासंग्रह)। वे. सं. ११०। श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

१९२. „ —लाखू। व्रतकथाकोश में संकलित। दि. जैन मन्दिर, धूलियागंज, आगरा।

१९३. चन्दायणकहा—गुणभद्रमुनि। अ १३-१४। ५॥ × ५॥। पत्र सं. ४३-४६। ले. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

१९४. चतुर्गतिचतुष्पदिका—वस्तिग। अनुक्रमांक २८४१।३०। वि. सं. १४७३। ला. द. भा. वि. अहमदाबाद।

१९५. चतुर्विंशतिजिनपूजा—कनककीर्ति। पत्र सं. ११। सरस्वती भवन, झालरा पाटन।

१९६. चारकषायवर्ण—अज्ञात। गुटका सं. ४९। पृ. ३९-४१। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

१९७. चूनड़ी—यति विनयचन्द्र। अनुक्रमांक ५६०२। गुटका सं. २२०। पत्र सं. १३-१७। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

१९८. चूनड़ीरास—भ. विनयचन्द। गु. सं. ९१। पत्र सं. १२७-१३१। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९९. चूनड़ीरास—भ. विनयचन्द । पत्र सं. ७७-८४ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

२००. ,, —भगवतीदास । गुटका सं. २६१ । बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

२०१. चैत्यपरिपाटी—जिनप्रभ । अनुक्रमांक १२(३८) । पत्र सं. २१२-२१४ । पाटन-भण्डार ।

२०२. चौरासी जातिमाला—अज्ञात । गुटका सं. ३८ । पत्र सं. ९१-९८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

[छ]

२०३. छन्दःकोश—अज्ञात । पत्र सं. ६ । सरस्वती भवन, झालरा पाटन ।

२०४. ,, —अल्हु । पत्र सं. १३ । वे. सं. ५२१ । दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

२०५. ,, —अल्हु । पत्र सं. ८ । १० × १५ । प्रारम्भिक २ पत्र नहीं हैं । अपूर्ण । श्री भ. यशःकीर्ति सरस्वती भण्डार, ऋषभदेव ।

२०६. ,, —अल्हु । वे. सं. १८६२ । ले. का. सं. १७९२, श्रावण शु. ११ । दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

२०७. ,, —रत्नशेखरसूरि । पत्र सं. ३१ । वे. सं. १९५ । दि. जैन मन्दिर संघीजी, जयपुर ।

२०८. ,, —रत्नशेखरसूरि । पत्र सं० २–२५ । अपूर्ण । वे. सं. ९७ । दि. जैन मन्दिर छोटे दीवान जी, जयपुर ।

२०९. ,, —रत्नशेखरसूरि । जोधपुर कलेक्शन, भाग १, पृ. १२९ ।

२१०. छक्कम्मोवएस (षट्कर्मोपदेश)—अमरकीर्ति । अनु. १३०७८ । पत्र सं. १३४ । ले. का. सं. १९२२ ई. । ओरियंटल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा ।

२११. छक्कम्मोवएस—अमरकीर्ति । पत्र सं. १०४ । १० × ५ । ले. का. सं. १६७२ । वड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

२१२. ,, —अमरकीर्ति । अनुक्रमांक ५२३ । पत्र सं. ८९ । १०॥ × ४॥ । ले. का. सं. १५५९ । पूर्ण । वे. सं. १५८ । श्री दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

२१३. ,, —अमरकीर्ति । पत्र सं. ८-२३ । १२ × ४ । अपूर्ण । वे. सं. ९६० । वड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

२१४. ,, —अमरकीर्ति । पत्र सं. ८१ । १२॥ × ६ । र. का. सं. १२४७ । ले. का. सं. १६०० । वड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१५. छक्कम्मोवएस—अमरकीर्ति। पत्र सं. ८६। पूर्ण। जीर्ण प्रति। सरस्वती भवन, ब्यावर।

२१६. „ —अमरकीर्ति। अनुक्रमांक ८५। १४ सन्धि। पत्र सं. १२०। ११×५। र. का. सं. १२४७, भाद्रपद शु. १०। ले. का. सं. १६४५, आसोज शु. २। पूर्ण। वे. सं. ३९८। लेखक का परिचय भी है। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

२१७. „ —अमरकीर्ति। पत्र सं. ७६। ११×५। ले. का. सं. १५८६, फाल्गुन कृ. ९। दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

२१८. „ —अमरकीर्ति। पत्र सं. १०२। ११॥×५। ले. सं. १८८४। दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

२१९. „ —अमरकीर्ति। पत्र सं. १०५। दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

२२०. „ —अमरकीर्ति। अनु, २८६१। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

[ज]

२२१. जन्माभिषेकविधि—अज्ञात। अनुक्रमांक ४०३३। ५०९। पत्र सं. ३। ले. का. १९वीं शती। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़।

२२२. जम्बूसामिचरिउ—देवदत्त। अनुक्रमांक २४८ ब। पत्र सं. ८८। ११॥×४॥। ले. का. सं. १६२७। सरस्वती भवन, नागौर।

२२३. „ —वीर। वे. सं. ३५३। पत्र सं. ७६। र. का. सं. १०७६, माघ शु. १०। ले. का. सं. १५१६, मार्गशीर्ष शु. १३। ६२वाँ पत्र नहीं है। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२२४. „ —वीर। गुटका सं. ५४। पत्र सं. १७०-१७३। केवल एक सन्धि। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२२५. „ —वीर। पत्र सं. ६६। १०×४॥। पूर्ण, अति प्राचीन। दि. जैन मन्दिर, कामा (भरतपुर)।

२२६. जम्बूस्वामीचरित्र—वीर। अनुक्रमांक ४८५। पत्र सं. ११४। १२×४॥। र. का. सं. १०७६, माघ शु. १०। ले. का. सं. १६०१, आषाढ़ शु. १३। पूर्ण। वे. सं. २२९। दि. जैन मन्दिर बधीचंद जी, जयपुर।

२२७. जसहरचरिउ—पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २१२ ब। पत्र सं. ५९। १०।-४॥। ले. का. सं. १५२३, आषाढ़ कृ. ९, भौमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२८. जसहरचरिउ—पुष्पदन्त । वे. सं. ५ । पत्र सं. ६३ । १० × ४॥, दि. जैन मन्दिर, दबलाना (बूँदी) ।

२२९. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. २७१ । पत्र सं. ६१ । १०॥ × ४ । अपूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

२३०. ,, —रइधू । ऐ. प. स. भवन, ब्यावर ।

२३१. ,, (सचित्र)—पुष्पदन्त । पत्र सं. ७९ । ले. का. सं. १७६९ । ऐ. प. ए. भ., ब्यावर ।

२३२. ,, (सचित्र)—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक १३१ ब । पत्र सं. ७६ । ११ × ४॥ । ले. का. सं. १६७०, माघ कृ. ३, रविवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

२३३. ,, सटिप्पण—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ९२० । पत्र सं. ९१ । ९॥ × ५ । ले. का. सं. १५८० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३४. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ९२१ । वे. सं. ९२२ । पत्र सं. ८६ । ९॥ × ५ । ले. का. सं. १५७५ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३५. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ९२२ । वे. सं. ९२१ । पत्र सं. ७३ । ११ × ५॥ । ले. का. सं. १६१०, भाद्रपद शु. ६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३६. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२३ । पत्र सं. ६५ । वे. सं. ९२३ । ११ × ५॥ । ले. का. सं. १६१३, आसोज शु. १२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३७. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२४ । पत्र सं. ९४ । १० × ५ । ले. का. सं. १५८०, आसोज शु. १० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३८. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२५ । पत्र सं. ८२ । ११ × ५ । ले. का. सं. १६५७, आसोज शु. ११ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२३९. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२६ । पत्र सं. ६१ । ११ × ६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२४०. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२७ । पत्र सं. ५९ । ११॥ × ५॥ । ले. का. सं. १७१५, पौष शु. १४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२४१. ,, —पुष्पदन्त । वे. सं. ९२८ । पत्र सं. ४३ । १२ × ५ । जीर्ण-शीर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

२४२. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. १४३ । ले. का. सं. १९७८ । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली ।

२४३. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. २-५२ । ले. का. सं. १५६४ । अपूर्ण । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४४. जसहरचरिउ—पुष्पदन्त । पत्र सं. ७९ । अपूर्ण व जीर्ण । अनु. २९५, ५८ । विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर ।

२४५. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. २-६० । खण्डित प्रति । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली ।

२४६. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ५४५४ । गुटका सं. ७३ । पत्र सं. १३२-१४६ । ७×६ । अपूर्ण । दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

२४७. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. ८८ । ले. का. सं. १६३३ । सरस्वती भवन, नागौर ।

२४८. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. ७२ । ११×५॥ । वे. सं. १२५५ । बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

२४९. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक २५७ ब । पत्र सं. ५५ । १२×५ । ले. का. सं. १५९०, कार्तिक कृ. २, रविवार । पूर्ण व जीर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

२५०. ,, —पुष्पदन्त । १०८ पत्र । पूर्ण । (२) दूसरी प्रति ७४ पत्र । पूर्ण । (३) तीसरी प्रति सटिप्पण । ११५ पत्र । पूर्ण । श्री महावीर जी ।

२५१. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. १४३ । ले. का. सं. १९०४ । (२) दूसरी प्रति ८३ पत्र । ले. का. सं. १८८६ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

२५२. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ९७० ब । पत्र सं. ५७ । १०॥×४। । ले. का. सं. १५८८, चैत्र शु. २, सोमवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

२५३. ,, (सचित्र)—पुष्पदन्त । अनुक्रमांक १३१ब । पत्र सं. ७६ । ११×४॥ । ले. का. सं. १६७०, माघ कृ. ३, रविवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

२५४. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक २१२ब । पत्र सं. ५९ । १०।×४॥। । ले. का. सं. १५२३, आषाढ़ कृ. ९, भौमवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

२५५. ,, —पुष्पदन्त । पत्र सं. ८९ । ११×५॥ । जीर्ण व पूर्ण । ले. का. सं. १५९१, भाद्रपद शु. ५ । श्री चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, भानपुरा (मध्य प्रदेश) ।

२५६. ,, —पुष्पदन्त । अनुक्रमांक ३३ । पत्र सं. ३६ । १०×४॥ । ले. का. सं. १९८८ । वहीं, उदयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५७. जसहरचरिउ—पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ३४। पत्र सं. ८६। प्रारम्भ के ४ पत्र नहीं हैं। ले. का. सं. १५९४। पूर्ण। दि. जैन संभवनाथ मन्दिर, उदयपुर।

२५८. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८०। पत्र सं. ८२। १०×४। ले. का. सं. १४०७, आसोज शु. १०। पूर्ण। वे. सं. २५। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

२५९. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८१। पत्र सं. १४५। ले. का. सं. १९३९। वे. सं. ५९८। दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

२६०. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८२। पत्र सं. ६०-६८। ले. का. सं. १६३०। अपूर्ण। वे. सं. २८८। छोटे दीवान जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

२६१. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक ११६२। कठवाडे संग्रह। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना।

२६२. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८३। पत्र सं. ६३। ले. का. सं. १८९७। वे. सं. २८६। वहीं, जयपुर।

२६३. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८४। पत्र सं. ८९। ले. का. सं. १६७२, मंगसिर शु. १०। वे. सं. २८६। वहीं, जयपुर।

२६४. „ —पुष्पदन्त। अनुक्रमांक २२८५। पत्र सं. ८९। वे. सं. २१२६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२६५. „ —रइधू। पत्र सं. ७९। ले. का. सं. १७६९। सरस्वती भवन, ब्यावर।

२६६. जसोधर की जयमाल—अज्ञात। पत्र सं. ४। ११×४॥। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

२६७. जिनचन्द्रसूरिविवाहलु—सहजज्ञान। अनु. ४४८८।७। पत्र सं. ३४४–३४६। ४ गाथा से ३५ गाथाएँ। ले. का. सं. १३५०। ला. द. शोध संस्थान, (मुनिपुण्यविजय-संग्रह) अहमदाबाद।

२६८. जिनजन्ममहोत्सवस्तवन—जिनप्रभ। अनुक्रमांक १२ (४८)। पत्र सं. २३६–२३९। पाटन-भण्डार।

२६९. जिनमहिमा—जिनप्रभ। अनुक्रमांक ३११ (१२)। पत्र सं. ९९–१०६। पाटन-भण्डार।

२७०. जिणयत्तकहा—लाखू। अनु. ३५०। वे. सं. ३६४। पत्र सं. १५७। १०×४। ले. का. सं. १६११, चैत्र कृ. ११, सोमवार। आमेर शास्त्र-भण्डार, (जयपुर)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७१. जिणयत्तकहा —लाखू। अनु. २१६४ व। पत्र सं. २९४। १०।।।×४।।।। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

२७२. „ —लाखू। पत्र सं. १८०। ११।।×५।।। ले. का. सं. १६०६, मार्गशीर्ष शु. ५। पूर्ण। वे. सं. २२१। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर।

२७३. „ —लाखू। अनु. ३०९ व। पत्र सं. २६१। १०।।।×४।।।। ले. का. सं. १६०७, आषाढ़ शु. ७, शुक्रवार। सरस्वती भवन, नागौर।

२७४. „ —लाखू। अनु. ३५१। पत्र सं. १५०। र. का. सं. १२७५, पौष शु. १२। वे. सं. ३६५। अपूर्ण व जीर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२७५. „ —लाखू। पत्र सं. १६४। ११×५।।। अपूर्ण व जीर्ण। दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

२७६. „ —लाखू। पत्र सं. १००–१५९। १०।।×५। अपूर्ण व जीर्ण। दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

२७७. जिनवल्लभसूरिगीतानि—पत्र सं. ४। २६.५×११.५। ले. का. १८वीं शती। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़।

२७८. जिनस्नात्रमहोत्सवस्तोत्र—×। अनु. १३८१। १० गाथाएँ। वि. सं. १३५०। ला. द. शोध-संस्थान (मुनिपुण्यविजय-संग्रह) अहमदाबाद।

२७९. जिनागमवचन—जिनप्रभ। पत्र सं. १०६-१०८। संघवी पाडा, पाटन-भण्डार।

२८०. जिनालयमननजयमाल—कनककीर्ति। २३ पद्य। पत्र ३७ वाँ मात्र। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

२८१. जिनरात्रिकथा—यशःकीर्ति। अ १४। पत्र सं. ५९–७७। ५।।×५।।। ले. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

२८२. जिनरात्रिकथा—नरसेन। अनुक्रमांक १२३ अ। १०×४। ले. का. सं. १५७२, फाल्गुन शु. १, गुरुवार। सरस्वती भवन, नागौर।

२८३. „ —नरसेन। अनु. ५६९ व। पत्र सं. १५। १०।।।×४।।। ले. का. सं. १६००। सरस्वती भवन, नागौर।

२८४. „ —नरसेन। भ. महेन्द्रकीर्ति भण्ड़ार, आमेर, (जयपुर)।

२८५. „ —नरसेन। अनु. ५४३९। गुटका सं. ५८। पत्र सं. १३–२०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२८६. जिनरात्रिविधानकथा—अमरकीर्ति। जयपुर। दूसरी प्रति गुटका में। दिल्ली।

२८७. „ —मुनि गुणभद्र। पत्र सं. २६–२९। जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८८. जीवन्धरचरित्र—रइधू। अनु. १७००। पत्र सं. १८५ । १०॥×४॥। ले. का. सं. १६५८, भाद्रपद कृ. ७। दि. जैन अग्रवाल बड़ा मन्दिर, फतेपुर, शेखावाटी।

२८९. „ —रइधू। ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

२९०. जीवाणुसट्ठिसन्धि—जिनप्रभ। अनुक्रमांक १४८ (२)। पत्र सं. ८५–९२। पाटन-भण्डार।

२९१. „ —जिनप्रभ। पत्र सं. १७६–१७९। पाटन-भण्डार।

२९२. जोगठरास—अज्ञात। गुटका सं. २६१। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

[झ]

२९३. झानप्रकाश कुलक—जिनप्रभ। अनु. ३११ (१९)। पत्र सं. १३७–१४३। पाटन-भण्डार।

[ण]

२९४. णरयउतारीविधि—मुनि बालचन्द्र। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

२९५. णरयउतारीदुद्धारसकथा—गुणभद्र (मलयकीर्तिशिष्य)। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

२९६. णवकारपाथडी—×। पत्र सं. ४१–४४। गुटका सं. ६। वे. सं. २४४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२९७. „ —×। पत्र सं. ७–९। गुटका सं. १२। वे. सं. २५०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२९८. णायकुमारचरिउ—पुष्पदन्त। अनु. ४९०। पत्र सं. ९९। ८॥×४॥। ले. का. सं. १५१७, वैशाख शु. ५। पूर्ण। वे. सं. २१२। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर।

२९९. ४९१ णायकुमारचरिउ—पुष्पदन्त। अनु. ४९१। पत्र सं. ६०। १०॥×५। ले. का. सं. १५२८ श्रावण कृष्ण १। पूर्ण। वे. सं. २३४। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर।

३००. णायकुमारचरिउ—पुष्पदन्त। अनु. १६४०। ऐ. प. दि. जैन सरस्वती भवन, ब्यावर।

३०१. „ —पुष्पदन्त। अनु. ७२ ब। पत्र सं. ५३। १०॥×४॥। ले. का. सं. १४९८, कार्तिक शु. १, सोमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

३०२. णिरदुहसत्तमीकहा—गुणभद्र (भ. मलयकीर्ति शिष्य)। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

३०३. „ —पं. साधारण। पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[त]

३०४. तपःसन्धि—सोमसुन्दर शिष्य विशालराज सूरि। ले. का. सं. १५०५। पाटन-भण्डार।

३०५. तीन चउबीसी कथा—पं. साधारण। पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में।

३०६. १४७१ त्रिकाल चौबीसी पूजा—ऋ १७ ख। पत्र सं. ७। १२×५।। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३०७. ,, —ऋ १७ ग। पत्र सं. ९। ९॥×५।। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३०८. ,, —ऋ १७ घ। पत्र सं. ९। १०।×४।। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३०९. ,, —ऋ १७ क। पत्र सं. १२। १०॥×६।। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३१०. त्रिंशत जिण चउबीसी—महणसिंह। अनु. ५६०२। पत्र सं. १–७०। पाटोदी दि. जैन शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

[द]

३११. दशलक्षण कथा—हरिचन्द। अनु. १४९। पत्र सं. १०। ११×४॥। ले. का. सं. १५२४, पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, कामा (भरतपुर)।

३१२. दशलक्षण कथा—हरिचन्द। पत्र सं. १०। ले. का. सं. १५२४। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, दीवान जी, कामा (भरतपुर)।

३१३. दशलक्षण जयमाल—रइधू। अनु. २६८३। पत्र सं. ५६–५८। दि. जैन पार्श्वनाथ, मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३१४. दशलक्षणधर्म कथा—रइधू। अनु. २१७२। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

३१५. दशलक्षण जयमाल—रइधू। ६, १२ पत्र। ले. का. सं. १८२२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३१६. ,, —रइधू। पत्र सं. १४। ११×५। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, दौसा (जयपुर)।

३१७. ,, —रइधू। पत्र सं. ८। ९॥×५। पूर्ण। वे. सं. ७। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी का, जयपुर।

३१८. ,, —रइधू। पत्र ९१ वाँ मात्र। गुटका सं. २७ (१९)। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३१९. ,, —रइधू। पत्र १९ वाँ मात्र। गुटका सं. १० । ६×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

. Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२०. दशलक्षण जयमाल —रइधू । पत्र सं. ९ । ११ × ५॥ । दि. जैन मन्दिर, दबलाना (बूंदी)।

३२१. ,, —रइधू । पत्र सं. ५ । ९॥ × ५ । दि. जैन मन्दिर, दबलाना (बूंदी)।

३२२. ,, —रइधू । पत्र सं. ४–११ । १० × ४॥ । अपूर्ण । दूनी (टोंक)।

३२३. ,, —रइधू । अनु. ३६२०, ४२९७ पत्र सं. १० । दो प्रतियाँ । दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

३२४. ,, —अज्ञात । अ २९६ । पत्र सं. १८ । १०॥। × ८ । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

३२५. ,, —रइधू । ऋ ८ क । पत्र सं. । १०॥ × ६ । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

३२६. ,, —रइधू । पं. क्र. सं. १७८६ । पत्र सं. १० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३२७. ,, —रइधू । क्र. सं. १७९१ । पत्र सं. ६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३२८. ,, —रइधू । क्र. सं. १७९४ । पत्र सं. ७ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३२९. ,, —रइधू । क्र. सं. २१९७ । पत्र सं. ७२–७८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३३०. ,, —रइधू । पत्र सं. १२ । ११ × ५ । संस्कृत टब्बा युक्त । दि. जैन मन्दिर, अभिनन्दन स्वामी, बूंदी ।

३३१. ,, —पत्र सं. १२ । ११ × ५ । संस्कृत टब्बा युक्त । दि. जैन मन्दिर, अभिनन्दन स्वामी, बूंदी ।

३३२. ,, —रइधू । पत्र सं. ५० । पत्र सं. २१८ । २ प्रतियाँ । तेरहपन्थी दि. जैन मन्दिर, बसवा ।

३३३. दशलक्षणपूजा—रइधू । गुटका सं. ६३ । ६। × ५॥ । कडवक १० । श्री दि. जैन सरस्वती भण्डार, नया मन्दिर, दिल्ली ।

३३४. दशलक्षण व्रतोद्यापन पूजा—रइधू । पत्र सं. २६ । १० प्रतियाँ । ले. का. सं. १९५२ । दि. जैन खण्डेलवाल पंचायती मन्दिर, अलवर ।

३३५. ,, ,, —रइधू । पत्र सं. २६ । ८॥ × ६॥ । ले. का. सं. १९५२ । अग्रवाल पंचायती दि. जैन मन्दिर, अलवर ।

३३६. दशलाक्षणिक जयमाल—पं. भावशर्मा । पत्र सं. ३८ । दि. जैन मन्दिर, शाहगढ़ ।

३३७. ,, ,, —पं. भावशर्मा । स्ट्रासबर्ग (जरमन) पुस्तकालय (उल्लिखित)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३३८. दानशील भावना—मुनि असगि । पत्र सं. ९ । १०×४ । प्राकृत । पूर्ण । बीसपन्थी दि. जैन मन्दिर, दौसा (जयपुर) ।

३३९. दीतवार कथा—गुटका सं. ५८, पत्र सं. ७०–७८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३४०. दुधारसविधानकथा—मुनि विनयचन्द । अनु. २६८८ । १२।×४॥ । ले. का. सं. १५१९ । वे. सं. ११० । पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

३४१. ,, ,, —मुनि विनयचन्द । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

३४२. ,, ,, —पं. साधारण । पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में ।

३४३. दोहा पाहुड (बारक्खरी दोहा)—महीचन्द । पत्र सं. १९ । ले. का. सं. १६०२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर । वेष्टन सं. ४९९ ।

३४४. दोहा पाहुड—रामसिंह । अनु. ७६७ । पत्र सं. २० । ११×४ । र. का. दसवीं शताब्दी । अपूर्ण । ६-१९ पत्र नहीं हैं । वे. सं. २०६२ । पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

३४५. दोहा पाहुड—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. २७९-८७ । गुटका सं. ५४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३४६. ,, —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १३-२२ । गुटका सं. ९७ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

३४७. ,, —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. ६८ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

३४८. दोहा मातृका—× । ५८ पद्य । पाटन-भण्डार ।

३४९. दोहा शतक—योगीन्द्रदेव । अनु. ११६ । पत्र सं. ९ । ९॥×४ । ले. का. सं. १८२७, कार्तिक कृष्ण १३ । पूर्ण । वे. सं. १२० । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

३५०. द्वादशानुप्रेक्षा—लक्ष्मीचन्द । पत्र सं. ६३-६६ । गु. सं. ५८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३५१. ,, —लक्ष्मीचन्द । पत्र सं. १६-१८ । गु. सं. ५ । वे. सं. २४३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३५२. ,, —लक्ष्मीचन्द । पत्र सं. ६७-७० । गु. सं. १२ । वे. सं. २५० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३५३. ,, —योगदेव । पत्र सं. १५५-१५९ । गु. सं. ३८ । श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

[ध]

३५४. धन्यकुमारचरित—× । अनु. ३३९ ब । पत्र सं. २१ । १०।×४। । पूर्ण । जीर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५५. धन्यकुमारचरित—रइधू । पत्र सं. ५१ । ले. का. सं. १६३६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३५६. धर्मरसायन—पद्मनन्दि । पत्र सं. ९ । ले. का. सं. १९०० । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

३५७. धम्मरसायण—पद्मनन्दि मुनि । अनु. ८२९ ब । प्राकृत । पत्र सं. १० । ११। × ५ । पूर्ण । जीर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

३५८. धर्म रसायण—पद्मनन्दि । पत्र सं. १५ व ११ । सरस्वती भण्डार, झालरा,पाटन ।

३५९. धम्मरसायण—पद्मनन्दि मुनि । अनु. ५०१ ब । प्राकृत । पत्र सं. १५ । १०॥ × ४ । पूर्ण । जीर्ण । सरस्वती भण्डार, नागौर ।

३६०. धम्मरसायण—पद्मनन्दि मुनि । अनु. १२१ ब । प्राकृत । पत्र सं. १३ । ११ × ४।।। । ले. का. सं. १६५६, चैत्र शुक्ल २ । पूर्ण । सरस्वती भण्डार, नागौर ।

३६१. धर्म परीक्षा—हरिषेण । क्र. सं. ५७ । पत्र सं. २-७९ । ११॥ × ४।।। । र. का. वि. सं. १०४४ । अपूर्ण । वेष्टन सं. १७१ । प्रथम पत्र नहीं है । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

३६२. धर्म परीक्षा—श्रुतकीर्ति । र. का. सं. १५५३ । अपूर्ण उपलब्ध । डॉ. हीरालाल जी जैन के संग्रह में ।

३६३. ,, —हरिषेण । पत्र सं. ७६ । वेष्टन सं. ५२५ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

३६४. ,, —हरिषेण । भण्डारकर ६, सं. १००९ । भण्डारकर ओ. रि. इं., पूना ।

३६५. धर्म रहस्य—नेमितिलक । अनु. १२८२ । काव्य १६ । ले. का. सं. १२८८ । पत्र सं. १५९-६० । जैन ज्ञान भण्डार, लींबड़ी ।

३६६. धर्म पंचविंशतिका—ब्रह्मचारी जिनदास । पत्र सं. ३ । ११ × ५।।। । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

३६७. धर्माधर्म विचारकुलक—जिनप्रभसूरि । अनु. १२ (५) । पत्र सं. ९४–९६ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

३६८. ,, —जिनप्रभसूरि । ६११९ (ब) । पत्र सं. २ । गा. २० । ले. का. १९१६ ई. । ओरियंटल इन्सीट्यूट, बड़ौदा ।

३६९. धर्मोपदेश—अमरकीर्ति । अनु. २७२ ब । पत्र सं. ७० । ११॥ × ५।।। । ले. का. सं. १५९६, पौष कृष्ण ६, सोमवार । पूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

[न]

३७०. नन्दीय छन्द—नन्दिताढ्य । पत्र सं. ८ । ले. का. सं १५३८ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७१. नन्दीश्वर जयमाल—×। क्र. सं. १७७६। पत्र सं. २। ले. का. सं. १७७६। पूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७२. नन्दीश्वर पूजा—×। गुटका सं. २३ (२)। पत्र ७० वाँ मात्र। ७॥×६। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

३७३. नन्दीश्वरदीप पूजा—कनककीर्ति। पत्र सं. ७। वेष्टन सं. ५४६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७४. नन्दीश्वर भक्ति—×। पत्र सं. १०५। गुटका संख्या १९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७५. नन्दीश्वर भक्ति—×। क्र. सं. २५३। वेष्टन संख्या २५७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७६. नन्दीश्वर चतुर्दिगाश्रितपूजा—×। पत्र संख्या ६। ले. का. सं १८३९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७७. नवकार पाथडी। पत्र सं. ३७१-७२। गुटका संख्या ५४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३७८. नर्मदासुन्दरी सन्धि—जिनप्रभ। अनु. ३११ (१०)। र. का. सं. १३२८। पत्र सं. ९९-१०६। पाटन-भण्डार, पाटन।

३७९. नागकुमारचरित्र—पुष्पदन्त। पत्र सं. ३-४८। १०॥×४॥। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

३८०. नागकुमारचरित्र—पुष्पदन्त। पत्र सं. ६६। ले. का. सं. १५६४। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर)।

३८१. ,, —पुष्पदन्त। पत्र सं. ७१। १०॥×४॥। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३८२. ,, —पुष्पदन्त। पत्र सं. ७०। १०॥×५॥ ले. का. सं. १६१२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३८३. ,, —पुष्पदन्त। पत्र सं. ५३। क्र० सं० ७२ ब। १०॥×४॥। ले. का. सं. १३६४। कार्तिक शुक्ल १, सोमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

३८४. नागकुमारचरित्र—माणिकराज। पत्र सं० १२४। १०×४॥। ले. का. सं. १५९२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३८५. ,, —माणिकराज। र. का. सं. १५७८। भ. महेन्द्रकीर्ति भण्डार, आमेर।

३८६. निर्झरपंचमीविधान—भ. विनयचन्द। गु. सं ९१। पत्र सं. ११६-१२१। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८७. निझंर पंचमी विधानकथा—भ. विनयचन्द। दि. जैन पार्श्वनाथ शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३८८. ,, —अज्ञात। पत्र सं. ३। ११×५॥। दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर)।

३८९. ,, —पं. साधारण। पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में।

३९०. निझंर पंचमीकथा—भ. विनयचन्द। अ १३–१४। ५॥×५॥। ले. का. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

३९१. निरदुखसप्तमीकथा—मुनि बालचन्द्र। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

३९२. निर्वाणपूजा—उदयकीर्ति। गुटका सं ६३। ६।×२॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

३९३. नेमिजिनवर प्रबन्ध—लावण्य समय। पत्र सं. १७। ७×५। र.का.सं. १५४६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

३९४. नेमिनाथ कुमार राजीमतीचरित—माणिक्य सुन्दर। अनु. ७७५०। ले. का. सं. १७५९। लाल जी भाई दलपत भाई शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

३९५. नेमिनाथचरित्र—लक्ष्मणदेव। अनु. ४६३ अ क्रम सं. १९६। पत्र सं. ५८। १०॥×४॥। ले. का. सं. १५२९, श्रावण कृष्ण ११। सरस्वती भवन, नागौर।

३९६. नेमिनाथचरित—अमरकीर्ति। र. का सं. १२४४। भट्टारकीय भण्डार, सोनागिरि।

३९७. नेमिनाथचरित—पत्र सं. १०६। १०×५। अपूर्ण। वेष्टन सं. १५। दि. जैन मन्दिर, दबलाना (बूंदी)

३९८. नेमिनाथचरित—कवि दामोदर। सरस्वती भवन, नागौर।

३९९. नेमिनाथचरित्र—लखमदेव। अ ११। १०।×४॥। पत्र सं. ५२। ले. का. सं. १५९७, अगहन सुदी १०, भौमवार। ४५वाँ पत्र नहीं है। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४००. नेमिनाथचरिउ—× । अनु. ३२ ब। पत्र सं. ५१। १०।॥×४॥। ले. का. सं. १५७४, पौष कृष्ण ३। सरस्वती भवन, नागौर।

४०१. नेमिनाथचरित्र—पं. लक्ष्मणदेव। अनु. ४६४अ, क्र. १९५। पत्र सं. ६१। ९×४॥। ले. का. सं. १५११, वैशाख कृष्ण १३, रविवार। पूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

४०२. नेमिनाथचरिउ—लक्ष्मणसेन। अनु. ५३३ ब, पत्र सं. ३८। ११×४॥। पूर्ण। जीर्ण। ले. का. सं. १४९८। सरस्वती भवन, नागौर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०३. नेमिनाथचरित्र—हरिभद्रसूरि । क्रम सं. १०९४ । १००२२ । २९.९ × १९.५ । ले. का. सं. १६५० । आचार्य विजयदेव और शान्तिसूरि संग्रह । लाल जी भाई दलपत भाई भारतीय विद्या संस्कृति मन्दिर शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

४०४. नेमिरास—जिनप्रभ । अनु. १२ (३१) । पत्र सं. १८२–१८७ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

४०५. नेमीश्वर जयमाल—भण्डारी नेमचन्द । पत्र सं. १५ । गुटका सं. २५ । क्र. सं. ७१४ । श्री दि. जैन मन्दिर, बधीचन्द जी, जयपुर ।

४०६. पंचमोकहा—धनपाल । पत्र सं० १२२ । ११॥ × ३॥ । र. का. सं. १३९३ । ले. का. सं. १४८० । पूर्ण । अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोतीकटरा, आगरा ।

४०७. पंचमीकथा—धनपाल । अनु. २३२ ब । पत्र सं० ९९ । १०। × ४।।। । ले. का. सं. १५७७, भाद्रपद शु. २, सरस्वती भवन, नागौर ।

४०८. पंचमेरुजयमाल— × । गुटका सं. २५ । पत्र १३२वाँ मात्र । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

४०९. पंचविंशति क्रियावचूरि—अज्ञात । पत्र सं० ७ । ८॥ × ३।।। । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४१०. पउमचरिउ—स्वयंभू । पत्र सं. २२६ । ११॥ × ४॥ । अपूर्ण । १९२४, ३४, १६४-१७२, १८९-१९२ पत्र नहीं हैं । ले. का. सं. १५२१ । भण्डारकर ओरि. रि. इं., पूना ।

४११. पउमचरिउ—स्वयंभू । पत्र सं. ३५८ । १२ × ५.५ । अपूर्ण । १४९, १५०वाँ पत्र नहीं हैं । ले. का. सं. १७७५ । दि. जैन मन्दिर गोदी का, सांगानेर, जयपुर ।

४१२. पउमचरिउ—स्वयंभू । पत्र सं. ३५७ । ११।।। × ४। । पूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४१३. पउमचरिउ—रइधू । ले. का. सं. १६५५ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

४१४. पउमसिरीचरिय—धाहिल । अनु. ३०७ (४) । पत्र सं. १५३ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

४१५. पज्जुण्णचरिय—सिंहकवि । ले.का. सं. १५७७ । आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

४१६. ,, —सिंहकवि । ले. का. सं. १५१७ । फरुंख नगर ।

४१७. पज्जुण्णकहा—सिंहकवि । पत्र सं. ९४ । १३ × ४ । वे. सं. १२ । अपूर्ण । श्री दि. जैन नेमिनाथ मन्दिर, बूंदी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१८. पज्जुण्णकहा—सिंहकवि । पत्र सं. १३९ । १० × ४॥ । लें. का. सं. १५४८ । वे. सं. ७८ । दि. जैन मन्दिर, लश्कर का, जयपुर ।

४१९. „ —सिंहकवि । पत्र सं. १६० । ११ × ५॥ । श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

४२०. पद्मपुराण—पं. रइधू । पत्र सं. ९० । १०॥ × ५ । ले. का. सं. १५५१ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

४२१. पद्मावती चउपई—जिनप्रभसूरि । अनु. ८६०१।३० । ले. का. सं. १५५० । लाल जी भाई द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

४२२. परमहंसबोधचरिउ—अज्ञात । पत्र सं. २६ । प्राकृत । १०॥ × ४॥ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर, बोरसली (कोटा) ।

४२३. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. २० । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर, शाहगढ़ (सागर) ।

४२४. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । अनु. ६३०।९९६६ । संस्कृत टीका ब्रह्मदेव सहित । २७.७ × ११.२ । अच्छी दशा । ले. का. सं. १९५० । १६३; ११; ३४ । आ. विजयदेवसूरि और शान्तिसूरि संग्रह, ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

४२५. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५।१८१ पत्र । ९ × ५॥। । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर)

४२६. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १२३ । १० × ४॥ । ले. का. सं. १५२८ । अपूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

४२७. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १७९ । ११॥ × ३॥ । अपूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

४२८. परमात्मप्रकाश सटिप्पण—योगीन्द्रदेव । टीकाकार—अमरचन्द दीवान । पत्र सं. ८८ । ले. का. सं. १८८५ । धर्मपुरा दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

४२९. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १६४ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर, जावद (मध्य प्रदेश) ।

४३०. „ —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १८ । ले. का. सं. १८०० । धर्मपुरा दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

४३१. „ —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १६ । धर्मपुरा दि. जैन नया मन्दिर, शास्त्र-भण्डार, दिल्ली ।

४३२. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव । क्र. सं. ५६६० । गुटका सं. २७८ । पत्र सं. १-८० । ६ × ४ । अपूर्ण । पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३३. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १६। ले. का. सं. १८९५। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४३४. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४३५. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. ३२। ले. का. सं. १७४५। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४३६ ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं० १५। ११॥×५॥। दि. जैन मन्दिर आदिनाथ, बूंदी।

४३७. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०। कूचा सेठ दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४३८. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०। कूचा सेठ दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४३९. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ५९५७। गुटका सं. १०। पत्र सं. १-१९। ८×७। अपूर्ण। पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४४०. ,, —योगीन्द्रदेव। अनु. १०७३। पत्र सं. ६५। ले. का. सं. १८९१। दि. जैन सरस्वती भण्डार, झालरापाटन।

४४१. परमात्मप्रकाश—ब्रह्मदेव। पत्र सं. १५। ले. का. सं. १७७३। सरस्वती भवन, ब्यावर।

४४२. ,, —ब्रह्मदेव। पत्र सं. १८१। ले. का. सं. १७३७। (४२०० श्लोक प्रमाण) दि. जैन स. भ., ब्यावर।

४४३. ,, —ब्रह्मदेव। पत्र सं. २३। ९।×४॥। ले. का. सं. १८२८। वे. सं. २२। दि. जैन लश्कर मन्दिर, जयपुर।

४४४. ,, —ब्रह्मदेव। पत्र सं. २३। ९॥।×४॥। ले. का. सं. १८२८। दि. जैन शास्त्र-भण्डार लश्कर, वोरडी का रास्ता, जयपुर।

४४५. परमेष्ठिप्रकाश सार—श्रुतकीर्ति। पत्र सं. १८८। ९॥×४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४४६. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २६५। पत्र सं. २५१। १०॥×४॥। पूर्ण। वेष्टन सं. ७९५। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द, जयपुर।

४४७. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २६६। पत्र सं. २४०। ११×५। वे. सं. ७९६। दि. जैन मन्दिर बधीचन्द, जयपुर।

४४८. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २६७। पत्र सं. २१९। १०॥×५। ले. का. सं. १८६२। पूर्ण। वे. सं. ७९७। दि. जैन मन्दिर बधीचंद, जयपुर।

४४९. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २६७। पत्र सं. १७६। ११॥×५॥। पूर्ण। वे. सं. २०३। सं. टीका युक्त। ४ प्रतियाँ और भी हैं। दि. जैन मन्दिर बधीचंद, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५०. परमात्मप्रकाश —योगीन्द्रदेव। अनु. ३४५ ब। पत्र सं. २००। १२×५। ले. का. सं. १६७०, ज्येष्ठ शुक्ला ५, शुक्रवार। दि. जैन शास्त्र-भण्डार, नागौर।

४५१. ,, —योगीन्द्रदेव। टीकाकार पाण्डवराम। अनु. ब २। पत्र सं. १६८। १२×५॥। संस्कृत टीका युक्त। ले. का. सं. १५७९। सरस्वती भवन, नागौर।

४५२. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०। ११×४॥। वे. सं. ६५। दि. जैन मन्दिर अभिनन्दनस्वामी, बूँदी।

४५३. ,, —योगीन्द्रदेव। अनु. ११६ ब। पत्र सं. २९२। ११×३॥। संस्कृत टीका सहित। पूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

४५४. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २१। श्री दि. जैन मन्दिर, भानुपुरा (म. प्र.)।

४५५. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २६९-७९। गुटका सं. ५४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४५६. ,, —योगीन्द्रदेव। टीकाकार ब्र. रायमल्ल। १२४-१४९। गुटका सं. १९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४५७. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ७४१। बधीचंद दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर।

४५८. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ८७०। पत्र सं. ५ से १४। ११॥×५। ले. का. सं. १५६७, चैत्रकृष्ण १०। अपूर्ण। वे. सं. ११६९। दि. जैन बधीचन्द मन्दिर, जयपुर।

४५९. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ७०६। गुटका सं. १७। ९×६। वे. सं. ६३६। दि. जैन बधीचन्द मन्दिर, जयपुर।

४६०. ,, —योगीन्द्रदेव। अनु. ३२१२।१५१। पत्र सं. २-७। अपूर्ण। ले. का. सं. १७९०। छठा पत्र नहीं है। दूसरा फटा हुआ है। राजस्थान प्रा. वि. प्र., चित्तौड़गढ़।

४६१. ,, —योगीन्द्रदेव। अनु. ४४३। ताड़पत्रीय प्रति। पत्र सं. १०। जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

४६२. ,, वृत्ति सहित—योगीन्द्रदेव। अनु. ४४४। ताड़पत्रीय प्रति। पत्र सं. २६। जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

४६३. ,, वृत्ति सहित—योगीन्द्रदेव। अनु. ४४५। पत्र सं. १६। ताड़पत्रीय प्रति। जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

४६४. ,, वृत्ति सहित—योगीन्द्रदेव। अनु. १७०। हस्तलिखित कागज प्रति। पत्र सं. ३०। ले. का. सं. १८२९। जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६५. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव। अनु. ६१२०। पत्र सं. १९। ३८० गाथा। ओरियंटल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा।

४६६. ,, —योगीन्द्रदेव। ई १२ क। पत्र सं. ८८। ११॥×५।। ले. का. सं. १८८४, द्वि. आषाढ कृ. १०, सोमवार। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

४६७. ,, —योगीन्द्रदेव। १९० पत्र। ११×४॥। त्रुटित। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

४६८. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १७। १०×४॥। अपूर्ण। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

४६९. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. ४३। १२॥।×६॥। ले. का. सं. १८२६, आषाढ शु. ६, रविवार। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

४७०. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २४२। ६।×८। पूर्ण। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

४७१. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २८। अपूर्ण। श्री दि. जैन मन्दिर, नाई की मण्डी, आगरा।

४७२. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १७९। दि. जैन भाई जी का मन्दिर, प्रतापगढ़।

४७३. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २१६। दि. जैन भाई जी का मन्दिर, प्रतापगढ़।

४७४. ,, —योगीन्द्रदेव। सटीक। पत्र सं. २२३। दि. जैन भाई जी का मन्दिर, प्रतापगढ़।

४७५. परमात्मप्रकाश सटीक—योगीन्द्रदेव। अनु. ३५८ अ। क्र. सं. २१६। पत्र सं. २०१। १०॥।×४॥।। ले. का. सं. १४६४, कार्तिक शु. १३, शुक्रवार। सरस्वती भवन, नागौर।

४७६. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव। अनु. एच २५ विवरण हस्तलिखित, नागर लिपि। ओरियंटल लाइब्रेरी, एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, कलकत्ता।

४७७. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ५७२९। पत्र सं. १-१०९। गुटका सं. २। वे. सं. १४१। ६×६।। पाटोदी दि. जैन मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४७८. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ११८। पत्र सं. २०। ११॥×५।। ले. का. सं. १७७४, फाल्गुन कृ. ११। पूर्ण। वे. सं. २५०। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७९. परमात्मप्रकाश—योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १२३। ११×४॥। ले. का. सं. १४८९, पौष कृ. ६। पूर्ण। वे. सं. २४९। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४८०. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०७। ले. का. सं. १९००। सरस्वती भवन, ब्यावर।

४८१. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २०५। ले. का. सं. १९००। सरस्वती भवन, ब्यावर।

४८२. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १७४। ले. का. सं. १७५९। सरस्वती भवन, ब्यावर।

४८३. ,, —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. ४। १३॥×६। अपूर्ण। वे.सं. १२४। दि. जैन मन्दिर लश्कर का, जयपुर।

४८४. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र.सं. १४१७। पत्र सं. १३-१४४। १०×५॥। ले. का. सं. १७९९, आसोज सुदि २। अपूर्ण। वे. सं. २०८३। दि. जैन पाटोदी मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४८५. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४१८। पत्र सं. ९७। ले. का. सं. १९३५। वे. सं. ४४५। बाबा दुलीचन्द का शास्त्र भण्डार, दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

४८६. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४१९। पत्र सं. ७९। संस्कृत-टीका सहित। ले. का. सं. १९०४, श्रावण कृ. १३। वे. सं. ५७। दि. जैन मन्दिर बैराठियों का, जयपुर।

४८७. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४२०। पत्र सं. १५। वे. सं. ४३४। अपूर्ण। संघी जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४८८. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४२१। पत्र सं. २-१५। अपूर्ण। वे. सं. ४३५। संघी जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४८९. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४२२ (६)। पत्र सं. २५। संस्कृत टब्बा सहित। वे. सं. २०९। छोटे दीवान जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४९०. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४२३ (७)। पत्र सं. १९। अपूर्ण। वे. सं. २१०। छोटे दीवान जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४९१. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १४२४ (८)। पत्र सं. २४। ले. का. सं. १८३०। वे. सं. ८२। पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४९२. परमात्मप्रकाश— योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ९७ ब। पत्र सं. १८१। १२×५। संस्कृत-टीका सहित। ले. का. सं. १६९१, आश्विन शु. ६, सरस्वती भवन, नागौर।

४९३. " —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २१७, २-अ। पत्र सं. १३२। १०×४।। ले. का. सं. १४४०, आश्विन कृ. ७ बुधवार। सरस्वती भवन नागौर।

४९४. " —योगीन्द्रदेव। संस्कृत टीका पाण्डवराम सहित। पत्र सं. १६८। १२×५।। । ले. का. सं. १५७९, माघ कृ. ५, सोमवार। अति जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

४९५. परमात्मप्रकाशविवरणम्—योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २२८। क्र. सं. ८१३। कठवाटे का संग्रह। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना।

४९६. पाखवैकथा—गुणभद्र मुनि। अ १३-१४। ५।।×५।।। पत्र सं. ३८ तक। ले. का. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

४९७. पाण्डवपुराण—भ. यशःकीर्ति। पत्र सं. ४७५। १०×४।।। ले. का. सं. १६०२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

४९८. " —भ. यशःकीर्ति। क्र. सं. १९१०। पत्र सं. ३४०। १०।।×४।।। अपूर्ण। वे. सं. ९६। पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४९९. " —भ. यशःकीर्ति। पत्र सं. ४७१। ११×५। ले. का. सं. १६१६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५००. " —भ. यशःकीर्ति। क्र. सं. २९७५। पत्र सं. २०-११०, २०५-२४९। १२×५। वे. सं. २६। अपूर्ण। दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

५०१. " —भ. यशःकीर्ति। र. का. सं. १४९७। ले. का. सं. १६१२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५०२. " —भ. यशःकीर्ति। पत्र. सं. २४७। अ ३ ख। १२।×५।।। ले. का. सं. १५९४, मार्गशीर्ष कृ. १४, गुरुवार। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

५०३. " —भ. यशःकीर्ति। अ ३ क। पत्र सं. ३३२। ले. का. सं. १६६१। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

५०४. " —भ. यशःकीर्ति। अनु. ४२११। पत्र सं. १६६। ले. का. सं. १९९३। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

५०५. " —भ. यशःकीर्ति। अनु. १८९२। दि. जैन ऐ. प. स. भवन, ब्यावर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०६. पाण्डवपुराण--भ. यशःकीर्ति। पत्र सं. ३३२। १२×५॥। अनु. अ ३ क। अन्तिम पृष्ठ नहीं है। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

५०७. पार्श्वपुराण--पद्मकीर्ति। पत्र सं. १०८। १०×४॥। वे. सं. १७७। ले. का. सं. १५७४। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा।

५०८. ,, --पद्मकीर्ति। क्र. सं. २४७ ब। पत्र सं. ११२। ११×५॥। ले. का. सं. १६५१, आषाढ कृ. १२। सरस्वती भवन, नागौर।

५०९. ,, --पद्मकीर्ति। पत्र सं. १०८। १०×४। ले. का. सं १४९४। आमेर-शास्त्र भण्डार, जयपुर।

५१०. ,, --पद्मकीर्ति। १०॥×५। ले. का. सं. १६१०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५११. ,, --पद्मकीर्ति। अनु. २६१४। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

५१२. ,, --रइधू। अनु. ३००७। पत्र सं. ८१। ११॥।×५। ले. का. सं. १७४३, माघ कृ. ३। पूर्ण। वे. सं. २८७। दि. जैन मन्दिर, बोर सली, कोटा।

५१३. ,, --रइधू। अनु. २३४४। ऐ. पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, ब्यावर।

५१४. ,, --रइधू। अनु. ३५१०। पत्र सं. ३०। ले. का. सं. १९९२। सरस्वती भवन, ब्यावर।

५१५. ,, --रइधू। पत्र सं. ८-७९। अपूर्ण। क्र. सं. २१८९। १०॥× ५। वे. सं. २१२७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५१६. ,, --रइधू। पत्र सं. १-६। ९॥×५॥। त्रुटित व अपूर्ण। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

५१७. पार्श्वनाथचरित्र--तेजपाल। पत्र सं. १०१। १०×५। र. का. सं. १५१६। वे. सं. ३५४। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

५१८. पार्श्वनाथचरित्र--तेजपाल। क्र. सं. २१७९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५१९. ,, --विबुध श्रीधर। पत्र सं. ९९। ९॥×४। र.का. सं. ११८९। ले. का. सं. १५७७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५२०. ,, --विबुध श्रीधर। पत्र सं. ९८। ९॥-४। पूर्ण। त्रुटित। ६२ वां पत्र नहीं है। अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोतीकटरा, आगरा।

५२१. ,, --बुह असवाल। ११×५॥। पत्र सं. १५०। अपूर्ण। पत्र सं. ९१-९७ तक नहीं है। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोतीकटरा, आगरा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५२२. पासणाहचरिउ—कवि देवचन्द । ले. का. सं. १५४९ । पं. परमानन्द जी जैन शास्त्री के निजी संग्रह में ।

५२३. पासपुराण—कवि देवचंद । अनु. ३२६ ब । पत्र सं. ६७ । १२॥×५॥। । ले. का. सं. १५२०, चैत्र शु. १२ । पूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

५२४. पाहुडदोहा—योगीन्द्रदेव । पत्र सं. ८ । ८॥×४॥ । पूर्ण । वे. सं. ९ । दि. जैन बीसपन्थी मन्दिर, दौसा ।

५२५. पिंगलशास्त्र—नागराज । प्राकृत । पत्र सं. ११ । १०॥×४॥ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर अभिनन्दनस्वामी, बूंदी ।

५२६. पुष्पांजलिविधान—पत्र सं. ८ । दि. जैन सरस्वती भवन, झालरापाटन (राजस्थान) ।

५२७. पुष्पांजलिविधानकथा—पं. हरिचन्द । क्र. सं. २६८८ । श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५२८. पुण्णासवकहाकोसु—रइधू । अनु. २८७३ । २ प्रतियाँ हैं । दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

५२९. पुण्णासवसत्थ—पं. रइधू । पत्र सं. ३-८१ । १०॥×५ अपूर्ण । जीर्ण । दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा ।

५३०. पुरन्दरविधानकथा—अ १३-१४ । ५॥×५॥ । ले. का. सं. १६०२, श्रावण शु. ११ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

५३१. पोसहरास—गुटका सं. ४८ । सं. ९२-९६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५३२. प्रद्युम्नचरित्र—कवि सिंह । क्रम सं. २६१ । पत्र सं. १४३ । ११×४॥ । ले. का. सं. १५९८, चैत्र शु. ३ । पूर्ण । वे. सं. १८१ । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

५३३. ,, —कवि सिंह । पत्र सं. ९५ । ११×४॥ । ले. का. सं. १५१८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५३४. ,, —कवि सिंह । क्र. सं. २२१३ । पत्र सं. ४-८९ । १०॥।×४॥ । अपूर्ण । वे. सं. २००४ । पाटोदी दि. जैन मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५३५. ,, —कवि सिंह । पत्र सं. १०७ । १०॥×५ । ले.का.सं. १५४१ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५३६. ,, —कवि सिंह । पत्र सं. १०५ । १०×४ । ले. का. सं. १६७३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५३७. ,, —कवि सिंह । पत्र सं. १०२ । १०×६ । ले. का. सं. १५५३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३८. प्रद्युम्नचरित्र--कवि सिंह। पत्र सं. १३४। ११×४॥। ले. का. सं. १५६८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५३९. ,, --कवि सिंह। पत्र सं. १७१। ११×४॥। ले. का. सं. १५९५। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५४०. ,, --कवि सिंह। क्र. सं. २४१ ब। पत्र सं. १५४। १०॥×४॥ ले. का. सं. १५७६, वैशाख कृ. १, शुक्रवार। पूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

५४१. ,, --कवि सिंह। क्र. सं. २४२ ब। पत्र सं. १२७। ११×५। पूर्ण। जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

५४२. ,, --कवि सिंह। क्र. सं. ४७७ ब। पत्र सं. ९७। १०॥×५।॥। ले. का. सं. १५९६, फाल्गुन शु १०, मंगलवार। पूर्ण सरस्वती भवन, नागौर।

५४३. ,, --कवि सिंह। क्र. सं. ५०२ ब। पत्र सं. १३२। १०।×४॥। ले. का. सं. १६३८, फाल्गुन कृ. २, शुक्रवार। सरस्वती भवन, नागौर।

५४४. ,, --कवि सिंह। पत्र सं. १२४। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

५४५. ,, --कवि सिंह। अनु. ३५१। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

५४६. प्रबोधसार--यशःकीर्ति। अनु. १४९७। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

५४७. प्रबोधसार--सिंह कवि। पत्र सं. १२४। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

५४८. प्राकृतछन्दकोष-- ×। पत्र सं. ११।१०। ×४॥। ले. का. सं. १६५४, माघ कृ. १। पत्र १ नहीं है। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

५४९. ,, -- ×। पत्र सं. ७। १०।×४॥। ले. का. सं. १६७१, फाल्गुन शु. १०, बुधवार। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

५५०. प्राकृतदीपिका-- ×। पत्र सं. १४-३०। १०॥×४।। अपूर्ण। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

५५१. प्राकृतव्याकरण--समन्तभद्र। १२०० श्लोकप्रमाण। रॉयल एशियाटिक सोसायटी रिपोर्ट, कलकत्ता, बंगाल।

५५२ ,, -- ×। १०॥×४।॥। पत्र सं. १३। अपूर्ण। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[ब]

५५३. बाहुबलिदेवचरिउ—धनपाल । क्रम सं. ५०० । पत्र सं. २९७ । ११॥×४॥ । र. का. १४५४, वैशाख शु. १३ । ले. का. सं. १६०२, आषाढ़ शु. ५ । पूर्ण । वे. सं. २५२ । श्री दि. जैन बधीचन्द जी का मन्दिर, जयपुर ।

५५४. बाहुबलिदेवचरिउ—कवि धनपाल । ले. का. सं. १५८६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५५५. ,, —कवि धनपाल । पत्र सं. २-१५९ । ले. का. सं. १५८२ । प्रथम पत्र नहीं है । सरस्वती भवन, झालरापाटन ।

५५६. ,, —कवि धनपाल । पत्र सं. २७० । ले. का. सं. १४८६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५५७. ,, —कवि धनपाल । पत्र सं. २३७ । १३७ वाँ पत्र नहीं है । ले. का. सं. १५८४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५५८. ,, —कवि धनपाल । पत्र सं. १९५ । ले. का. सं. १५८२ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

५५९. ,, —कवि धनपाल । पत्र सं. ५७ । ११॥×५॥ । ले. का. ऐ. १८०० के लगभग । अपूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

५६०. बाहुबलिपाथडो—अज्ञात । सरस्वती भवन, नागौर ।

५६१. बलभद्रपुराण—रइधू । क्र. सं ७५९ । पत्र सं. १७२ । ७×४ । ले. का. सं. १६५६, मंगसिर कृ. ११ । वे. सं. ७४० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५६२. ,, —रइधू । क्र. सं. ३०६ । पत्र सं. १५५ । १२×४॥ । ले. का. सं. १७३२, फाल्गुन कृ. १४ । पूर्ण । वे. सं. १६९ । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

५६३. ,, —रइधू । पत्र सं. १६-१६१ । ले. का. सं. १५४९ । अपूर्ण । धर्मपुरा दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

५६४. बाहुबलिचरित्र—धनपाल । क्र. सं. ७६५ । पत्र सं. २७० । ले. का. सं. १५८६, वैशाख शु. ७ । वे. सं. ७८२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५६५. ,, —धनपाल । क्र. सं. ७६६ । पत्र सं. १३८-२३७ । ले. का. सं. १५८४, आसोज कृ. ९ । वे. सं. ७८३ । अपूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५६६. ,, —धनपाल । र. का. सं. १४५४ । ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६७. **बीसतीर्थंकरपूजा**—× । गु. सं. १९ (१७) । पत्र ४९वाँ मात्र । ७॥×६ । श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

५६८. **बुद्धिरास**—शालिभद्रसूरि । अनु. २८४१।४३ । ले. का. सं. १४७३ । ला. द. शोध- संस्थान, अहमदाबाद–९ ।

५६९. **ब बुद्धिरसायण**—पं. महीराज । अनु. १३५ ब । पत्र सं. ३० । १०।×४॥ । पूर्ण व जीर्ण । सरस्वती भवन, नागोर ।

५७०. ,, —पं. महीराज । अनु. १३० । दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

[भ]

५७१. **भरतचक्रवर्ती पाथडी**—× । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. ३७२वाँ मात्र । वे. सं. २९२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५७२. **भरतबाहुबलि**— × । गुटका सं. ५८ । पत्र सं. १०-१३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५७३. ,, —× । पत्र सं. ७०-८१ । ५ कडवक । वे. सं. २६३० । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

५७४. **भरतेश्वर जयमाल**—× । गुटका सं. ५४ । पत्र सं. २६८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५७५. **भरतेश्वरवैराग्य**—× । क्र. सं. ७१४ । गुटका सं. २५ । पत्र सं. २४१-४२ । दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

५७६. **भववैराग्यशतक**— × । क्र. सं. १२५ । पत्र सं. ११ । १०॥×५ । हिन्दी छाया सहित । पूर्ण । वे. सं. १७३ । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

५७७. **भविसयत्तकहा**—धनपाल । पत्र सं. २-८८ । ११×५ । अपूर्ण । वे. सं. ९५७ । बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

५७८. ,, —धनपाल । पत्र सं. १४२ । ८×७ । ले. का. सं. १६४३ । वे. सं. ७७२ । बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर ।

५७९. ,, —धनपाल । क्र. सं.५०३ । पत्र सं. १३१ । ·११-४ । पूर्ण । वे. सं. २१७ । ३ प्रतियाँ और हैं । दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

५८०. ,, —धनपाल । क्र. सं. २७० । पत्र सं. ११२ । ११×५॥ । ले. का. सं. १६६२, माघ शु. १२ । पूर्ण । वे. सं. १६५ । १ प्रति अपूर्ण है । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

५८१. ,, —धनपाल । अनु. १२४ ब । पत्र सं. १५० । ११×५ । ले. का. सं. चैत्र शु. ११, मंगलवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८२. भविसयत्तकहा—धनपाल। पत्र सं. १४८। ले. का. सं. १५५९। ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, झालरापाटन।

५८३. „ —धनपाल। अनु. ६९६। ले. का. सं. १९५१। ला. द. साहित्य शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

५८४. „ —धनपाल। पत्र सं. १४४। वे. सं. १५०१। पूर्ण। दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

५८५. „ —धनपाल। पत्र सं. १३८। ११×४॥। त्रुटित व खण्डित। २७वाँ पत्र नहीं है। दि. जैन आदिनाथ मन्दिर, बूँदी।

५८६. „ —धनपाल। पत्र सं. ५५। ६×८। अपूर्ण। दि. जैन आदिनाथ मन्दिर, बूँदी।

५८७. „ —धनपाल। क्र. सं. अ ५५। पत्र सं. १४५। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

५८८. „ —धनपाल। अनु १२४ ब। पत्र सं. १५०। ११×५। ले. का. सं. १६००, चैत्र शु. ११, मंगलवार। सरस्वती भवन, नागौर।

५८९. „ —धनपाल। अनु. २३२ ब। पत्र सं. ९९। १०×४।॥। ले. का. सं. १५७७, भाद्रपद शु. २, बुधवार। सरस्वती भवन, नागौर।

५९०. „ —धनपाल। अनु. ४४३ अ। क्र. सं. २७३। पत्र सं. ११९। ११।॥×४॥। ले. का. सं. १६२८, श्रावण शु. ५। सरस्वती भवन, नागौर।

५९१. „ —धनपाल। अनु. ४४५ अ। पत्र सं. १९३। ९॥×४। ले. का. सं. १६४३, श्रावण कृ० ३, गुरुवार। सरस्वती भवन, नागौर।

५९२. „ —धनपाल। अनु. अ १२। पत्र सं. २-१४७। त्रुटित व जीर्ण। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

५९३. „ —धनपाल। क्र. सं. ७९६। पत्र सं. १०७। १०॥×५॥। ले. का. सं. १५६४। वे. सं. ८१४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

५९४. „ —धनपाल। क्र. सं. ७९७। पत्र सं. ९४। १०॥×५॥। वे. सं. ८१५। अपूर्ण। आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

५९५. „ —धनपाल। क्र. सं ७९९। पत्र सं. ९७। ११×६। वे. सं. ८१६। पूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५९६. भविसयत्तकहा—धनपाल । क्र. सं. ८०० । पत्र सं. १०८ । १०×५॥ । ले. का. सं. १५८९, श्रावण शु. १५ । वे. सं. ८१८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५९७. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०१ । पत्र सं. १९७ । ११×५ । ले. का. सं. १५९५, माघ शुक्ल १५ । वे. सं. ८१९ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५९८. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०२ । पत्र सं. १७१ । ११×५॥ । वे. सं. ८२० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

५९९. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०३ । पत्र सं० ११५ । १२×५ । ले. का. सं. १५४०, आसोज कृ. १२, शनि । वे. सं. ८२१ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६००. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०४ । पत्र सं. १४६ । १०×५ । ले. का. सं. १५८९ । वे. सं. ८२२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०१. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०५ । पत्र सं. १७० । ९॥×५॥ । वे. सं. ८२३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०२. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८०६ । पत्र सं. १४० । १०×५ । ले. का. सं. १५८२, श्रावण शु. १० । वे. सं. ८२४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०३. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८२१ । पत्र सं. ११५ । १२×५ । ले. का. सं. १५४० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०४. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८२२ । पत्र सं. १४६ । १०×५ । ले. का. सं. १५८९ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०५. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८२३ । पत्र सं. ७० । ९॥×५॥ । अपूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६०६. ,, —धनपाल । क्र. सं. ८२४ । पत्र सं. १४० । १०×५ । ले. का. सं १५८२ । आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

६०७. ,, —धनपाल । अनु. ५६०८।६९६ । पत्र सं. ११२ । २८.४×१२.५ । ले. का.सं. १९५१ । मुनि पुण्यविजय-संग्रह । ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद–९ ।

६०८. ,, —धनपाल । पत्र सं. १५५ । ले. का. सं. १६२९ । पूर्ण । जैन साहित्य शोध-संस्थान, आगरा ।

६०९ ,, —धनपाल । पत्र सं. १२२ । पूर्ण । श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोती कटरा, आगरा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६१०. भविसयत्तकहा—धनपाल। पत्र सं. ९५। ११×४। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोती कटरा, आगरा।

६११. „ —धनपाल। भण्डार ६, सं. १३०५। भाण्डारकर ओ. रि. इं., पूना।

६१२. „ —धनपाल। अनु. ३०६४। दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर।

६१३. „ —श्रीधर। क्र. सं. ७९१। पत्र सं. ६८। १०॥×५॥। वे. सं. ८०९। अपूर्ण। आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

६१४. „ —श्रीधर। क्र. सं. ७९२। पत्र सं. ६४। ११॥×६। वे. सं. ८१०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६१५. „ —श्रीधर। क्र. सं. ७९८। पत्र सं. ६७। ११×६। वे. सं. ८१७। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६१६. „ —श्रीधर। र. का. सं. १२३०। ले. का. सं. १५३०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६१७. „ —श्रीधर। पत्र सं १९१। ले. का. सं. १७३७। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, उदयपुर।

६१८. „ —श्रीधर। अनु. २९६ ब। पत्र सं. ९५। ११॥×४॥। ले. का. सं. १६१२, पौष शु. ५। सरस्वती भवन, नागौर।

६१९. „ —श्रीधर। अनु. ४६९ ब। पत्र सं. ५०। ११।॥×५॥। ले. का. सं. १८९५, आषाढ़ कृ. ५, मंगलवार। सरस्वती भवन नागौर।

६२०. „ —श्रीधर। अनु. ५४३ ब। पत्र सं ४९। ११॥×४॥। ले. का. सं. १५०३, आषाढ कृ. ६, भृगुवार। सरस्वती भवन, नागौर।

६२१. „ —श्रीधर। अनु. ४६५ ब। पत्र सं. ७६। १०×४॥। ले. का. सं. १६५३, कार्तिक कृ. ९, मंगलवार। सरस्वती भवन नागौर।

६२२. „ —श्रीधर। अनु. २२० ब। पत्र सं. ७१। ११×४॥। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

६२३. „ —श्रीधर। अनु. २१९ ब। पत्र सं. ७२। ११×४॥। ले. का. सं. १६०८, वैशाख शु. ५, गुरुवार। सरस्वती भवन, नागौर।

६२४. „ —श्रीधर। क्र. सं. ८०९। पत्र सं. ६८। १०॥×५॥। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६२५. भविसयत्तकहा—श्रीधर । क्र. सं. ८१० । पत्र सं. ६४ । ११॥×६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६२६. „ —श्रीधर । क्र. सं.८१४ । पत्र सं. १०७ । १०॥×५॥ । ले. का. सं. १५६४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६२७. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८१५ । पत्र सं. ९४ । ११×५॥ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६२८. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८१६ । पत्र सं. ९७ । ११-६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६२९. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८१७ । पत्र सं. ६७ । १०॥×५॥ । अपूर्ण । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६३०. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८१८ । पत्र सं. १०८ । १०×५॥ । ले. का. सं. १५८८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६३१. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८१९ । पत्र सं. १९७ । ११×५। ले. का. सं. १५९५ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६३२. „ —श्रीधर । क्र. सं. ८२० । पत्र सं. १७१ । ११×५ । अपूर्ण व अति प्राचीन । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६३३. „ —श्रीधर । पत्र सं. ७५ । ले. का. सं. १६१० । पंचायती दि. जैन बड़ा मन्दिर, डीग (भरतपुर) ।

६३४. „ —श्रीधर । पत्र सं. ८७ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६३५. „ —श्रीधर । पत्र सं. ५७ । ले. का. सं. १४८२ । पूर्ण । पंचायती दि. जैन मन्दिर, बसवा ।

६३६. „ —श्रीधर । पत्र सं. ८८ । ले. का. सं. १५५९ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दूनी (टोंक) ।

६३७. „ —श्रीधर । पत्र सं. ६३ । १२×५॥ । ले. का. सं १६३९ । दि. जैन मन्दिर, भादवा (राजस्थान) ।

६३८. „ —श्रीधर । अनु. १७०३ । दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

६३९. भावनाकुलक—जिनप्रभ । अनु. १२ (३२) । पत्र सं. १८७–१९० । पाटन-भण्डार ।

६४०. „ —जिनेश्वरसूरि । अनु. २५ । पत्र सं. ११६–१७ । पाटन-भण्डार ।

६४१. भावना सन्धि—जयदेव मुनि । अनु. ४४१८ । ले. का. सं. १६५० । ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४२. भावना सन्धि—जयदेवमुनि। अनु. ६११८ (ब)। पत्र सं. ५–९। ओरिएंटल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा।

६४३. भाव संग्रह—श्रुतमुनि। अनु. ८३१। पत्र सं. ९। १०×४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६४४. भव्य कुटुम्बचरित्र—जिनप्रभ सूरि। अनु. १२ (२०)। पत्र सं. १४२–४७। पाटन-भण्डार, पाटन।

६४५. भव्यचरित्र—जिनप्रभ। अनु. १२ (१९)। पत्र सं. १३७-१४२। पाटन-भण्डार, पाटन।

[म]

६४६. मउडसत्तमीकहा—पं. साधारण। पं. परमानन्द शास्त्री के निजी संग्रह में।

६४७. मदनयुद्ध—बूचराज। गु. सं. १६। रचनाकाल सं. १५८९। दि. जैन मन्दिर लश्कर का, जयपुर।

६४८. मदनयुद्धकथा—बूचराज। गु. सं. ४९। पत्र सं. ४-२४। ले. का. सं. १५८९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६४९. मदनयुद्ध—बूचराज। क्र. सं. ६२६। गु. सं. १२५। ले. का. सं. १७१२, ज्येष्ठ शुक्ल २। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

६५०. मदनपराजय—हरिदेव। क्र. सं. ८३२। पत्र सं. ८-२३। ले. का. सं. १५७६, कार्तिक शुक्ल १३। ९॥×४॥। वेस्टन सं. ८५१। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६५१. ,, —हरिदेव। क्र. सं. ८५१। पत्र सं. १३। ९॥×४॥। ले. का. सं. १५७९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६५२. मणिपतिचरित्र—हरिभद्र सूरि। पत्र सं. १८। पूर्ण। दि. जैन पंचायती मन्दिर, भरतपुर।

६५३. मनकरहारास—पाहल। गु. सं. २६१। बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

६५४. मणुयसन्धि—पाहल। पत्र सं. ४९-५३। गु. सं. १२। वे. सं. २५०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६५५. मल्लिनाथ चरित्र—जयमित्रहल। क्र. सं. ८३८। पत्र सं. ४-१२१। १०×४। वे. सं. ८५६। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६५६. ,, —जयमित्रहल। क्र. सं. ८५६। पत्र सं. १२१। १०×४। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६५७. ,, —जिनप्रभ। अनु. १२ (३४)। पत्र सं. १९४-२०२। पाटन-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६५८. महापुराण—पुष्पदन्त । अनु. ५६०७।८४६१ । २९. ८×१०. ९ । पत्र सं. २३५ । ले. का. सं. १५५५, आसोज सुदी २ । मुनिराज श्री पुण्यविजय जी हस्तलिखित संग्रह । ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

६५९. महावीरचरित्र—रइधू । पत्र सं. ९० । ७२वाँ तथा अन्तिम पत्र नहीं है । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली—६ ।

६६०. महावीर स्तोत्र—गाथा ३० । अनु. १२६ । अपभ्रंश । खम्भात भण्डार में स्थित नगीनदास के संग्रह में ।

६६१. महावीर स्वामी चरित्र—जिनेश्वरसूरि । अपभ्रंश । नगीनदास के संग्रह में । जैन ग्रन्थावली पृ. सं. २८७ ।

६६२. महावीर पुराण—पं. रइधू । अनु. ६६ । कूंचा सेठ का दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६६३. मालारोहण—माघनन्दी । पत्र सं. ४६-४८ । श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली ।

६६४. „ —× । क्र. सं. ५३९७ । गुटका सं. १७ । पत्र सं. १५-१८ । पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६६५. मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा—पं. योगदेव । क्र. सं. ७१४ । गुटका सं. २५ । दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

६६६. „ —पं. योगदेव । क्र. सं. ७४१ । गु. सं. ५२ । ले. का. सं. १५८५ । वैशाख कृष्ण १३ । दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

६६७. मुनिसुव्रतस्वामीस्तोत्र—जिनप्रभसूरि । पाटन-भण्डार ।

६६८. मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा—पं. योगदेव । पत्र सं. ३०-३२ । गु. सं. ६ । वे. सं. २४४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६६९. „ —पं. योगदेव । गु. सं. १० । दि. जैन मन्दिर, लश्कर का, जयपुर ।

६७०. मृगांकचरित्र—पं. भगवतीदास । क्र. सं. ८९८ । प. सं. ७४ । ११×६ । ले. का. सं. १७०० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

६७१. मेघमालावयकहा—कवि ठकुरसी । र. का. सं. १५८० । भ. हर्षकीर्ति भण्डार, अजमेर ।

६७२. मेवेश्वरचरित्र—रइधू । अनु. २९०८ । दि. जैन ऐ. प. सरस्वती भवन, ब्यावर ।

६७३. „ —रइधू । पत्र सं. ६८ । ले. का. सं. १९९२ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

६७४. मोहराज विजय—जिनप्रभ । अनु. १२ (३९) । पत्र सं. २१५-१६ । पाटन भण्डार, पाटन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७५. योगसार—योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०२ । पत्र सं. १२ । ९×४ । ले. का. सं. १८०४ । वेष्टन सं. ८२ । पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६७६. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०३ । पत्र सं १७ । ले. का. सं. १९३४ । वे. सं. ६०६ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

६७७. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०४ । पत्र सं. १५ । वे. सं. ६०७ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

६७८. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०५ । पत्र सं. १२ । ले. का. सं. १८१३ । वे. सं. ६१६ । संघी जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६७९. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०६ । पत्र सं. २६ । वेष्टन सं. ३१० । संघी जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६८०. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०७ । पत्र सं. ११ । ले. का. सं. १८८२ । वे. सं. २८२ । छोटे दीवान जी का दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६८१. ,, —योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०८ । पत्र सं. १० । ले. का. सं. १८०४, आसोज कृ. ३ । वे. सं. ३३६ । दि. जैन पार्श्वनाथ मन्दिर, जयपुर ।

६८२. योगसार—योगीन्द्रदेव । क्र. सं. १५०९ । पत्र सं. ५ । वे. सं. ५१६ । पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

६८३. योगसार सटिप्पण—मुनि योगीन्द्र । अनु. (२) ७।१०६६ । पत्र सं. ११ । अपूर्ण । ले. का. सं. १८६४ । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़ ।

६८४. ,, —योगीन्द्राचार्य । पत्र सं. ३० । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६८५. ,, —योगीन्द्राचार्य । पत्र सं. ६८७४ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६८६. ,, —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १९ । धर्मपुरा दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

६८७. योगसारदोहा—योगीन्द्रदेव । क्र. सं. ७४१ । गुटका सं. ५२ । ले. का. सं. १५७० । दि. जैन मन्दिर बधीचन्द, जयपुर ।

६८८. ,, —योगीन्द्रदेव । पत्र सं. १० । अपूर्ण । ले. का. सं. १९०५ । जैन साहित्य शोध-संस्थान, आगरा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६८९. योगसारदोहा—योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ५९९६। गुटका सं. ४९। पत्र सं. १०४-११। ७×५। आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

६९०. योगसार—योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २७४। पत्र सं. १३। ११×५॥। ले. का. सं. १९२१, ज्येष्ठ शुक्ल २। पूर्ण। वेष्टन सं. ५९। दि. जैन मन्दिर, बधीचन्द जी, जयपुर।

६९१. „ —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. २८५। पत्र सं. १०। १०॥×७॥। पूर्ण। वेष्टन सं. ६१। चार प्रतियाँ और हैं। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

६९२. „ —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १५० क। पत्र सं. ५। सरस्वती भवन, झालरापाटन।

६९३. „ —जोगचन्द मुनि। गुटका सं. ५५। पत्र सं. ३७८-३८६। ७॥×६॥। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

६९४. „ —योगीन्द्रदेव। हिन्दी टिप्पण सहित। पत्र सं. १४। १२।×५।। दि. जैन मन्दिर, भानपुरा (म. प्र.)।

६९५. „ —योगीन्द्रदेव। गुटका सं. ५४। पत्र सं. ३३९-३४२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

६९६. „ —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. २४। १०॥×५॥। ले. का. सं. १८२६। वेष्टन सं. ७२। दि. जैन मन्दिर आदिनाथ, बूँदी।

६९७. „ —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. ७। १२×५॥। ले. का. सं. १८२१। बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

६९८. „ —योगीन्द्रदेव। वेष्टन सं. ३६६। दि. जैन मन्दिर अभिनन्दननाथ, बूँदी।

६९९. „ —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ५४। पत्र सं. ५८। १०×६। पूर्ण। श्री चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, भानपुरा (म. प्र.)।

७००. „ —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १५०-५७। गुटका सं. २२। आमेर शास्त्र-भण्डार जयपुर।

७०१. „ —योगीन्द्रदेव। गुटका सं. ३८। पत्र सं. ११३-२६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७०२. „ —योगीन्द्रदेव। क्रम सं. २५६। गु. सं. २२। पत्र सं. १५०-१५७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७०३. „ —योगीन्द्रदेव। पत्र सं. १५३। ६×५। श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, रामपुरा (म. प्र.)

७०४. „ —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ७१३। गुटका सं. २४। ६॥×८॥। वेष्टन सं. ९७०। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७०५. योगसार—योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ९३३। पत्र सं. ९। ११×४॥। ले. का. सं. १६१९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७०६. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ९३४। पत्र सं. ७। १०॥×४॥। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७०७. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. ९३५। पत्र सं. २०। ११×५॥। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७०८. ,, —योगीन्द्रदेव। क्र. सं. १२८। पत्र सं. ६। ११॥×५॥। ले. का. सं. १८७२, मंगसिर सुदी ८। पूर्ण। वेष्टन सं. ३२९। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७०९. योगसार—जोगचंद। गुटका सं. ५४। पत्र सं. ३३९-३४२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७१०. योगीरासो—योगीन्द्र। क्र. सं. ५९५७। गुटका सं. १०। पत्र सं. ३२-३३। ८×७। पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

[र]

७११. रत्नकरण्ड श्रावकाचार—श्रीचन्द। अनु. २४६ ब। पत्र सं. १६९। १२×५। ले. का. सं. १६०७, मंगसिर शुक्ल २ सोमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

७१२. ,, —श्रीचन्द। अनु. २४३ ब। पत्र सं. १११। १४×५।। ले. का. सं. १५७९, चैत्र शुक्ल ३, शुक्रवार। सरस्वती भवन, नागौर।

७१३. ,, —श्रीचन्द। क्र. सं. ९४८। पत्र सं. १५९। ९॥×४॥। ले. का. सं. १५८२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७१४. ,, —श्रीचन्द। क्र. सं. ९४९। पत्र सं. १२३। ११×५॥। ले. का. सं. १५८९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७१५. ,, —श्रीचन्द। क्र. सं. ९५०। पत्र सं. १५७। १०॥×४॥। ले. का. सं. १५६५। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७१६. ,, —श्रीचन्द। पत्र सं. १११। ले. का. सं. १५१९। चाँदनगाँव दि. जैन मन्दिर, श्री महावीर जी।

७१७. रत्नत्रयविधानकथा—गुणभद्र। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

७१८. रत्नत्रयपूजा जयमाल—ऋषभदास। क्र. सं. ९५६। पत्र सं. २३। ११॥×५। वेष्टन सं. ९५६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७१९. ,, —ऋषभदास। क्र. सं. ९४८। पत्र सं. ४। हिन्दी छाया सहित। वे. सं. ९५८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७२०. रत्नत्रयपूजा जयमाल—ऋषभदास। अ. २८६। पत्र सं. ६। ले. का. सं. १८६२। ज्येष्ठ कृ. २। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

७२१. ,, —×। पत्र सं. १६०-१६२। पाटोदी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७२२. रविवारकथा—रइधू। पत्र सं. ४। १०×४। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा, भरतपुर।

७२३. ,, —नेमचन्द। पंचायती दि. जैन मन्दिर दिल्ली।

७२४. राजादशरथ जयमाल—×। गुटका सं. ३८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७२५. राजहंसकुमार चरित्र चौपाई—दयारत्न। अनु. ८४६०।३१। ले. का. सं. १५८३। ला. दा. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

७२६. रिट्ठणेमि चरिउ—स्वयंभू। क्र. सं. ५४५४। गुटका सं. ७३। ९७-९८ सन्धि। पत्र सं. ७७-८६। अपूर्ण। पाटौदी दि. जैन मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७२७. रुक्मिणी विधानकथा—छत्रसेन। क्र. सं. २६८८। पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७२८. रोषवर्णन गोयम—×। २४२ पद्य। क्र. सं. ७१४। गुटका सं. २५। वे. ९७१। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७२९. रोहिणीचरित्र विधानकथा—देवनन्दी। क्र. सं. २६८३। पत्र सं. ७६-८१। पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७३०. ,, —देवनन्दी। भ. महेन्द्रकीर्ति भण्डार, आमेर, जयपुर।

७३१. रोहिणी विधानकथा—देवनन्दी। अनु. ७४० ब। पत्र सं. १६। ९×४॥। ले. का. सं. १५१९, मंगसिर वदी ३, रविवार। सरस्वती भवन, नागौर।

७३२. रोहिणीव्रतकथा—देवनन्दी मुनि। क्र. सं. ९७२। पत्र सं. १२। १०×४। वेष्टन सं. ९७२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७३३. रोहिणी (श्रवण) द्वादशीकथा—गुणभद्र मुनि। अ १३-१४। ५॥×५॥। पत्र सं. २६-३१। ले. का. सं. १६०२, श्रावण शु. ११। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

७३४. रोहिणुरास—अज्ञात। गुटका सं. २६१। बड़े धड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

[ल]

७३५. लब्धिविधानव्रतकथा—गुणभद्र (मलयकीर्तिशिष्य)। श्री. दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

७३६. लक्ष्मीवल्लभ—×। अजैन ३८२। ले. का. सं. १७५२। श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७३७. वज्रस्वामीचरित्र—जिनप्रभसूरि । अनु. ३११ (१७) । पत्र सं. १२४-१२९ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

७३८. वज्रस्वामीरास—जयसागर । अनु. ३४२०।३४ । ले. का. सं. १५५० । ला. द. शोध-संस्थान, अहमदावाद ।

७३९. वड्ढमाणकहा—नरसेन । क्र. सं. ५१८ । पत्र सं. २७ । ९×४ । ले. का. सं. १५८४ । वे. सं. २६१ । बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

७४०. ,, —जयमित्रहल । क्र. सं. ५१९ । पत्र सं. २-५६ । ९॥×४ । ले. का. सं. १५५०, वैशाख शुक्ल ३ । अपूर्ण । वे. सं. १३८ । बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

७४१. वड्ढमाणकव्व—कवि हरिइंद । ले. का. सं. १६०० । जैन सिद्धान्त भवन, आरा ।

७४२. वयरसामिचरिउ—जिनप्रभ । अनु. ३११ (१७) । पत्र सं. १२४ से १२९ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

७४३. वरांगचरिउ—तेजपाल । र. का. सं. १५०७ । ले. का. सं. १६०७ । भट्टारक हर्षकीर्ति शास्त्र-भण्डार, अजमेर ।

७४४. वरांगचरित—तेजपाल । पत्र सं. ५६ । ११×४॥ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, करौली (सवाई माधोपुर) ।

७४५. ,, —तेजपाल । क्र. सं. ४४१ अ । पत्र सं. ५६ । ११॥×४॥ । ले. का. सं. १६०७, ज्येष्ठ शुक्ल ३, सोमवार । पूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

७४६. ,, —तेजपाल । क्रम सं. ४६२ अ । पत्र सं. ६८ । ११।×४॥। । ले. का. सं. १६०७, कार्तिक शुक्ल ५, गुरुवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

७४७. वर्द्धमानकथा—नरसेन । क्र. सं. ९७६ । पत्र सं. १७ । १०॥×५ । वेष्टन संख्या ९८६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७४८. ,, —नरसेन । क्र. सं. ११७० । पत्र सं. २३ । वेष्टन सं. १६७७ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

७४९. वर्द्धमानकाव्य—जयमित्रहल । क्र. सं. ९७९ । पत्र सं. ५९ । ले. का. सं. १६२७ । वेष्टन संख्या ९८९ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७५०. ,, —जयमित्रहल । क्र. सं. ९८० । पत्र सं. ५९ । ले.का. सं. १६०८, भाद्रपद शुक्ल ४ । वे. सं. ९९० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७५१. वर्द्धमानकाव्य—जयमित्रहल । क्र. सं. ९८१ । पत्र सं. ६२ । ले. का. सं. १६३१, माघ कृष्ण ११ । वेष्टन संख्या ९९१ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७५२. ,, —जयमित्रहल । क्र. सं. ९८२ । पत्र सं. ५४ । ले. का. सं. १५९३, ज्येष्ठ शुक्ल ५ । वेष्टन सं. ९९२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७५३. वर्द्धमानकथा—जयमित्रहल । क्र. सं. २३५१ । पत्र सं. ७३ । ९॥×५॥ । ले. का. सं. १६६५, वैशाख शु. ३ । पूर्ण । वे. सं. १५३ । पाटोदी दि.जैन मन्दिर, जयपुर ।

७५४. ,, —जयमित्रहल । क्र. सं. २३५२ (२) । पत्र सं. ५२ । वे. सं. १९५३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७५५. वर्द्धमानकाव्य—जयमित्रहल । क्र. सं. २९० । पत्र सं. ४६ । ११×५ । ले. का. सं. १५४६ । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा, (भरतपुर) ।

७५६. ,, —जयमित्रहल । पत्र सं. ५५ । १०×४॥। । अपूर्ण (पंचम परिच्छेद तक) । तेरहपन्थी दि. जैन मन्दिर, दौसा (जयपुर) ।

७५७. ,, —जयमित्रहल । अनु. ३६९९ । पत्र सं. ४५ । ले. का. सं. १९८८ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

७५८. ,, —जयमित्रहल । अनु. २८२६ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

७५९. ,, —जयमित्रहल । क्र. सं. ९८९ । पत्र सं. ५२ । ९॥×५ । ले. का. सं. १६२७ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७६०. ,, —जयमित्रहल । अनु. ४३१ ब । पत्र सं. ६३ । ११॥×४॥ । ले. का. सं. १५३५, ज्येष्ठ शु. ७, शुक्रवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

७६१. ,, —जयमित्रहल । अनु. ४३२ अ । पत्र सं. ५७ । १०॥×४॥। । सरस्वती भवन, नागौर ।

७६२. ,, —जयमित्रहल । अनु. ४३३ अ । पत्र सं. ५६ । १०॥×४॥। । ले. का. सं. १६४७, ज्येष्ठ कृ. ११, बुधवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

७६३. वर्द्धमानचरित्र—श्रीधर । पत्र सं. ७८ । ११॥×४॥ । अपूर्ण । ९ परिच्छेद तक तथा १०वें का कुछ अंश । दि. जैन मन्दिर, दूनी (टोंक) ।

७६४. ,, —हरिश्चन्द । अनु. २९३ क । पत्र सं. ४२ । ले. का. सं. १५१८ । सरस्वती भवन, झालरा पाटन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७६५. विजयचन्दचरिय—× । पत्र सं. ८ । १०×४ । प्राकृत । अति प्राचीन । वे. सं. २६५ । दि. जैन मन्दिर अभिनन्दन स्वामी, बूँदी ।

७६६. विज्जुच्चर अणुपेहा—× । क्र. सं. ७१४ । पत्र सं. २४०-२४१ । गुटका सं. २५ । बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

७६७. वित्तसार (वृत्तसार)—रइधू । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

७६८. विद्युच्चोरकथा—× । गुटका सं. ५९ । पत्र सं. ८४-९० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७६९. विलासवईकहा—साधारण सिद्धसेन । क्र. सं. ६९९५ । फोटो स्टेट कॉपी । ८६×२ । ५१-५४ पाना नहीं हैं । ले. का. सं. १९१५ । सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा ।

७७०. वीरजिणिंदपारणक—वर्धमानसूरि । अनु. ५ (२२) । पाटन-भण्डार, पाटन ।

७७१. वैराग्यगीत—× । । गुटका सं. ४८ । पत्र सं. ३१०-३१२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७७२. वैराग्यसार—सुप्रभाचार्य । अनु. ११३ । दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर ।

[श]

७७३. शान्तिनाथचरित—महिन्दु (महेन्द्र) । अनु. ४२३० । पत्र सं. १०४ । ३७०० श्लोकप्रमाण । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

७७४. ,, —महिन्दु (महेन्द्र) । पत्र सं. १५३ । र. का. सं. १५८७ । ले. का. सं. १५८८ । दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली ।

७७५. शान्तिनाथदेवरास—उपाध्याय लक्ष्मीतिलक । ६० पद्य । सम्मेलन पत्रिका, वर्ष ४७, अंक ४, पृ. ३७-४५ प्रकाशित ।

७७६. शान्तिनाथपुराण—ठाकुर । पत्र सं. ७४ । ११॥×५॥ । र. का. सं. १६५२ । पूर्ण । वे. सं. १६०५ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

७७७. शान्तिनाथबोली—× । अनु. ५६६४।८४८४-८ । २०.६×७.६ । पत्र सं. १८ । ४ गाथा । ले. का. सं. १३५० । जीर्ण । मुनिपुण्यविजय जी का संग्रह, ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

७७८. शान्तिनाथबोली—× । ५६६५।३९०८-२ । २४.९-११ । ले. का. सं. १६५० । मुनिपुण्यविजय जी जा संग्रह, ला. दा. शोध-संस्थान अहमदाबाद ।

७७९. शिवकुमार की जयमाल—× । पत्र सं. ५४-५८ । ९ कडवक । गुटका सं. १२ । वे. सं. २५० । आमेर-शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

७८०. शालिभद्रचरित—पउम । अनु. ५३ (२) । ६९ गाथा । पत्र सं. ६ । पाटन-भण्डार, पाटन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७८१. शालिभद्रफागु—पोमा कवि। अनु. २८४१।३२। ले. का. सं. १४७३। ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

७८२. शीलसन्धि—रत्नशेखरसूरि। अनु. १२८६।३। ले. का. सं. १४८६। ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

७८३. श्रावकधर्म— × । पत्र सं. १२८-३३। गुटका सं. ३८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७८४. श्रावकविधि—जिनप्रभ। क्र. सं. ११ (१६)। पत्र सं. १८०-१८४। पाटन-भण्डार, पाटन।

७८५. श्रावकविधिरास—मेरुनन्दन। अनु. २८४१।४२। ले. का. सं. १४७३। ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

७८६. श्रावकाचार दोहा—लक्ष्मीचन्द्र। पत्र सं. १४। ले. का. सं. १७१४। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, शाहगढ़।

७८७. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। पत्र सं. २८७-९४। गुटका सं. ५४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७८८. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। अनु. ४२६१। पत्र सं. ४०। सरस्वती भवन, ब्यावर।

७८९. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। पत्र सं. ११०-१३२। दि. जैन मन्दिर, सम्भवनाथ, उदयपुर।

७९०. ,, —लक्ष्मीचन्द्र। पत्र सं. १४। ११॥×५। वे. सं. १७३। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७९१. ,, —रामसिंह। अनु. ५९५७। पत्र सं. ५३-६३। गुटका सं. १०। ८×७। दि. जैन मन्दिर, शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

७९२. ,, —रामसिंह। अनु. ५४५४। पत्र सं. ४५-५९। गुटका सं. ७३। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

७९३. ,, —योगीन्द्रदेव। अनु. १३०८। कठवाड़े संग्रह। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

७९४. श्रीपालचरित—कवि दामोदर। अनु. ५२६। पत्र सं. ५७। ११×४॥। ले. का. सं. १६०९, श्रावण कृ. ६। पूर्ण। वे. सं. २२४। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

७९५. ,, —जयमित्रहल। पत्र सं. ६०। ११×४।।। ले. का. सं. १६२३। पूर्ण। दि. जैन दीवान जी का मन्दिर, कामा (भरतपुर)।

७९६. श्रीपालचरित्र—नरसेनदेव। अनु. ४२८ व। पत्र सं. ३३। १०॥×५। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७९७. श्रीपालचरित्र—नरसेनदेव। पत्र सं. ४६। १०×४। ले. का. सं. १५८९। पूर्ण। वे. सं. १११। दि. जैन दीवान जी का मन्दिर, कामा (भरतपुर)।

७९८. „ —नरसेनदेव। पत्र सं. ३७। ११×५। ३ सन्धि। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

७९९. „ —नरसेनदेव। पत्र सं. ६०। ११×४॥। ले. का. सं. १६२३। पूर्ण। वे. सं. ३०२। दि. जैन दीवान जी का मन्दिर, कामा (भरतपुर)।

८००. „ —नरसेनदेव। पत्र सं. ४१। १०॥×४॥। ले. का. सं. १५२३। दि. जैन शास्त्र-भण्डार, श्री महावीर जी।

८०१. श्रीपालचरित्र—नरसेनदेव। अनु. २४०१। पत्र सं. १७। ११॥×५। वे. सं. १९९६। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

८०२. श्रीपालचरित्र—रइधू। पत्र सं. १२५। १०॥×४। ले. का. सं. १६०९। वे. सं. १४। दि. जैन मन्दिर आदिनाथ, बूंदी।

८०३. „ —रइधू। पत्र सं. ९६। ११।।।×६। अन्त के पृष्ठ नहीं हैं। अपूर्ण। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

८०४. „ —रइधू। अनु. १२६७। ले. का. सं. १८८८। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

८०५. „ —रइधू। स्ट्रासवर्ग (जर्मन) पुस्तकालय (उल्लिखित)।

८०६. „ —रइधू। अनु. १८८८। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

८०७. श्रुतपंचमीकहा—धनपाल। पत्र सं. १४४। १०॥×३। ले. का. सं. १५०१, फाल्गुन शु. १। पूर्ण। दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, दौसा।

८०८. श्रेणिकचरित्र—जयमित्रहल। अनु. ५२९। पत्र सं. ६०। १०॥×५॥। अपूर्ण। वे. सं. २३६। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

८०९. श्रेणिकचरित्र—रइधू। अनु. ३१३७। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

[ष]

८१०. षोडशकारणकथा—विशालकीर्ति। पत्र सं. २८। सरस्वती भवन, झालरापाटन।

८११. षोडशकारणजयमाल—रइधू। पत्र सं. ७। ११×५॥। दि. जैन मन्दिर, भादवा (राजस्थान)।

८१२. „ —रइधू। क्र. सं. ४३७। पत्र सं. २२। ११×५। ले.का. सं. १८७६, भाद्रपद शु. ५। पूर्ण। संस्कृत छाया युक्त। वे. सं. ५। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८१३. षोडशकारणजयमाल— × । अ २६ क । पत्र सं. २३ । १०॥ × ५ । ले. का. सं. १८३५, श्रावण शु. ४, सोमवार । दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

८१४. ,, —भ. मेरुचंद । दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

८१५. ,, —अनु. २७ क । पत्र सं. ३ । १०॥ × ५ । दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

[स]

८१६. सम्बोधपंचासिका—रइधू । अनु. १६८२ । पत्र सं. ५ । ११ × ६ । ले. का. सं. १७१९, पौष शु. ५ । वे. सं. २२६ । दि. जैन पाटोदी मन्दिर-शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

८१७. ,, —रइधू । पत्र सं. ३ । ११ × ६ । पूर्ण । वे. सं. १० । बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

८१८. ,, —मुनि धर्मचन्द्र । गुटका सं. ५० । चौधरी दि. जैन मन्दिर, मालपुरा (टोंक) ।

८१९. ,, —अज्ञात । पत्र सं. ४ । १०॥ × ५ । ले. का. सं. १७१४ । वे. सं. १११८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

८२०. ,, —अज्ञात । अनु. ७१८ ब । पत्र सं. ६ । १२ × ५ । ले. का. सं. १८३०, वैशाख शु. १, गुरुवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

८२१. ,, —अज्ञात । अनु. ५६४ ब । पत्र सं. ६ । ९॥ × ५। । पूर्ण व जीर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

८२२. ,, —अज्ञात । अनु. ५५९ ब । पत्र सं. ५ । ९॥ × ४। । ले. का. सं. १८८३, फाल्गुन शु. ३ । पूर्ण व जीर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

८२३. ,, —अज्ञात । पत्र सं. २१८-२२३ । गुटका सं. ४८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

८२४. ,, — × । पत्र सं. १३ । ११॥ × ५॥ । दि. जैन मन्दिर, बोरसली (कोटा) ।

८२५. ,, — × । पत्र सं. १३ । १२ × ७ । अग्रवाल दि. जैन पंचायती मन्दिर, अलवर ।

८२६. ,, — × । पत्र सं. २९ । ९ × ६ । अग्रवाल दि. जैन पंचायती मन्दिर, अलवर ।

८२७. सम्बोधिरसायन— × । पत्र सं. १२८-१३३ । गुटका सं. ३८ । वे. सं. २७६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८२८. सम्भवजिणणाहचरिउ—तेजपाल। अनु. २४३७। पत्र सं. ६२। १०×५। वे. सं. ३६५। दि. जैन छोटे दीवान जी का मन्दिर, जयपुर।

८२९. सम्भवणाहचरिउ—तेजपाल। अनु. ४००। ले. का. सं. १५८३। ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, ब्यावर।

८३०. ,, —तेजपाल। पत्र सं. ३२-९१। ६ सन्धि। अपूर्ण। दि. जैन पंचायती बड़ा मन्दिर, डीग (भरतपुर)।

८३१. ,, —तेजपाल। अनु. २४७४। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

८३२. संयममंजरी—महेश्वरसूरि। अनु. ३०९६। गाथा ३५। पत्र सं. ११०-११। जैन ज्ञान भण्डार, लींबडी।

८३३. संयममंजरी—महेश्वरसूरि। अनु. २६१ (९)। पत्र सं. २१५-१८। पाटन-भण्डार, पाटन।

८३४. ,, —महेश्वरसूरि। अनु. १३० (१४)। पत्र सं. २०७-२१३। पाटन-भण्डार, पाटन।

८३५. सकलविधिविधानकाव्य—नयनन्दी। अनु. १०७४। पत्र सं. ३०४। १०॥×४॥। ले. का. सं. १५८०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८३६. ,, —नयनन्दी। अनु. १०७५। पत्र सं. ६। ११॥×५॥। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८३७. ,, —नयनन्दी। अनु. १०७६। पत्र सं. १०। १०॥×४॥। अपूर्ण। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८३८. सत्तवसणवज्जणकहा—माणिकचन्द। पत्र सं. ९१। पूर्ण व त्रुटित। १०॥×४॥। र. का. सं. १६३४। ले. का. सं. १८ वीं शती। निजी संग्रह में।

८३९. सत्यपुरमण्डन महावीरोत्साह—अभयदेव। र. का. ११ वीं शताब्दी।

८४०. सन्तोषतिलकजयमाल—बूचराज (बल्ह)। र. का. सं. १५९१। हिसार में रचित। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८४१. सन्मतिजिनचरित्र—रइधू। अनु. अ २२। पत्र सं. १-९०। अन्तिम १२ पत्र कम हैं। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

८४२. ,, —रइधू। अनु. १२६९। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

८४३. ,, —रइधू। अनु. १०९९। पत्र सं. १२६। ११×५॥। ले. का. सं. १६२४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८४४. सप्तऋषिपूजा—×। गुटका सं. ६३। ६।×५॥। श्री दि. जैन सरस्वती भवन, नया मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८४५. समाधिरास—चारितसेनमुनि। गुटका सं. ९१। पत्र सं. १३६-१३८। श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८४६. ,, —चारितसेन मुनि। गुटका सं. ९४। पत्र ६७ वाँ मात्र। श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८४७. सम्यक्त्वकौमुदी—सहणपाल। अनु. ५४५४। गुटका सं. ७३। पत्र सं. ९१-९४। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

८४८. सम्यक्त्वगुणनिधान—रइधू। अनु. ३२७१। पत्र सं. ४५। सरस्वती भवन, ब्यावर।

८४९. सम्यक्त्वगुणारोहण—रइधू। अनु. ४६५८। अनु. १८८९। पत्र सं. ७९। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

८५०. सरस्वतीकण्ठाभरणवृत्ति—आजड। अनु. ५०। पत्र सं. २-३०५। अपूर्ण। मध्य के कुछ पत्र नहीं हैं। संस्कृत-अपभ्रंश। पाटन-भण्डार, पाटन।

८५१. सांतिणाहचरिउ—महिन्दू। अ १ (क)। पत्र सं. १५३। ११×४॥। र. का. सं. १५८७। ले. का. सं. १५८८, फाल्गुन कृ. ५। पूर्ण। श्री दि. जैन मन्दिर, सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, दिल्ली।

८५२. साटक—×। पत्र सं. ९-११। गुटका सं. ५२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८५३. सालिभद्दकक्क—पउम। अनु. ३११ (१५)। पत्र सं. ११४-११९। पाटन-भण्डार, पाटन।

८५४. सालिभद्रचरित—जिनसिंहसूरि। अनु. ३५५ व। पत्र सं. २१। १०×४॥। ले. का. सं. १७१८, फाल्गुन शु. ११। सरस्वती भवन, नागौर।

८५५. सालिभद्रमाइ—×। पत्र सं. ११९-१२४। पाटन-भण्डार, पाटन।

८५६. सावयचरिउ (सम्यक्त्वकौमुदी)—रइधू। पत्र सं. ५८। र. का. सं. १५१०-१५३६। ले. का. सं. १६१४। स्व. पूरणचन्द्र नाहर संग्रह, कलकत्ता।

८५७. ,, —रइधू। पत्र सं. ७१। सरस्वती भवन, नागौर।

८५८. सावयधम्मदोहा—मुनि रामसिंह। अनु. १२२५। पत्र सं. ८। १०॥×४॥। वे. सं. १४१। पूर्ण। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

८५९. ,, —मुनि रामसिंह। पत्र सं. १४। ले. का. सं. १७५८। दि. जैन मन्दिर, शाहगढ़ (म. प्र.)।

८६०. सिद्धचक्ककहा—पं. रइधू। सन्धि १०। पत्र सं. ९६। ११॥×५॥। पूर्ण। श्री अग्रवाल दि. जैन बड़ा मन्दिर, मोती कटरा, आगरा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८६१. सिद्धचक्ककहा—पं. रइधू। क्र. सं. १७३३। पत्र सं. ४६। ले. का. सं. १४२८। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

८६२. सिद्धचक्रकथा—नरसेन। पत्र सं. ४१। ले. का. सं. १५२३। पूर्ण। एक अन्य ३६ पत्रों की अपूर्ण प्रति भी है। दि. जैन शास्त्र-भण्डार, श्री महावीर जी (राजस्थान)।

८६३. ,, —नरसेन। अ ७। पत्र सं. १०५। १०॥×५। ले. का. सं. १६७३। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८६४. ,, —नरसेन। अ ८। पत्र सं. ५५। १०॥×५। पंचायती, दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८६५. ,, —नरसेन। पत्र सं. ४३। ले. का. सं. १६११। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

८६६. ,, —नरसेन। अ ८। पत्र सं. ५५। ले. का. सं. १६१८। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८६७. ,, —नरसेन। पत्र सं. ४३। १२०० श्लोकप्रमाण। ले. का. सं. १६११। दि. जैन मन्दिर, डीग (भरतपुर)।

८६८. सिद्धचक्रकथा—नरसेन। अनु. ५३३। पत्र सं. ३८। १०×४॥। ले. का. सं. १५१५। पूर्ण। वे. सं. २७८। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

८६९. ,, —नरसेन। अनु. ५०७ व। पत्र सं. ४२। १०॥×४॥। ले. का. सं. १६०६, पौष शु. ५, सोमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

८७०. ,, —नरसेन। अनु. १९६ क। पत्र सं. ४२। ले. का. सं. १५६४। सरस्वती भवन, झालरा-पाटन।

८७१. सिद्धपूजा जयमाल—×। गुटका सं. ६३। ६।×५॥। ११ कडवक। श्री दि. जैन सरस्वती भण्डार, नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

८७२. सिद्धान्तार्थसार—पं. रइधू। अनु. ५७२। पत्र सं. ९९। १३×८। ले. का. सं. १९५६। पूर्ण। वे. सं. ७९९। बाबा दुलीचन्द जी का शास्त्र-भण्डार, दि. जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

८७३. ,, —पं. रइधू। अनु. ५७३। पत्र सं. ९६। ले. का. सं. १८६४। वे. सं. ८००। दि. जैन मन्दिर, छोटे दीवान जी का, जयपुर।

८७४. सिरिपालचरिउ—पं. नरसेन। अनु. २४३९। पत्र सं. ४७। ९॥×४॥। ले. का. सं. १६१२, कार्तिक शु. ६। पूर्ण। वे. सं. ४१०। पार्श्वनाथ दि. जैन शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८७५. सुकुमालचरित्र—पं. श्रीधर। अनु. १२३०। पत्र सं. ४५। ले. का. सं. १५४६, ज्येष्ठ शु. ६। १०॥×४॥। वे. सं. १२४७। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८७६. ,, —पं. श्रीधर। अनु.२४४३। पत्र सं. ६५। १०×४॥। अपूर्ण। वे. सं. २८८। जोबनेर दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

८७७. ,, —पं. श्रीधर। पत्र सं. १–२१। ११×५। अपूर्ण। प्रति प्राचीन है। दि. जैन तेरहपंथी मन्दिर, दौसा।

८७८. ,, —मुनि पूर्णभद्र। गुणभद्र के शिष्य। पत्र सं. ३७। ९×५। ले. का. सं. १६२२। पूर्ण। बड़े घड़े का दि. जैन मन्दिर, अजमेर।

८७९. ,, —मुनि पूर्णभद्र। अनु. १२३१। पत्र सं. ४५। २–३० पत्र नहीं हैं। अपूर्ण। वे. सं. १२४८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८८०. ,, —मुनि पूर्णभद्र। अनु. ४३५ अ। पत्र सं. ४०। १०॥×४॥। ले. का. सं. १६४३, माघ शु. ५, मंगलवार। सरस्वती भवन, नागौर।

८८१. सुकुमालचरित्र—मुनि पूर्णभद्र। अनु. ४७० ब। पत्र सं. ४१। १०।×४।। ले. का. सं १६७८, चैत्र शु. ३, शुक्रवार। सरस्वती भवन, नागौर।

८८२. ,, —मुनि पूर्णभद्र। अनु. ४९४ ब। पत्र सं. ३३। ९॥×४॥। ले. का. सं. १५४१, माघ शु. १२, गुरुवार। सरस्वती भवन नागौर।

८८३. ,, —मुनि पूर्णभद्र। अनु. ५०६ ब। पत्र सं. ४०। १०॥×४। ले. का. सं. १५८१, माघ कृ. ७, सोमवार। सरस्वती भवन, नागौर।

८८४. ,, —मुनि पूर्णभद्र। पत्र सं. ३९। पूर्ण। दि. जैन मन्दिर, दबलाना।

८८५. ,, —मुनि पूर्णभद्र। अ. ५। ६ परिच्छेद। पत्र सं. ४३। १०×४। ले. का. सं. १६३२, श्रावण कृष्ण, १५। दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

८८६. सुकौशलचरित—पं. रइधू। अनु. ४२१२, ४६२१। दोनों पूर्ण प्रतियाँ हैं। पत्र सं. २३। ले. का. सं. १६५३। अपूर्ण। सरस्वती भवन, ब्यावर।

८८७. ,, —पं. रइधू। अ ४। पत्र सं. ३५। १०×५। र. का. सं. १४९६। ले. का. सं. १६३३, ज्येष्ठ कृ. १, शनिवार। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८८८. सुखसंपत्तिविधानकथा—मुनि विमलकीर्ति । अनु. २६८८ । १२×४॥ । ले. का. सं. १५१९ । वे.सं. ११० । श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

८८९. ,, —पत्र सं. २ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

८९०. सुगन्धदशमीव्रतकथा—नयनन्दी । अनु. ५७२ । पत्र सं. ८ । १०×४। । ले. का. सं. १५२४, भाद्रपद कृ. ९, रविवार । पूर्ण । वे. सं. ५८१ । बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

८९१. ,, —गुणभद्र मुनि । पत्र सं. ५ । १०॥×४। । जीर्ण । दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा ।

८९२. सुदर्शनचरित्र—नयनन्दी । अनु. १२३७ । पत्र सं. ११२ । वे. सं. १२५६ । आमेर शास्त्र-भण्डारं, जयपुर ।

८९३. ,, —नयनन्दी । अनु. १२३८ । पत्र सं. ११५ । ले. का. सं. १६७७, माघ शु. १२ । वे. सं. १२५६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

८९४. ,, —नयनन्दी । अनु. १२३९-४० । पत्र सं. ८९, १०० । वे. सं. १२५७-५८ । दोनों पूर्ण प्रतियाँ हैं । ले. का. सं. १५१७ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

८९५. सुदंसणचरिउ—नयनन्दी । पत्र सं. ८९ । अपूर्ण । पत्र सं. १०८ । पूर्ण । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

८९६. ,, —नयनन्दी । पत्र सं. १–८९ तथा १०९ । १०॥×४॥ । दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा (भरतपुर) ।

८९७. ,, —नयनन्दी । पत्र सं. ८८ । र. का. सं. ११०० । ले. का. सं. १६१३ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

८९८. ,, —नयनन्दी । अनु. ३९८ अ । पत्र सं. ८२ । १०॥×४॥ । ले. का. १५ वीं शती । पूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

८९९. ,, —नयनन्दी । अनु. ४४२ अ । पत्र सं. ७१ । १२×५ । ले. का. सं. १५९९, माघ शु. ५ बुधवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

९००. ,, —नयनन्दी । अनु. १२३४ । पत्र सं. ९५ । ले. का. सं. १५९७, माघ कृ. २ । वे. सं. १२५२ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९०१. ,, —नयनन्दी । अनु. १२३५ । पत्र सं. ६९ । ले. का. सं. १६३१, कार्तिक शु. ५ । वे. सं. १२५३ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९०२. सुदंसणचरिउ—नयनन्दी । अनु. १२३६ । पत्र सं. १०६ । ले. का. सं. १६३२, चैत्र शु. १४ । वे. सं. १२५४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९०३. सुदर्शनचरित्र—माणिक्यनन्दि । अनु. १३० ब । पत्र सं. ७१ । ११×४॥ । ले. का. सं. १५७४, पौष कृ. १३, गुरुवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

९०४. ,, —माणिक्यनन्दि । अनु. २२५ ब । पत्र सं. ८२ । १०।×४॥ । ले. का. सं. १५६८, पौष शु. ५, गुरुवार । सरस्वती भवन, नागौर ।

९०५. सुदर्शनपंजिका—अज्ञात ।.अनु. ५७० ब । पत्र सं० १० । १०।।।×४।।। । ले. का. सं. १५७०, ज्येष्ठ शु. ३, बुधवार । जीर्ण व पूर्ण । सरस्वती भवन, नागौर ।

९०६. सुदर्शनचउपई—वस्तिग । अनु. २८४१।३४ । ले. का. सं. १४७३ । ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद ।

९०७. सुदर्शन पाथडी— × । पत्र सं. ७-९ । कडवक ६ । गुटका सं. १२ । वे. सं. २५० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९०८. सुप्पयदोहा—सुप्रभाचार्य । गुटका सं. २२ । पत्र सं. १४४-१५० । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९०९. सुप्पयदोहा—सुप्रभाचार्य । गुटका सं. ४८ । पत्र सं. २१४-२१८ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९१०. ,, —सुप्रभाचार्य । पत्र सं. १७७-८२ । दि. जैन मन्दिर अग्रवालों का, नैणवां (बूंदी) ।

९११. ,, —सुप्रभाचार्य । पत्र सं. ५३-५८ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

९१२. ,, —सुप्रभाचार्य । पत्र सं. १७ । ७८ दोहे । ८×३।।। । ले. का. सं. १७५१ । पूर्ण । निजी संग्रह में ।

९१३. ,, —सुप्रभाचार्य । अनु. २४१ । गुटका सं. ६ । पत्र सं. २४-२८ । वे. सं. २४४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९१४. ,, —सुप्रभाचार्य । अ १५१ । पत्र सं. २३ । १०॥×५ । ले. का. सं. १८३५, श्रावण शु. ४, सोमवार । दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

९१५. ,, —सुप्रभाचार्य । पत्र सं. १६ । १०॥×४॥ । ले. का. सं. १७९५, चैत्र कृ. १४, मंगलवार । दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९१६. सुप्पयदोहा—सुप्रभाचार्य। पत्र सं. २३। १०॥×४। ले. का. सं. १७९५, आषाढ़ कृ. ११, शुक्रवार। दि. जैन बड़ा मन्दिर, आगरा।

९१७. ,, —सुप्रभाचार्य। पत्र सं. ५३-५८। गु. सं. १०३। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

९१८. सुभद्राचरित—अभयगणि। अनु. २४८ (५)। पत्र सं. १०१-१०९। पाटन-भण्डार, पाटन।

९१९. सुलसाचरित्र—देवचन्द्रसूरि। अनु. ३०७(२)। पत्र सं. ४३ (२)। गाथा १७। पाटन-भण्डार, पाटन।

९२०. सुलोयणाचरिउ—देवसेनगणि। अनु. ११४। पत्र सं. २-१९८। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

९२१. ,, —देवसेनगणि। अनु. ३०८ ब। पत्र सं. २०१। ११×४॥। ले. का. सं. १५७६, मार्गशीर्ष शु. २, सोमवार। पूर्ण व जीर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

९२२. ,, —देवसेनगणि। अनु. १२४३। पत्र सं. ३७८। ले. का. सं. १५८७, आषाढ़ शु. २। वे. सं. १२६८। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९२३. ,, —देवसेनगणि। ले. का. सं. १५६०। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९२४. सुलोयणाचरिउ—देवसेनगणि। अनु. ४२। पत्र सं. २२३। १२।×६। ले. का. सं. १५९८, मार्गशीर्ष कृ. २। अपूर्ण। पत्र सं. २,६,८, ६० से १३४ तक नहीं है। दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

९२५. सोलहकारणपूजा—×। अनु. २४४। पत्र सं. १-१६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९२६. सूक्तिश्रेणी (सूक्तावली)—अज्ञात। अनु. ५९६। संस्कृत-अपभ्रंश। पत्र सं. ११४। आकार २५.४×११.१। ले. का. सं. १९४९। राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़।

९२७. सेणियचरिय—जयमित्रहल। ११ परिच्छेद। ले. का. सं. १७६६, श्रावण कृ. ५, भृगुवार। पूर्ण। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना।

९२८. सोलहकारणजयमाल सटिप्पण—रइधू। दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

९२९. सोलहकारणजयमाल—रइधू। पत्र सं. ७। आकार १३×६। सटिप्पण। पूर्ण। दि. जैन बीसपन्थी मन्दिर, दौसा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९३०. सोलहकारणजयमाल—रइधू। अनु. २३७। पत्र सं. १४। ११।×५। ले. का. सं. १८३५, सावन सुदी ५। पूर्ण। वे. सं. ७०। ठोलियों का दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

९३१. सोलहकारण पूजा—अनु. २४४। पत्र सं. १-१६। पूर्ण। गुटका सं. ९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जैन साहित्य शोध-संस्थान, महावीर भवन, जयपुर।

९३२. सोलहकारणजयमाल—। पत्र सं. १२६-१२८। पूर्ण। श्री दि. जैन तेरहपन्थी मन्दिर, सरस्वती भण्डार, मन्दसौर।

९३३. सोलहकारणपूजा—अनुक्रमांक ५७२५। गुटका सं. २। पत्र सं. ११५-१२२। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

९३४. स्थूलभद्रफागु—देपाल कवि। अनु. २८४१।३३। ले. का. सं. १४७३। ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद।

[ह]

९३५. हरिवंशपुराण—महाकवि धवल (सुपुत्र सूर)। अनु. ४१। पत्र सं. ४९६। १२।×६।। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

९३६. हरिवंशपुराण—महाकवि धवल। अनुक्रमांक १०४५। पत्र सं. ४७५। १२×५।।। ले. का. सं. १५७९, कार्तिक शु. ५। पूर्ण। वे. सं. २२३०। तेरहपन्थी दि. जैन बड़ा मन्दिर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९३७. ,, —महाकवि धवल। अनुक्रमांक ८९०। पत्र सं. २१६-३३९। १२×४।।। अपूर्ण एवं जीर्ण। वे. सं. १२५०। बधीचन्द दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

९३८. ,, —महाकवि धवल। अनुक्रमांक १९८३। पत्र सं. ५०३-५२३। १०×४।।। अपूर्ण। वे. सं. १९९६। दि. जैन मन्दिर पाटोदी-शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९३९. ,, —पुष्पदन्त। ले. का. सं. १४४१। अनु. ह्वो (v)११३५ भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

९४०. ,, —यशःकीर्ति। अनु. अ २ क। पत्र सं. १९७। ११×५। र. का. सं. १५००। ले. का. सं. १६४४, भादों सुदी ७, बुधवार। ४००० श्लोकप्रमाण। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

९४१. ,, (२) दूसरी प्रति। पत्र सं. १३० अ २ ख। १२×७।।। ले. का. सं. १९७८, वैशाख कृ. १३, बुधवार। पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९४२. हरिवंशपुराण—मुनि यशःकीर्ति । अनुक्रमांक १०४६ । पत्र सं. १७४ । ११×४॥ । पूर्ण । वें. सं. २२३१ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

९४३. ,, —यशःकीर्ति । दूसरी प्रति । अनुक्रमांक १०४७ । पत्र सं. १११ । ११॥×५॥ । ले. का. सं १६१८, वैशाख शु. ११ । वे. सं. २२३२ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

९४४. ,, —यशःकीर्ति । तीसरी प्रति । अनुक्रमांक १०४८ । पत्र सं. १४३ । १२×५ । ले. का. सं. १५४०, वैशाख कृ. १५ । वे. सं. २२३३ । दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

९४५. ,, —यशःकीर्ति । अनुक्रमांक ३१० । पत्र सं. १५१ । ११॥×५॥ । ले. का. सं. १६१५, श्रावण शु. १३ । पूर्ण । वे. सं. १६६ । ठोलियों का दि. जैन मन्दिर-शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९४६. ,, —यशःकीर्ति । अनुक्रसांक १९८४ । पत्र सं. १६६ । १०॥।×४॥ । ले. का. सं. १५७३, फाल्गुन शु. ९ । पूर्ण । वे. सं. ९८ । दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर ।

९४७. हरिवंशपुराण—यशःकीर्ति । अनुक्रमांक ४३५ ब । पत्र सं. १४२ । ११॥×५ । ले. का. सं. १६२७, चैत्र शु. ३ । दि. जैन सरस्वती भवन, नागौर ।

९४८. ,, —यशःकीर्ति । अनु. ३५१६ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

९४९. ,, —यशःकीर्ति । पत्र सं. १२९ । ११×५ । ले. का. सं. १६६१ । पूर्ण । वे. सं. २१ । दि. जैन मन्दिर, सम्भवनाथ, उदयपुर ।

९५०. ,, —यशःकीर्ति । अनु. ३०८६ । पत्र सं. ८० । ले. का. सं. १९९२ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

९५१. ,, —भ. यशःकीर्ति । र. का. सं. १५०० । ले. का. सं. १६४४ । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली ।

९५२. ,, —भ. यशःकीर्ति । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

९५३. ,, —पं. रइधू । अनु. १२६८ । पत्र सं. १२९ । र. का. वि. सं. १५९५ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

९५४. ,, —पं. रइधू । अनु. ४०८ । सरस्वती भवब, ब्यावर ।

९५५. ,, —पं. रइधू । जैन सिद्धान्त भवन, आगरा ।

९५६. ,, —महाकवि स्वयम्भू । अनु. ३२२० । पत्र सं. ३०१ । सरस्वती भवन, ब्यावर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९५७. हरिवंशपुराण—महाकवि स्वयम्भू। अनु. ३४०७, ४६४०। दोनों पूर्ण प्रतियाँ हैं। सरस्वती भवन, ब्यावर।

९५८. ,, —महाकवि स्वयम्भू। अनुक्रमांक ५३६। पत्र सं. ४०६। १३×५। ले. का. सं. १५८२, फाल्गुन कृ. १३। पूर्ण। वे. सं. १२३। बधीचंद दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

९५९. ,, —स्वयम्भू। अनु. ११७७। ले. का. सं. १५८२। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

९६०. ,, —महाकवि स्वयम्भू। अनुक्रमांक १९८५। पत्र सं. २०। ९×४॥। अपूर्ण। वे. सं. ४५०। दि. जैन छोटे दीवान जी का मन्दिर, जयपुर।

९६१. ,, —श्रुतकीर्ति। अनु. १३९३। पत्र सं. ४१७। ९॥×५। ले. का. सं. १६०७। वे. सं. १४३२। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

९६२. ,, —श्रुतकीर्ति। र. का. सं. १५५२। जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

९६३. ,, —श्रुतकीर्ति। अनु. १२६३। दि. जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर।

९६४. हरिषेणचरित्र—अज्ञात। अनु. १४०८। पत्र सं. २४। १०×४॥। ले. का. सं. १५९३। वे. सं. १४४७।

९६५. हरिषेणचरिउ—अज्ञात। अनुक्रमांक १२३५। पत्र सं. २-२४। ९×४॥। अपूर्ण। वे. सं. २२४९। तेरहपन्थी दि. जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर।

९६६. हरिषेणचरिउ—अज्ञात। दूसरी प्रति। अनुक्रमांक १२३६। पत्र सं. १७। ११×४॥। ले. का. सं. १५५१, मंगसिर कृ. ८, गुरुवार। पूर्ण। वे. सं. २२५०। तेरहपन्थी दि. जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर।

९६७. ,, —अज्ञात। अनुक्रमांक ५१० ब। पत्र सं. २२। १०॥×४॥। जीर्ण एवं पूर्ण। सरस्वती भवन, नागौर।

९६८. हिन्दोला—ब्रह्मदीप। पत्र सं. ४-७। गुटका सं. ५। वे. सं २४३। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ अध्याय

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश का उपलब्ध साहित्य

पुस्तक के तृतीय अध्याय में शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध अपभ्रंश की पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि सूची में लगभग सभी रचनाओं का विवरण संकलित हो गया है, किन्तु उन के अतिरिक्त कई ऐसी रचनाएँ मिलती हैं, जिन के सम्बन्ध में अभी तक सामान्य जानकारी ही प्राप्त हो सकी है। अतएव अलग से सम्पूर्ण साहित्य का निर्देश करना आवश्यक हो गया है। यहां पर प्रकाशित तथा अप्रकाशित दोनों ही तरह की रचनाओं की सूची प्रस्तुत है। इस से यह पता लग सकेगा कि अब कुल मिला कर अपभ्रंश का कितना साहित्य उपलब्ध है।

अज्ञात कर्तृक रचनाएँ

१. भरतजयमाला
२. णाणपिंड की पाथडी
३. नेमीश्वरनियंछण
४. ज्ञानपिंडसार
५. कसायपाथडी
६. आदिजिनकलश
७. श्रावकविधिप्रकरण
८. द्वादशभावनाविचार
९. नेमीश्वरजयमाल
१०. बुद्धिरसायण दोहडा
११. कालावली की जयमाला
१२. सप्ततत्व
१३. अनुप्रेक्षा
१४. समाधि
१५. संबोधिरसायण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६. विज्जुच्चरजयमाल
१७. दशलाक्षणिक जयमाल
१८. सप्तऋषिपूजा
१९. सिद्धपूजा जयमाल
२०. क्षमावाणी अर्घ
२१. क्षेत्रपालपूजा
२२. गणधरवलयपूजा
२३. अर्हंकार अक्षर की पूजा
२४. सिंहसम्बोधनजयमाल
२५. जिणरत्तिकहा
२६ रोहिणीकहा
२७. भिल्लाष्टमीकथा
२८. मुत्तावलीकहा
२९. मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा
३०. णवकारपाथडी
३१. शिवकुमार की जयमाल
३२. सुदंसणपाथडी
३३. भरतबाहुवली सम्बन्ध
३४. गौतमरासा
३५. कुमारपालप्रबन्ध
३६. दगड
३७. सालिभद्रमाइ
३८. स्तुतिद्वात्रिंशिका
३९. नेमिनाथबोली
४०. भावनासार
४१. वीरजिनपारणक
४२. ऋषभजिनस्तुति
४३. नवकारफलकुलक
४४. सीतासत
४५. शकुनविचार
४६. भूमिज्ञान
४७. वीरविज्ञप्तिका
४८. ज्ञानप्रकाशकुलक
४९. मुनिचन्दस्तुति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०. शान्तिजिनस्तुति
५१. नवफणश्रीपार्श्वनाथनमस्कार
५२. जिनस्तोत्र
५३. धर्मोपदेश
५४. अंजनासुन्दरीकथा
५५. जन्माभिषेक
५६. दूहामाई
५७. संवेगमाई
५८. वज्रस्वामिचरित्र
५९. जिनवल्लभसूरिगीत,
६०. अणंतवयकहा
६१. हरिसेणचरिउ
६२. मुक्तावलीकथा
६३. पार्श्वजिनजन्मकलश
६४. विचारगाथा
६५. माईचउपई
६६. जिनगणधरनमस्कार
६७. पश्चात्तापकुलक
६८. गौतमचरित्रकुलक
६९. ऋषभजिनजन्माभिषेक
७०. गुरुस्तुतिचाचरी
७१. महावीरचरित्र
७२. जम्बूचरित्र
७३. सुकौशलचरित्र
७४. धर्मसूरिस्तुति
७५. स्थूलभद्र
७६. सौभाग्यसुंदरीकथा
७७. सूक्तश्रेणि
७८. नीलंजसापाथडी
७९. जिनचन्द्रसूरिफागु
८०. सुदर्शनपंजिका
८१. सिद्धपूजाजयमाल
८२. साटक
८३. शान्तिनाथबोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८४. विज्जुच्चरअणुपेहा
८५. रोहिणुरास
८६. राजा दशरथजयमाल
८७. भरतचक्रवर्ती पाथडी
८८. भरतबाहुबलि
८९. भरतेश्वरजयमाल
९०. भरतेश्वरवैराग्य
९१. भववैराग्यशतक
९२. बाहुबलिपाथडी
९३. पोसहरास
९४. त्रिशत्जिनचउबीसी
९५. नन्दीश्वरजयमाल
९६. नन्दीश्वरद्वीपपूजा
९७. नन्दीश्वरभक्ति
९८. नन्दीश्वरचतुर्दिगाश्रितपूजा
९९. दीतवारकथा
१००. अष्टाह्निकापूजा
१०१. आदिनाथ की आरती
१०२. अकृत्रिमचैत्यालयजयमाल
१०३. लक्ष्मीवल्लभ
१०४. यशोधर की जयमाल
१०५. जोगठरास
१०६. पात्रपरीक्षा
१०७. कमलजयमाला
१०८. नवकाररास
१०९. थूलिभद्दरासु
११०. शान्तिनाथरास
१११. केसीगोयमसंधि
११२. जम्बूस्वामिसत्कवस्तु
११३. नेमिनाथरास
११४. धर्मचच्चरी
११५. चच्चरी
११६. दिघम सवरीभास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. अनन्तकीर्तिगुरु—पुप्फंजलिकहा ।
२. अब्दुलरहमान—सन्देशरासक (मुद्रित) ।
३. अभयगणि—सुभद्राचरित (रचनाकाल वि. सं. ११६१) ।
४. अभयदेवसूरि—महावीरचरित्र । १२७ (२), पाटन भण्डार, पाटन ।
५. अभयतिलकगणि—महावीर रास (र. का. १२६० ई.), पद सं. २१ ।
६. अम्बदेवसूरि—समरारास (र. का. सं. १३०१), (मुद्रित) ।
७. अमरकीर्ति—णेमिणाथचरिउ, सोनागिरीय भट्टारक-भण्डार (र. का. सं. १२४४), छक्कमोवएस, १४ सन्धि (र. का. सं. १२४७), पुरन्दरविहाणकहा (र. का. सं. १२७५), (महावीरचरिउ, जसहरचरिउ, झाणपईव—अनुपलब्ध) ।
८. अमर मुनि—छन्दोरत्नावली, पत्र सं. १८, हेमचन्द्र जैन ज्ञान मन्दिर, पाटन, क्र. सं. ९७४६ ।
९. अल्हू कवि—अणुवेक्खा ।
१०. असवाल—पासणाहचरिउ (र. का. सं. १४७९) ।
११. आजड—सरस्वतीकण्ठाभरणवृत्ति ।
१२. आसिग—जीवदयारास (र. क. सं. १२५७), पद सं. ५३, चन्दनबालारास (र. का. तेरहवीं शताब्दी), पद सं. ३५ ।
१३. ईसर—अनुप्रेक्षा ।
१४. ईश्वरगणि—शीलसन्धि ।
१५. उदयकीर्ति—सुयंधदहमीकहा (मुद्रित भारतीय ज्ञानपीठ) ।
१६. उदयकीर्ति मुनि—कमलजयमाला, भानपुरा दि. जैन मन्दिर-शास्त्रभण्डार ।
१७. ऋषभदास—रत्नत्रयपूजा ।
१८. कनककीर्ति—नन्दीश्वरजयमाला, जिनालयमनन जयमाल, नन्दीश्वरद्वीपपूजा ।
१९. कनकामर—करकण्डचरिउ (११वीं शताब्दी), भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित ।
२०. कुमुदचन्द्र मुनि—नेमिनाथरास ।
२१. गुणभद्र भट्टारक—अणंतवयकहा, सवणबारसिविहाणकहा, पक्खवयकहा, णह (आयास) पंचमीकहा, चंदायणवयकहा, चंदणछट्ठीकहा, णरयउतारीदुद्धारसकहा, णिद्दुहसत्तमीकहा, मउडसत्तमीकहा, पुप्फंजलिवयकहा, रोहिणीविहाणकहा, रयणत्तयवयकहा, दहलक्खणवयकहा, लद्धिविहाणकहा, सोलहकारणवयकहा, सुयंध-दहमीकहा, अक्षयविधानकथा, ३ कडवक (तेरहपंथी दि. जैन मन्दिर, जयपुर) ।
२२. चारितसेन मुनि—समाधिरास, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।
२३. छत्रसेन—रुक्मिणीविधानकथा ।
२४. पं. जगसी—अनुप्रेक्षा, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।
२५. जयकीर्ति—पार्श्वनाथभवान्तर ।
२६. जयदेवगणि—भावनासन्धि (र. का. सं. १६०६ ?) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. जयमित्रहल—श्रीपालचरित्र, वर्द्धमानचरित्र, मल्लिनाथकाव्य, श्रेणिकचरित्र, ११ सन्धि, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

२८. जयशेखरसूरिशिष्य—शीलसन्धि गाथा ३४, उपधानसन्धि गाथा २५, (र. का. पन्द्रहवीं शताब्दी)।

२९. जयसागर—वज्रस्वामीरास।

३०. जल्हिग—अनुप्रेक्षारास, दि. जैन मन्दिर, बड़ौत (मेरठ)।

३१. जिनदत्तसूरि—उपदेशरसायनरास (वि. सं. ११३२–१२१०), चर्चरी, कालस्वरूप-कुलक।

३२. जिनधर्मसूरि—बारह नावउं (१३ वीं शताब्दी)।

३३. जिनपद्मसूरि—सिरिथूलभद्रफागु (वि. सं. १३९० के लगभग)।

३४. जिनप्रभसूरि—नर्मदासुन्दरीसन्धि (वि. सं. १३२८), ४ कडवक, जिनागमवचन, जिनमहिमा, भावनाकुलक, दूहामाई, अनाथिसन्धि, अन्तरंगरास, अन्तरंगविवाह, चउरंगसंघि (५ कडवक), मयणरेहासंघि (१२४१ ई.), जीवानुशास्तिसंधि, ज्ञानप्रकाशकुलक, दानादिकुलक, धर्माधर्मविचारकुलक, धर्मोपदेशकुलक, भावनासार श्रावकविधि, सिद्धिकुलक, सुभाषितकुलक, भव्यचरित, भव्यकुटुम्बचरित, वज्र-स्वामीचरित (वि. सं. १३१६), सीतासत्त्व, चाचरिस्तुति, ऋषभचरितस्तवन, मल्लिनाथचरित्र, चैत्यपरिपाटी, मोहराजविजय, मुनिसुव्रतस्वामीस्तोत्र, जिनजन्मा-भिषेक, आत्मसंबोध, श्रावकविधि, जिनागमवचन, जिनमहिमा, अंतरंगरास, नेमि-रास, जिनजन्ममहोत्सवस्तवन, नर्मदासुंदरीसंधि, पद्मावती चौपई।

३५. जिनप्रभाचार्य—ज्ञानप्रकाशकुलक (पाटन-भण्डार)।

३६. जिनभद्र—सुभाषितकुलक।

३७. जिनवरदेव—बुद्धिरसायण।

३८. जिनसिंहसूरि—सालिभद्रचरित, सरस्वती भवन, नागौर।

३९. जिनेश्वरसूरि—भावनाकुलक, विवाहलउ (पाटन-भण्डार)।

४०. पं. जोगदेव—द्वादशानुप्रेक्षा २० कडवक, मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा, लश्करी दि. जैन मन्दिर, जयपुर।

४१. ज्ञानभूषण गुरु—पोहसरास, ११५ पद, षट्कर्मरास ५२ गाथा।

४२. ठाकुरसी—संतिणाहचरिउ (र. का. सं. १६५२), ५ सन्धि, महापुराणकलिका (र. का. सं. १६५०), मेघमालावयकहा।

४३. तिल्हण—कुट्टणिरासय।

४४. तेजपाल—संभवजिणणाहचरिउ, ६ सन्धि, वरांगचरिउ, ४ सन्धि (र. का. सं. १५०७), पासणाहपुराणु (र. का. सं. १५१५)।

४५. पं. दर्शनविजय—विजयतिलकसूरिरास (वि. सं. १६७९), (मुद्रित)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६. दामोदर कवि—सिरिपालचरिउ, ४ सन्धि, णेमिणाहचरिउ (र. का. सं. १२८७), चंदप्पहचरिउ (कोटड़ियों का दि. जैन मन्दिर, डूंगरपुर)।

४७. पं. दामोदर—उक्तिव्यक्तिप्रकरण, सिंघी जैन ग्रन्थमाला से मुद्रित।

४८. देपाल कवि—आर्द्रकुमारविवाहलु, थूलभद्रफागु।

४९. देवचन्द—पासणाहचरिउ।

५०. देवचन्द्रसूरि—सुलसाचरित्र (र. का. सं. ११९१), सुभद्राचरित (सं. ११६१), सांतिणाहचरिउ (सं. ११६०), स्थूलभद्रसन्धि।

५१. देवदत्त—जम्बूसामिचरिउ, सरस्वती भवन, नागौर। वरांगचरित, शान्तिनाथ-पुराण, अम्बादेवीरास (अनुपलब्ध)।

५२. देवनन्दी—रोहिणीविहाणकहा।

५३. देवसूरि—उपदेशकुलक।

५४. देवसेन—आराहणासार, सरस्वती भवन, नागौर।

५५. देवसेनगणि—सुलोयणाचरिउ, २८ सन्धि (पन्द्रहवीं शताब्दी)।

५६. देल्ह कवि—चउवीसी (र. का. सं. १३७१), पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

५७. देल्हण—गयसुकुमालरास (र. का. १२५० ई.), पद सं. १८।

५८. धनपाल (श्वेताम्बर)—सत्यपुरीयमण्डनमहावीरोत्साह (ग्यारहवीं शताब्दी), पद्य सं. १५।

५९. धनपाल—भविसयत्तकहा (मुद्रित)।

६०. धनपाल (पालनपुर, गुर्जरदेशीय)—बाहुवलिचरिउ, १८ सन्धि, (र. का. सं. १४५४)।

६१. धर्मसूरि—जंबूसामिरास (र. का. सं १२६६), प्राचीन गुर्जरकाव्यसंग्रह में प्रकाशित।

६२. धवल कवि—हरिवंसपुराणु, १२२ सन्धि।

६३. धाहिल—पउमसिरिचरिउ (ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग) (मुद्रित)।

६४. नयनन्दी—सुदंसणचरिउ (मुद्रित), सयलविहिविहाणकाव्य।

६५. नरसेन—सिद्धचक्ककहा (सिरिपालचरिउ), जिणरत्तिविहाणकहा, वड्ढमाणकहा।

६६. नेमचन्द—रविवउकहा, अणंतवयकहा।

६७. नेमिदत्त—जिनमाला, भानपुरा शास्त्र-भण्डार।

६८. पउम—सालिभद्दकक्क, पाटन-भण्डार।

६९. पद्मकीर्ति—पासणाहचरिउ, १८ सन्धि (र. का. सं. ९९९)।

७०. परमेसर कवि—छहकालचक्कुसमासु (जैन सन्देश शोधांक १४२ में प्रकाशित, अगस्त, १९६२)।

७१. पाल्हण—आबूरास (र. का. १२३३ ई.), पद सं. ५१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७२. पाहिल—मणुयसन्धि, मनकरहारास (आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर)।

७३. पुष्पदन्त महाकवि—महापुराण, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ (दसवीं शताब्दी), उत्तरपुराण (३८-१०२ सन्धि) अप्रकाशित।

७४. पूर्णभद्र मुनि—सुकुमालसामिचरिउ, ६ सन्धि।

७५. पोमा कवि—शालिभद्रफागु।

७६. प्रज्ञातिलकसूरि—कछूलीरास (र. का. सं. १३६३)।

७७. बालचन्द्र मुनि—निरदुहसत्तमीकहा, रविवउकहा, णरयउतारीदुद्धारसकहा।

७८. बूचिराज (वल्ह)—मयणजुज्झ (र. का. सं. १५८९), सन्तोषतिलकजयमाल, नेमीश्वर का बारहमासा।

७९. ब्र. उंदू—चैतिरासा।

८०. ब्र. जिनदास—होलिकाचरित, पत्र सं. ४, झालरापाटन-भण्डार।

८१. ब्रह्मनेमिदत्त—मालारोहिणी।

८२. ब्रह्ममुनि—दशधर्म।

८३. भगवतीदास—मिगांकलेहाचरिउ, ४ सन्धि, (र. का. सं. १७००), मउडसत्तमा-कहा, सुयंधदहमीकहा।

८४. महणसिंह—त्रिशत्‌जिनचउवीसी।

८५. महयंद (महीचंद)—दोहापाहुड (बारक्खरी ३३५ दोहे), आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८६. महाणंद—आणंदा (४३ दोहे), आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

८७. महिन्दु (महेन्द्र)—शान्तिनाथपुराण (र. का. सं. १५८७)।

८८. माघनंदि—मालारोहण, श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

८९. महीराज—बुद्धिरसायण, पत्र सं. ३०, सरस्वती भवन, नागौर।

९०. महेन्द्रसूरिशिष्य—जम्बूस्वामीचरिय।

९१. महेश्वरसूरि—संजममंजरी (तेरहवीं शताब्दी के लगभग)।

९२. माणिक्कचंद—सत्तवसणवज्जणकहा (र. का. सं. १६३४)।

९३. माणिक्यनन्दि—सुदर्शनचरित्र, पत्र सं. ८२, सरस्वती भवन, नागौर।

९४. माणिक्यराज कवि—अमरसेनचरिउ, ७ सन्धि, (र. का. सं. १५७६), णाय-कुमारचरिउ (र. का. सं. १५७८)।

९५. माणिक्यसुन्दर—नेमिनाथकुमारराजीमतीचरित्रफागु।

९६. मुनि कुमुदचंद—नेमिनाथरास, (१४ वीं शताब्दी के लगभग)।

९७. मुनि चन्द्र—जिनपंचकल्याणकस्तोत्र।

९८. मुनि चारितसेन—समाधिरास।

९९. मेरुनन्दन—श्रावकविधिरास।

१००. यशःकीर्ति—चंदप्पहचरिउ, ११ सन्धि (तेरहवीं शताब्दी के लगभग)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०१. भ. यशःकीर्ति—पाण्डवपुराण (र. का. सं. १४९७), ३४ सन्धि, हरिवंशपुराण, १३ सन्धि, (र. का. सं. १५००), जिनरात्रिविधानकथा, रविव्रतकथा, दशलक्षणधर्मकथा, सरस्वती भवन, बम्बई।

१०२. योगीन्द्रदेव—परमप्पयासु (अध्यात्मप्रकाश), जोयसार (योगसार)।

१०३. पं. रइधू—पउमचरिउ, ११ सन्धि, हरिवंशपुराण १४, सन्धि, आदिपुराण(अनु.), पासणाहपुराणु, ७ सन्धि, बलहद्दपुराण, ११ सन्धि, सम्मत्तगुणनिधान (र. का. सं. १४९२), ४ सन्धि, मेहेसरचरिउ, १३ सन्धि, जीवंधरचरिउ, १३ सन्धि, जसहरचरिउ, ४ सन्धि, पुण्णासवकहाकोसु, १३ सन्धि, धण्णकुमारचरिउ, ४ सन्धि, सुकोसलचरिउ, ४ सन्धि, सम्मइजिनचरिउ, १० सन्धि, सिद्धचक्कवयविहि (सिरिपालकहा) १० सन्धि, वित्तसार, सिद्धान्तार्थसार, अप्पसंबोहकव्व ३ सन्धि, अणथमीकहा १९ पद्य, सम्मत्तकउमुदी, दशलक्षणजयमाला, षोडशकारणजयमाला ७ पत्र, सम्यक्त्वभावना, सोहंथुदि, श्रावकव्रतसार, अनुप्रेक्षा (आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर), उपदेशरत्नमाला (अनुपलब्ध) संतिणाहचरिउ, णेमिणाहचरिउ, १४ सन्धि, सावयचरिउ, ६ सन्धि, करकंडुचरिउ, सुदंसणचरिउ, पज्जुण्णचरिउ, भविसयत्तचरिउ।

१०४. रत्नशेखरसूरि—शीलसन्धि, केशीगौतमसन्धि।

१०५. रत्नप्रभसूरि—उपदेशमाला (र. का. सं. १२३८) के अन्तर्गत :—
१. ऋषभपारणकसन्धि, गाथा ७८, २. महावीरचन्दनबालापारणासन्धि, गाथा १०१, ३. गजसुकुमालसन्धि, गाथा ८५, ४. शालिभद्रमहाऋषिसंधि, गाथा ९४, ५. अवन्तिसुकमालसन्धि, गाथा ५७, ६. मेतार्यमहामुनिसन्धि, गाथा २०३, ७. पुरर्णिसन्धि, पद्य ३२।

१०६. रत्नसिंहसूरिशिष्य—उवएसमालकहाणछप्पय।

१०७. रल्ह कवि—जिनदत्तचउपई (र. का. सं. १३५३)।

१०८. राजतिलक—सालिभद्ररासु (ले. का. सं. १३८१), पद सं. ४२।

१०९. राजशेखरसूरि—नेमिनाथफागु (र. का. सं. १४०५ के लगभग)।

११०. रामसिंह मुनि—दोहापाहुड (दसवीं शताब्दी के लगभग), (मुद्रित)।

१११. भ. ललितकीर्ति—जिनरात्रिकथा, ज्येष्ठजिनवरकथा।

११२. लक्ष्मण (गोनंदवासी)—णेमिणाहचरिउ, ४ सन्धि (१४ वीं शताब्दी के लगभग)।

११३. लक्ष्मीचन्द—द्वादशानुप्रेक्षा, सावयधम्मदोहा (नवकारश्रावकाचार) (मुद्रित)।

११४. लक्ष्मीतिलक गणि—शान्तिनाथदेवरास (र. का. तेरहवीं शताब्दी), पद सं. ६०।

११५. लाखू (लक्ष्मण)—जिणदत्तकहा, ११ सन्धि (र. का. सं. १२७५), अणुवयरयणपईव, ८ सन्धि, (वि. सं. १३१३), चन्दणछट्ठीकहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११६. लावण्यसमय—नेमिजिनवरप्रबन्ध (र. का. सं. १५४६), आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

११७. वज्रसेनसूरि—भरतेश्वर बाहुबलिघोररास (र. का. सं. ११६६ के लगभग), कडवक सं. ५ ।

११८. वरदत्त—वज्रस्वामीचरित्र, २ सन्धि, (तेरहवीं शताब्दी के लगभग) ।

११९. वर्द्धमानसूरि—वीरजिनिन्दपारणक ।

१२०. वल्हव—नेमीश्वरगीत, दि. जैन. शास्त्र-भण्डार, श्री महावीर जी ।

१२१. वस्तिग—सुदर्शनचउपई, चतुर्गतिचतुष्पदिका ।

१२२. विजयसिंह—अजितनाथपुराण, १० सन्धि (र. का. सं. १५०५) ।

१२३. विजयसेनसूरि—रेवंतगिरिरास (र. का. सं. १२८७), (मुद्रित) ।

१२४. विद्यापति—कीर्तिलता (पन्द्रहवीं शताब्दी), (मुद्रित) ।

१२५. विनयचन्द मुनि—चूनडीरास, निज्झरपंचमीविहाणकहा, पंच कल्याणकरास, दुद्धारसकहा ।

१२६. विनयचन्द्र—आनन्दश्रावकसन्धि ।

१२७. विनयचन्द्रसूरि—नेमिनाथचउपई (र. का. सं. १२५७), मल्लिनाथकाव्य, पार्श्वनाथचरित, आनन्दसन्धि ।

१२८. विनयप्रभ उपाध्याय—गौतमस्वामीरास (र. का. सं. १४१२), पद सं. ६३ ।

१२९. विबुध श्रीधर—भविसयत्तकहा (र. का. सं. १२३०) ।

१३०. विमलकीर्ति—सोखवरविधान कथा, सुगंधदशमी कथा ।

१३१. वीर गणि—लघु अजितशान्ति (पाटन-भण्डार) ।

१३२. शान्तिभद्र—चतुर्विंशतिजिननमस्कार ।

१३३. शान्तिसमुद्र—नवफणपार्श्वनमस्कार ।

१३४. शालिभद्रसूरि—भरतेश्वरबाहुबलिरास (र. का. सं. १२४१), (मुद्रित), बुद्धिरास (मुद्रित) ।

१३५. शालिभद्रसूरि—पंचपंडवचरितरास (र. का. सं. १४१०) (मुद्रित) ।

१३६. शुभकीर्ति—सांतिणाहचरिउ, १९ सन्धि, सरस्वती भवन, नागौर ।

१३७. श्रीचन्द—कहाकोसु, ५३ सन्धि, रयणकरंडसावयायार, २१ सन्धि (र. का. सं. ११२३) ।

१३८. श्रीचन्द—चन्दप्पहचरिउ (र. का. सं. १७९३) ।

१३९. श्रीधर—पासपुराण १२ सन्धि (र. का. सं. ११८९), वड्ढमाणचरिउ (र. का. सं. ११९०), सुकुमालचरिउ, ६ सन्धि (र. का. सं. १२०८), चन्दप्पहचरिउ (अनुपलब्ध) ।

१४०. श्रुतकीर्ति—हरिवंशपुराण (र. का. सं. १५५२), परमेष्ठीप्रकाशसार, ७ सन्धि (र. का. सं. १५५३), धर्मपरीक्षा (सं. १५५३), योगसार (सं. १५५२) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४१. श्रुतमुनि—भावसंग्रह, पत्र सं. ९, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
१४२. सहजज्ञान—जिनचन्द्रसूरिविवाहलु।
१४३. सहणपाल—त्रिंशत्चतुर्विंशतितीर्थंकरपूजाजयमाल (प्रकाशित)।
१४४. सागरदत्तसूरि—पार्श्वपुराण, जम्बूसामिचरिउ, ११, सन्धि (र. का. सं. १०७६)।
१४५. साधारण पं.—कोकिलापंचमीकहा, मुकुटसप्तमीकथा, दुधारसीकथा, रविवासर-कथा, तिकालचउवीसी, पुप्फंजलिकहा, निर्दुःखसप्तमीकथा, निर्झरपंचमीकथा, अनुप्रेक्षा।
१४६. साधारण सिद्धसेन—विलासवईकहा, ११ सन्धि (र. का. सं. ११२३)।
१४७. साधुसुन्दरगणि—उक्तिरत्नाकर (मुद्रित)।
१४८. सिद्ध या सिंह कवि—पज्जुण्णचरिउ, १५ सन्धि, प्रवोधसार, पत्र सं. १२४, सरस्वती भवन, ब्यावर।
१४९. सुरजण पं.—आदित्यवारकथा, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
१५०. सुप्रभाचार्य—सुप्पयदोहा (वैराग्यसार के नाम से भण्डारकर एनल्स में प्रकाशित)।
१५१. सुमतिगणि—नेमिनाथरास (तेरहवीं शताब्दी के लगभग) (मुद्रित)।
१५२. सोड्ढल—आगम के अष्ट पद।
१५३. सोमतिलक—कुमारपालदेवरास।
१५४. सोमप्रभसूरि—कुमारपालप्रतिबोध (मुद्रित)।
१५५. सोमसेन—चिन्तामणिपार्श्वनाथपूजा, दिगम्बर जैन नया मन्दिर, दिल्ली।
१५६. सोलण—चच्चरि (पाटन-भण्डार)।
१५७. स्वयम्भू—पउमचरिउ (मुद्रित), रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण), स्वयम्भू-छन्द (मुद्रित), (पंचमीकहा, स्वयम्भू व्याकरण, अनुपलब्ध)।
१५८. हरिचन्द—अणत्थमियकहा, दशलक्षणकथा, नारिकेरकथा, पुष्पांजलिकथा।
१५९. हरिदेव—मयणपराजयचरिउ (भारतीय ज्ञानपीठ से मुद्रित)।
१६०. हरिश्चन्द—वड्ढमाणकव्व, ११ सन्धि, जैन सिद्धान्त भवन, आरा।
१६१. हरिभद्रसूरि—सनत्कुमारचरित (र. का. सं. १२१६) (मुद्रित)। णेमिणाहचरिउ (मुद्रित)।
१६२. हरिषेण—धम्मपरिक्खा, ११ सन्धि (र. का. सं. १०४४)।
१६३. हरिसिंह साधु—सम्यक्त्वकौमुदी (प्रकाशित अनेकान्त, ११,२)।
१६४. हेमचन्द्रसूरि—सिद्धहेमशब्दानुशासन, देशीनाममाला (मुद्रित)।
१६५. हेमसारकवि—उपदेशसन्धि, गाथा १९।

आठवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य :

१. सरहपा (७६० ई.)—चर्यागीतियाँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. शबरपा (७८० ई.)—चर्यागीतियाँ ।
३. चउमुह—पउमचरिउ, णेमिणाहचरिउ, पंचमीकहा (तीनों अनुपलब्ध) ।
४. स्वयम्भू—आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध—पउमचरिउ, हरिवंशपुराण, स्वयम्भूछन्द, (पंचमीकहा तथा स्वयम्भूव्याकरण, अनुपलब्ध) ।

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य—

१. रामसिंह—पाहुडदोहा ।
२. पद्मकीर्ति—(र. का. सं. ९९९) पार्श्वपुराण ।
३. पुष्पदन्त—(वि. सं. १०१६) महापुराण, नागकुमारचरित्र, यशोधरचरित्र ।
४. हरिषेण—(वि. सं. १०४४)–धर्मपरीक्षा ।
५. धवलकवि—ग्यारहवीं शताब्दी–हरिवंशपुराण ।
६. कनकामर—दसवीं शताब्दी–करकण्डुचरित्र ।
७. देवदत्त—(वि. सं. १०५०)–वरांगचरिउ, संतिणाहचरिउ, अम्बादेवीरास (अनुपलब्ध) ।
८. वीरकवि—(वि. सं. १०७६)–जम्बूसामिचरिउ ।
९. नयनन्दी—(वि. सं. ११००)–सुदंसणचरिउ, सयलविहिविहाणकहा ।
१०. श्रीचन्द—(वि. सं. ११२०)–रयणकरंडसावयायार, कथाकोष ।
११. साधारण सिद्धसेन—(वि. सं. ११२३)–विलासवईकहा ।
१२. देवसेन—(वि. सं. ११३२)–सुलोयणाचरिउ ।
१३. धनपाल (श्वेताम्बर)–ग्यारहवीं शताब्दी–सत्यपुरीयमण्डनमहावीरोत्साह ।

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य—

१. वज्रसेनसूरि—(११६६ ई. के लगभग)–भरतेश्वरबाहुबलिघोरराास ।
२. धाहिल—बारहवीं शताब्दी–पउमसिरीचरिउ ।
३. जिनदत्तसूरि—(वि. सं. ११७१)–उपदेशरसायनरास, चर्चरी, कालस्वरूपकुलक ।
४. विबुधश्रीधर—(वि. सं. ११८९)–पार्श्वनाथचरित्र, वर्द्धमानचरित्र ।
५. हेमचन्द्रसूरि—(सं. ११४५-१२२९)–सिद्धहेमशब्दानुशासन, देशीनाममाला ।
६. श्रीधर—(वि. सं. १२०८)–सुकुमालचरिउ ।
७. विबुधश्रीधर—(वि. सं. १२३०)–भविष्यदत्तकथा ।
८. अमरकीर्तिगणि—(वि. सं. १२४४-१२४८)–नेमिनाथपुराण, षट्कर्मोपदेश, पुरन्दरविधानकथा, ध्यानप्रदीप, शान्तिनाथचरित्र ।
९. पूर्णभद्रमुनि—तेरहवीं शताब्दी–सुकुमालचरिउ ।
१०. लाखू—(वि. सं. १२७५)–जिनदत्तचरित्र ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. लक्ष्मण—तेरहवीं शताब्दी–नेमिनाथचरित्र ।
१२. यशःकीर्ति—तेरहवीं शताब्दी–चन्द्रप्रभचरित्र ।
१३. सोमप्रभसूरि—(वि. सं. १२४१)–जीवमनःकरणसंलापकथा, स्थूलभद्रकथा, कुमारपालचरित ।
१४. शालिभद्र—(वि. सं. १२४१)–भरतबाहुबलीरास ।
१५. हरिभद्रसूरि—(वि. सं. १२१६)—सनत्कुमारचरित, नेमिनाथचरित्र ।
१६. विनयचंद—(वि. सं. १२३३)—चूनडीरास, पंचकल्याणकरास, निर्झरपंचमीकथा ।
१७. आसिग कवि—(वि. सं. १२५७)—जीवदयारास, चन्दनबालारास ।
१८. धर्मसूरि—(वि. सं. १२६६)—जम्बूस्वामीरास ।
१९. कवि दामोदर—(वि. सं. १२८७)—नेमिनाथचरित्र ।
२०. विजयसेनसूरि—(वि. सं. १२८८) रेवंतगिरिरास ।
२१. देवनन्दी—तेरहवीं शताब्दी—रोहिणीव्रतविधानकथा ।
२२. उदयचन्द—तेरहवीं शताब्दी—सुगन्धदशमीकथा ।
२३. मुनि बालचन्द—तेरहवीं शताब्दी—निर्दुःखसप्तमीकथा ।
२४. लक्ष्मीतिलकगणि—तेरहवीं शताब्दी—शान्तिनाथदेवरास ।
२५. पाल्हण—(१२३३ ई.)—आबूरास ।
२६. अभयतिलकगणि—(१२६० ई.)—महावीररास ।
२७. विमलकीर्ति—तेरहवीं शताब्दी–सोखवइविधानकथा ।
२८. सुमतिगणि—तेरहवीं शताब्दी–नेमिनाथरास ।
२९. कवि सिद्ध या सिंह—तेरहवीं शताब्दी–प्रद्युम्नचरित्र ।
३०. जिनप्रभसूरि—(१२७२ ई.)–नमयासुंदरि संधि ।
३१. देल्हण—(१२५० ई.)–गयसुकुमालरास ।

चौदहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य—

१. जिनपद्मसूरि—वि. सं. १३९० के लगभग—सिरिथूलभद्रफागु ।
२. जिनप्रभसूरि—वि. सं. १३१६—वज्रस्वामीचरित ।
३. देल्ह कवि—वि. सं. १३७१—चउबीसी ।
४. पाहल—१४वीं शताब्दी—मनकरहारास, मणुयसन्धि ।
५. प्रज्ञातिलकसूरि—वि. सं १३६३—कछूलीरास ।
६. रल्ह कवि—वि. सं. १३५३—जिनदत्तचउपई ।
७. लक्ष्मण (गोनंदवासी)—१४वीं शताब्दी के लगभग—णेमिणाहचरिउ ।
८. राजशेखरसूरि—वि. सं. १४०५ के लगभग—नेमिनाथफागु ।
९. विनयप्रभ उपाध्याय—वि. सं. १४१२—गौतमस्वामीरास ।
१०. शालिभद्रसूरि—वि. सं. १४१०—पंचपंडवचरितरास ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. राजतिलक—(ले. का. १३८१ ई.)—सालिभद्ररासु।
१२. धनपाल—(र. का. सं. १३९३)–भविसयत्तकहा।
१३. शुभकीर्ति—चौदहवीं शताब्दी–सांतिणाहचरिउ।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य—

१. असवाल—वि. सं. १४७९—पासणाहचरिउ।
२. तेजपाल—वि. सं. १५०६-१५१६–संभवजिणणाहचरिउ, वरांगचरिउ, पासणाहपुराण।
३. धनपाल (गुर्जरदेशीय)—वि. सं. १४५४—बाहुबलिचरिउ।
४. भ. यशःकीर्ति—पन्द्रहवीं शताब्दी—पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण, जिनरात्रिविधानकथा, रविव्रतकथा, दशलक्षणधर्मकथा।
५. पं. रइधू—पन्द्रहवीं शताब्दी—पउमचरिउ, हरिवंशपुराण, आदि।
६. विजयसिंह—वि. सं. १५०५—अजितनाथपुराण।
७. लावण्यसमय—वि. सं. १५४६—नेमिजिनवरप्रबन्ध।
८. विद्यापति—पन्द्रहवीं शताब्दी—कीर्तिलता।
९. श्रुतकीर्ति—वि. सं. १५५२-५३—हरिवंशपुराण, परमेष्ठीप्रकाशसार, धर्मपरीक्षा, योगसार।
१०. मुनिनेमचन्द—पन्द्रहवीं शताब्दी–रविव्रतकथा।
११. जयशेखरसूरिशिष्य—पन्द्रहवीं शताब्दी—सीलसन्धि।
१२. अल्हू कवि—पन्द्रह-सोलहवीं शताब्दी–अनुप्रेक्षा।
१३. पूर्णभद्रमुनि—पन्द्रह-सोलहवीं शताब्दी–सुकुमालस्वामीचरित्र।
१४. बूचिराज—वि. सं. १५८९–मदनयुद्ध।
१५. दामोदर—सोलहवीं शताब्दी—श्रीपालचरित्र, चन्द्रप्रभचरित्र।
१६. जयदेवगणि—सोलहवीं शताब्दी—भावनासन्धि।
१७. माणिकचंद—र. का. सं. १६३४–सत्तवसणवज्जणकहा।
१८. तिल्हण—सोलहवीं शताब्दी—कुट्टणिरासय।
१९. महिन्दु—वि. सं. १५८७—शान्तिनाथपुराण।
२०. माणिक्कराजकवि—वि. सं. १५७६-७८—अमरसेनचरिउ, णायकुमारचरिउ।

सत्तरहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि और काव्य—

१. ठाकुरसी—वि. सं. १६५०-५२-सांतिणाहचरिउ, महापुराणकलिका, मेघमाला।
२. पं. दर्शनविजय—वि. सं. १६७९–विजयतिलकसूरिरास।
३. भगवतीदास—मृगांकलेखाचरित्र (र. का सं. १७००)।
४. श्रीचन्द—चन्द्रप्रभचरित्र (र. का. सं. १६९३)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम अध्याय

अपभ्रंश के अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों के अंश

अभी तक अपभ्रंश-साहित्य के दो प्रशस्ति-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उन दोनों संग्रहों के अतिरिक्त कुछ काव्य-रचनाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। उन सब को छोड़ कर जो अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाएँ हैं उन के कतिपय अंश यहाँ पर प्रकाशित किये जा रहे हैं। इन रचनाओं में दो-चार ऐसी भी कृतियाँ हैं जिन का विवरण पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से जिन का प्रकाशन नहीं हो सका है। ऐसी रचनाओं की संख्या लगभग सवा दो सौ हैं। इन में अतिरिक्त कतिपय पुरानी हिन्दी की रचनाओं के अंश भो निदर्शन रूप में प्रस्तुत हैं।

१. ३११ (२०) विचारगाथा (?) पत्र सं. १४३,१५३ (१) (२४ पद) खेतरवसी भण्डार, पाटन।

> त दुल्लहु लहिउ सुमाणुसजम्मु कहवि कहवि सिरिजिणवरधम्मु।
> तत्थ वि बोहिबीउ पुण रम्मु जं निहणइ दुट्ठट्ठ वि कम्मु ॥३॥

२. ३११ (२१) माईचउपई पत्र सं. १-१० (६३ पद), खेतरवसो भण्डार, पाटन।

> त्रिभुवनसरणु सुमरि जगनाहु, जिम फिट्टइ भवदवदुहदाहु।
> जिणि अरि आठ करम निद्दलिय, नमो जिन जिम भवि नावउ वलि ॥
> आंचली
> भले भणेविणु भणीयइं भलउं, तिहुयण माहि सारु एतलउं।
> जिनु जिनवचनु जगह आधारु, इतीउ मूकिउ अवरु अस्सारु ॥

३. ३११ (२२) जिनगणधरनमस्कार गाथा ९। पत्र सं. ११-१२। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

> चुलसीय गणहर पढमजिणिंदह पंचनउई सिरिअजियजिण।
> दुरुत्तरु सिउरि संभवदेवह सोलसउ जिण अभिनंदहो ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. ११ (१६) श्रावकविधि—जिनप्रभ। पत्र सं. १८०-१८४ (३२ दोहे)। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

वीरजिणिंदह पयकमलो पणमिउ परमपवित्तउ।
संखेवि सावगकिरिय विहिणा भणउं निरत्तउ ॥१॥

५. १२ (५) धर्माधर्मविचारकुलक—जिनप्रभसूरि। पत्र सं. ९४-९६ (१८ पद) खेतरवसी भण्डार, पाटन।

अह जण! निसुणिज्जउ कन्नि धरिज्जउ धम्माधम्मविचार फुडु।
जिम जाणिउ जिणपहु भिल्हिउ कुप्पहु पावहु सिवसुहु अभय फुडु ॥१॥
एवं जाणेविणु मंतु लहेविणु कायव्वं लोअप्पहिउ।
आगम अणुसारिहिं जिणपहसूरिहिं धम्माधम्मविचारु किउ ॥१८॥

६. १२ (६) आत्मसम्बोधकुलक—जिनप्रभ। पत्र सं. ९६-९९ (गाथा ३३) खेतरवसी भण्डार, पाटन।

मोक्खमुक्खे मयामोहं स्त्रमोहं जाण सासणं।
तेसिं कयपणामोहं संबोहं अप्पणो करे ॥१॥
एवं वियाणिऊणं मुंच पमायं सया वि रे जीव!
पाविहिसि जेण सम्मं जिणपहु-सेवाफलं रम्मं ॥३३॥

७. १२ (८) पश्चात्तापकुलक। पत्र सं. १०१-१०२। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

सुगुरु न सेविउ जंगमतित्थु सुणिउ न आगमवयणु समत्थु।
कोवि न पाविउ परमपयत्थु हा हा! जम्मु गयु अकयत्थु ॥१॥
चउविह दाणु न दिन्नु ससत्तिहिं सीलु न पालिउ परमपयत्तिहिं।
तवु न तविउ नहु भावण भाविय पुहवि-भार करेवा आविय ॥३॥

८. १२ (९) सुभाषितकुलक—जिनप्रभ। पत्र सं. १०२-१०६। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

नाणु निम्मलु नाणु सम्मत्तु सिंगारु जीवहं अभउ।
सच्चवयणु तं रोलु इट्ठउ।
परदव्ववज्जणु पियलि सुद्ध सील-आभरणु लद्धउ।
आरूढउ संतोसरहिद्दप्पणु गुरु उवएसु।
जिणपहु सारहि जो करइ सु लहइ सिद्धिपवेसु॥

९. १९ भव्यचरित—जिनप्रभ। पत्र सं. १३७-१४२। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

भविय! सुणउ भवजीवहं चरिउ संखेविहिं मणु नीचलु धरिउ।
तीणिहि मोहिउ एउ जियलोउ विनडिज्जंतु वि धरइ पमोउ।
कह वि न जाणइ धम्माधम्मु भक्खाभक्खु न गम्मागम्मु ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहह राखिय जीवं अणंत जे केइ आविय सरणु भणंत।
जिणपहु मेल्हिउ सरणु न कोइ सुगुरु भणइ सयलवि जियलोइ ।।४४।।
इति श्रीजिनप्रभाचार्यविरचितं भव्यचरितं समाप्तं ।

१०. २३ गौतमचरित्रकुलक । पत्र सं. १५६-१५९ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

मगहा गोवरगामि वरि माहणि वरु वसुभूई ।
पुहइनंदणु जग-रयणू गणहर सिरिइंदभूई ।।
हो गोयमगोत्तपहाणू पढमसीसु वीरजिण गुणगणरयणनिहाणू ।।१।।
मज्झिम पावापुरि तउ जग्गताडि सुइ सारु ।
अहमाणि समसरणि गउ पंचसय सपरिवारु ।। हो गोयम २ ।।
तिहिं भुवणिहिं थुव्वंतु जिणु दिक्खिउ चमक्किउ चित्ति ।
अहह ! अहो ! वपु अच्छरिउ भूसिउ रिद्धि विचित्ति ।। हो गोयम ३ ।।

११. २४ ऋषभजिनजन्माभिषेक । पत्र सं. १५९-१६२ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

जह न्हवियउ तियसासुरिहिं सामिउ रिसहजिणिंदु ।
तह न्हावउ विहिणा भविय ! सिव-सुह-विल्लिहि कंदु ।।१४३।।

१२. २५. चाचरिस्तुति—जिनप्रभ । पत्र सं. १६२-१६५ (३६ दोहे) खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

जयउ जयउ सिरिरिसहपहु तिहुयणि पढमजिणिंदु ।
सेत्तुंजमंडणु तमतिमिरनासण नवउ दिणिंदु ।।
कडिहिं कछोटा माथइ चोटा अवरहं कापडिय होइ ।
देवंग वेस सिरि लंबा केस जिणवर कापडिय जोइ ।।३५।।

१३. ३११ (११) जिनागमवचन—जिनप्रभ। पत्र सं. १०६-१०८ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

बपु रि ! कंदप्प-सप्पिहिं जगु डसियउ
हा हा ! विसय-पिसायहिं गसियउ ।
अइ जिण-आगममंत नहु हुंतू
ता जिउ गयजिउ भवि भमडंतू ।। जइ जिण० ।।१।।
अरि रि ! मिच्छत्त-महाविसि घारिउ
हा हा ! मोह-रक्खसि तिजगु संहारिउ ।। जइ जिण० ।।२।।
मंत तहिं बाहिरु गहु विसु नासइ
अंतरु पुण जिण विणु कोइ न विणासइ ।। जइ जिण० ।।
आगमिकसूरि जिणइंदपहु-वयणू
जो सुणइ एहु सो लहई सुहरयणू ।। ४ ।। वयणानि समाप्तानि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. ३११ (१२) जिनमहिमा—जिनप्रभ। पत्र सं. ९९–१०६ (पद १२)। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

वपु रि ! अतिस्सउ अरि रि ! झाणू
कटरि ! रिद्धि वपु निरुवमु नाणू।
जिणप्रभु जग-गुरु देवहि देवू
चउवीह संघह मंगल देउ ॥ १२ ॥

१५. ३११ (१४) दूहामाई। पत्र सं. १११–११४ (५८ दोहे)। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

भले भणेविणु पणमियइ जग-गुरु जगह पहाणु।
जासु पसाइं मुद्ध जिय पावइं निम्मलु नाणु ॥ १ ॥

१६. ३११ (१५) सालिभद्दकक्क—पउम। पत्र सं. ११४–११९ (६९ दोहे)। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

भलि भंजण कम्मारिकुल वीरनाहु पणमेवि।
पउमु कहइ कक्कक्खरह सालिभद्द-गुण के वि ॥ १ ॥

१७. ३११ (१६) संवेगमाई। पत्र सं. ११९-१२४ (६१ पद)। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

भले भणउ जाणउ परमत्थु, दुलहउ चउविहसंघह सत्थु।
एउ जाणेविणु लाहउ लिअउ, निय विढत्थु घणु धम्मि दिउ ॥ १ ॥

१८. ३११ (१७) वयरसामिचरिअ—जिनप्रभ। पत्र सं. १२४-१२९। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

चउविह संघ वि सुरमहिउ मुत्ति-निअंविणि-हारु
वयरसामिसुचरिउ भणिसु भवियण–मंगलकारु।
झाअउ अणुदिणु सोहग्गमहानिहिणो गुरुणो सिरिवयरसामिणो चरियं।
तेरह सोलुत्तरए रइयं सुहकारणं जयउ ॥ ५९ ॥

१९. १६ कुमारपालप्रवन्ध। पत्र सं. ८९। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

अम्हे थोडा रिउ घणा इय कायर चिंतंति।
मुद्ध निहालउ गयणयलु के उज्जोउ करंति ॥

२०. २२ (२५) भावनाकुलक—जिनेश्वरसूरि। पत्र सं. ११६–११७ (३१ पद)।

घणु जुव्वणु जीविउ सयलु चंचलु जिम करिकन्नु।
खणि खणि करयलि नीरु जिम गलइ रूवलाइन्नु ॥१॥
दुल्लहु भणिउ रि जीवडा ! लद्धी बोहि म हारि।
इण विणु दिक्खिसि दुक्ख सइं भमडंतउ संसारि ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयउ जिणेसरसूरि किउ भावणकुलं पढंति ।
निरवग्गहवेरग्गरसि ते नर रंगिज्जंति ॥३१॥

२१. २२ (२६) दंगड । पत्र सं. ११७-११८ ।

जहिं जिणधम्मु न जाणियइ नवि देवह गुरुभत्ति ।
तहिं तउं जीवा ! दंगडइ वससि म इक्कइ रत्ति ॥१॥
जहिं सम्मत्तु न आलवणु संजमु नवि चारित्तु ।
तहिं तउं जीव ! म रइ करिसि सिज्झइ जेण परत्तु ॥२॥

२२. २२ (२९) सालिभद्रमाइ । पत्र सं. ११९–१२४ (५५ दोहे) ।

संजमरज्जविघायकरु पत्तु पमायह भेउ ।
माइ मोहु मच्छरु मयणु कूड कुडंबउं एहु ॥५४॥
हरिचन्दण सीयल वयण मलयचन्द जस वाय ।
विहरसु संजमरज्जधर धर सायरमज्जाय ॥५५॥

२३. २२ (३१) स्तुतिद्वात्रिंशिका । पत्र सं. १२७–१२८ (३२ दोहे) ।

चलुसीयपुव्वाउ इहु लक्ख तिजयआणंदु ।
सव्वट्ठह इक्खागकुलि पणमउ रिसहजिणंदु ॥१॥
सामिउ विमलजिणेसरह विमलगिरि पडिहारु ।
कवडिजक्खु रक्खउ दुरिय जसु जगि निम्मलु हारु ॥३२॥

२४. २२ (४४) नेमिनाथबोली । पत्र सं. १४१–१४२ (२४ पद) ।

गुहिरु तूरु वायंति केवि केवि जय जय रवु भासहिं
अक्खवत्तु आणंति केवि केवि दहि दोहु पयासइं ।
इय अमंद आणंदभरि केवि केवि नच्चंति जणि ।
नेमिकुमरि सो मयणभडु लीलइ जित्तइ जेणि खणि ॥२४॥

२५. २५ (३) भावनासार । पत्र सं. ८७-१११ (८६ दोहे)

सव्वु असासउ मणि मुणेउ जिणसासणि लग्गेहु ।
माया मोहु विमूढचित्तु दुहसंगु म मग्गुहु ॥१॥
जिणसासणि लीणा चउगइरीणा भावणसारु जि संभरहिं ।
सुहसंतिपहाणा मुनिवरराणा ताह गुणथुइ फुड करहिं ॥८६॥

२६. ५० सरस्वतीकण्ठाभरणवृत्ति (पदप्रकाश)—आजड । पत्र सं. २-३०५ । त्रुटित । अपभ्रंशपद्य पत्र ५२-७३ ।

अंगिहिं अंगु न मिलिउ हलि अहरिं अहरु न पत्तु ।
पिउ जोयंतिहि मुहकमलु एम्वइ सुरउ समत्तु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे महु दिण्णा दिअहडा दइए पवसंतेण ।
ताण गणंतिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥
सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु परिहरइ सम्माणेइ खलाइं ॥
गुणेहिं न संपइ कित्ति पर फल लिहिया भुंजंति ।
केसरि न लहइ वोड्डिअ वि गलअ लक्खेहिं घेप्पंति ॥
विच्छहे गिण्हइ फलइं जणु कडु पल्लव वज्जेइ ।
तो वि महद्दुमु सुयणु जिम ते उच्छंगि धरेइ ॥

२७. ५६ (७) चच्चरि—सोलण । पत्र सं. १००-१०३ (गाथा ३८) ।

जिण चउवीस नमेविणु सरसइ-पय पणमेवि ।
आराहउं गुरु अप्पणउ अविचलु भावु धरेवि ॥१॥
कर जोडिउ सोलणु भणइ जीविउ सफलु करेसु ।
तुम्हि अवधारह धम्मियउ चच्चरि हउं गाएसु ॥२॥

२८. ५६ (११) वीरजिनपारणक । पत्र सं. ३०-३५ (गाथा ४७) ।

कन्नु धरेविणु एक्कमणि समभावे निसुणह रंगेण ।
वीरजिणिंदह पारणउं को संविहि चिंतउ सहजेण ॥

२९. ५६ (१२) ऋषभजिनस्तुति । पत्र सं. ३५-३७ ।

पणमवि परमेसरु रिसहजिणेसरु वेयसिप्पाउप्पयगरु ।
चलणे निवडेविणु कर जोडेविणु मग्गं सासयसिद्धिवरु ॥१॥
जहिं तुहु अच्छइ रिसहजिण अप्पणु सुच्चरिएहिं ।
उम्माहडा न फिट्टहिं जाव न तित्थु गएहि ॥
नंदउ जिणवर-धम्म जगि नंदउ चउविह संघु ।
जाहं पसायइ सिद्धिवहु भवियण देयइ आघु ॥३६॥

३०. २६ गुरु स्तुतिचाचरि । पत्र सं. १६५-१६७ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

नंदउ पुंडरीउ गोयमपमुह गणहर-वंसु ।
नामगहेण विह जाहं फुडु जायइ सिवसुहुफंसु ॥१॥

३१. २७ मयणरेहासंधि—जिनप्रभसूरि । वि. सं. १२९७ । कडवक ५ । पत्र सं. १६७-१७३ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

सुमरिवि जिणसासणु सुहनिहिसासणु सिरिनमिमहरिसि मणि धरउ ।
पभणिसु संखेविहिं मयणरेह महासइ चरिउ ॥२॥
बारह सत्ताउणए वरिसे आसोअ सुद्ध छट्ठिए ।
सिरिसंघपत्थणाए एयं लिहियं सुआभिहियं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२. २८ अनाथिसंधि—जिनप्रभसूरि। पत्र सं. १७३-१७६। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

विसएहिं विनडिउ कसाय-जगडिउ हा ! अणाहु तिहुयण भमइ।
जो अप्पं जाणइ सम सुहु माणइ अप्पारमि सु अभिरमइ ॥२॥
रायगिहि नयरि सेणीउ राउ गुरु भत्ति निवेसिय वीयराउ।
सो अन्नदिवसि उज्जाणि पत्तु मुणि पिक्खिवि पणमइ नमिय गत्तु ॥३॥

३३. ३० ऋषभचरितस्तवन—जिनप्रभ। पत्र सं. १७९-१८२। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

इय भव-भाव-विभावणग्गि कम्मिंधणु जालिउ
केवलनाणी जाइ मोक्खि संजमु परिपालिउ।
रिसह-चरिउ-संथवणु रासि घोरेहिं जो देइ
सो सिरिजिणपह-लग्गु सग्गु अपवग्गु वि लेइ ॥२७॥

३४. ३१ नेमिरास—जिनप्रभ। पत्र सं. १८२-१८७। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

नंदउ नेमिजिणिंदो रेवयगिरि-मंडणु।
हरिकुल-नहय-चंदो-दुग्गइ-दुहखंडणु ॥१॥
जिणपहि लग्गिउ भव-फलु लीजइ जिणवर आणहं सो वंदीजइ।
जं जिण-आणा निरुवमु तित्थू एउ गणहरिहिं कहिउ परमत्थू ॥

३५. ३२ भावनाकुलक—जिनप्रभ। पत्र सं. १८७–१९०। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

नमवि चलण सिरिरिसहजिणिंदह मंडण सिरिसित्तुज्जगिरिंदह।
चउविहधम्मह भावण सारू भणउ रासु भवियण गल-हारू ॥
दुल्लह पाविऊ माणुसजम्मू भो भो भविय ! कुणउ जिणधम्मू।
दाण सील तव भावण रम्मू तुट्टइ तुम्हहं जिव गुरुकम्मू ॥
एवं चउविहधम्मपभावू बुज्झिउ जिणवरसमयसहावू।
उज्जमु कुणउ जिणप्पहि लग्गिउ मोक्खकए सुविवेगिहिं जग्गिउ ॥११॥

चतुर्विधभावनाकुलकं समाप्तं।

३६. ३३ अन्तरंगरास—जिनप्रभ। पत्र सं. १९०-१९४। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

पढमिउ पढमजिणिंदू सेत्तुज्जह मंडणु
भणउं जीवसंबोहू भव-दुक्खह खंडणु।
कोवग्गिहिं पज्जलिउ निरंतरु माण-पवणि पूरिउ आभिंतरु।
उट्ठिय माया-जालि विसाला पसरिय जा लोभिधणमाला ॥
ताहे जिय जिणसूरिहिं भासिउ करि जिणधम्मु भाउ विणासिउ ॥११॥

अंतरंगरासः समाप्तः। मंगलं महाश्रीः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७. ३४ मल्लिनाथचरित्र—जिनप्रभ। पत्र सं. १९४-२०२। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

मल्लिसामि जिणराय-पाय निरवाय मुणेसू
तासु चरिउ अच्छरिउ भुवणि संखेवि भणेसू ॥१॥
एगूणवीसममल्लिजिणहु चरियं इहु जय हिउ
चंदकंति सुपवित्तिणीए विन्नति विरइउ।
चउविहसंघह देउ लच्छि सग्गह निरुवसग्गह
अणुवग्ग वग्ग सिरिजिणपह लग्गहु ॥५०॥
मत्ताछंदविणिम्मियह गंथमाणु पन्नास।
चरिउ गुणंत सुणंतह वि भवियण पुज्जइं आस॥

मल्लिचरित्रं समाप्तम्।

३८, ३५ महावीरचरित्र। पत्र सं. २०२-२०६। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

सुमरिवि सिरिजिणवद्धमाणु गुण-मणि-रयणायरु
तासु चरिउ जंपेमि किं पि वेरग्गह आयरु।
अवरविदेह गाम-सामि नयसारु मिहाणू
अडवि समण पह-गमण सम्मु सोहम्मविमाणू ॥१॥
पणमवि सिरिअरिहंत सिद्धगण उवज्झायहं
समणह-सुमणहं सव्वलोअ समभाव समायहं।
इय पंचहं नवकारु सारु संसार-तरंडहं
पढमं मंगलु होइ लोइ गुण-रयणकरंडहं ॥२४॥

श्रीमहावीरचरितं रासेनापि गीयते।

३९. मयणजुज्झ—वुच्चराज। रूपककाव्य।

रिसह जिणवर पढम तित्थयर,
जिण धम्मउ धरण, जुगल धम्म सव्वइ निवारण।
नाभिराय कुलकंवल, सव्वाणि संसारतारण।
जो सुरइंदह वंदीयउ, सदाचलण सिरधारि।
कहि किउ रतिपति जित्तियउ, ते गुण कहउं विचारि॥

४०. सन्तोषतिलकजयमाल—बूचराज (वल्ह)। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

गीतिका छन्द—आइयो सीलु सुधम्मु सावमतु अन्नु चरित संवरो।
वैराय तप करुणा महावय खिमा चिति संजमु चिरु।
अज्जउ सुमहउ मुत्ति उपसमु धम्मु सो आकिंचणो।
इम मेलि दंभु संतोष राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७९॥
जिव तेल बुंद जलमांहि पडइ, सा पसरहे भाजनइ छाइ।
तिव लोभु भरइ राईस वास, प्रगटावे जगं में रहविथारु ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१. नेमीश्वर का वारहमासा—बूचराज । १२ पद । दि. जैन मन्दिर, बूंदी ।

उरि लाइ कर निसि गणउं तारे निंद नहु आवइ खिणो ।
घरि आउ नेमि जिणंद सामि चडिउ फागुणु णिग्गुणो ॥
मनु लाइ ये वयरग्गि रजमति लियउ संजमु तं खिणे ।
अट्ठउ भवंतरि नेहु निज्जरि सहइ नव तेरह वणे ॥

४२. आनन्द स्तोत्र— महाणंदि । ४३ पद्य ।

जिण वइसाणर कट्ठमहि, कुसुमइ परिमलु होइ ।
तिहं देह मह वसइ जिव आणंदा, विरला वूझइ कोइ ॥१३॥

४३. ऋषभपारणक-सन्धि—रत्नप्रभसूरि । गाथा ७८ ।

जं किर पावपंकु पक्खालइ, भवियह मोक्खसुक्खु दिक्खालइ ।
संधिवंध संबंध रवन्नउं, चरिउ त रिसह जिणिंदह वन्नउं ॥३॥

४४. महावीरचन्दनवाला पारणा-सन्धि—रत्नप्रभसूरि । गाथा १०१ ।

तिसलादेवि कुक्खिकलहंसह, खत्तियनायवंस अवयंसह ।
छिन्नसुवन्न सुवन्नसरीरह, पारणसंधि भणउं जिणवीरह ॥१॥

४५. गजसुकुमालसन्धि । गाथा ८५ ।

इय गयसुकुमालिहि चरिउ अबालहि, अइसाहस निव्वाहवरु ।
जो पढइ भत्तिभरि गुणइ महुरसरि, जाइ दुरियसुदुरियभरु ॥८५॥

४६. शालिभद्र महाऋषि-सन्धि । गाथा ९४ ।

सालिगामु नामेण पसिद्धओ, आसि गामु धणधन्नसमिद्धओ ।
धन्ना नामि कावि विहवंगण, तहिं कम्मयरी आसि अकिंचण ॥१॥

४७. अवन्तिसुकुमाल-सन्धि । गाथा ५७ ।

इह अत्थि नयर नामिण अवंति, जहिं तुंगचंगचेइय सहंति ।
तह ताणपुरउ सुपयट्ट नट्ट, चच्चर चउक्क चउहट्ट हट्ट ॥१॥

४८. पुरर्णषि-सन्धि । ३२ पद्य ।

अवसरि वीरजिणेसरु वि काउसग्गु पारेइ ।
जिव जंगमु वरकप्पतरु महि मंडलि विहरेइ ॥६२॥

४९. १२७ (२) महावीरचरित्र—अभयदेवसूरि । पत्र सं. ३९-४७ । वृद्धिगत १०८ ।

वीरजिणेसरु वरचरिउ अइसयसमहिं महंतु ।
आयन्निज्जउ कन्नसुहु सुयणहु वन्निजंतु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णासियदोसासंगह अगणियगुणगणह, असुरसुरेसरविंदह कह जिणह ।
उम्मूलेइ अमंगलु मंगलु कुणइ लहु, सुहसंपय परिपोसइ झोसइ दुहनिवहु ॥२॥
इय कल्लाणयकित्तणु किउ वीरह जिणह, पवर जिणेसरसूरिहिं सीसिं सुविहियह ।
अभयदेवसिरिसूरिं जिणगुणभावियह, होइ पढंत सुणंतह कारणु सिवसुहहं ॥१०८॥

५०. संवोधपंचासिका—पं रइधू । ४९ गाथा । पत्र सं. ३ । बधोचंद दि. जैन मन्दिर, जयपुर ।

सावण मासम्मिकया, गाहा वंधेण विरइयं सुणह ।
कहियं समुच्चयं तं, पइडिज्जंतं च सुहबोहं ॥४९॥

५१. रेवंतगिरिरास—विजयसेनसूरि । ४ कडवक । प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह में प्रकाशित ।

परमेसरतित्थेसरह पयपंकय पणमेवि ।
भणिसु रासु रेवंतगिरे अंविकदिवि सुमरेवि ॥१॥
गामागरपुरवणगहणसरिसरवरि सुपएसु ।
देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठदेसु ॥२॥
रंगिहि ए रमइ जो रासु सिरिविजयसेणसूरि निम्मविउए ।
नेमिजिणु तूसइ तासु अंविक पूरइ मणि रलीए ॥२०॥

५२. शील-सन्धि—जयशेखरसूरि शिष्य । ३४ गाथा । श्री नाहटा जी के संग्रह में ।

इय सीलह संघी अइय सुवंधी जयसेहरसूरि सीस कय ।
भवियह निसुणेविणु हियइ धरेविणु सील सील धम्मि उज्जम करहो ।

५३. उपधान-सन्धि—जयशेखरसूरिशिष्य । २५ गाथा । श्री नाहटा जी के संग्रह में ।

फलवद्धीय मंडण दुहसयखंडण, पासजिणि नमेवि करि ।
जिणधम्मपहाणहं तउव उवहाणहं, संधि मुणउ जणु कन्हु धरि ॥१॥
इय तव उवहाणहं संधि जयसेहर सूरि सीस किय ।
जे पढइ पढावहिं अनुमनि भावहिं ते पावहिं सुह परमपय ॥२५॥

५४. केशीगौतम-सन्धि । गाथा ७० । श्री नाहटा जी के संग्रह में ।

अत्थि पसिध सुध सिद्धन्ते, कहिजु उत्तरभैयण वंहते ।
केसी गोयम धम्म विचारु, संधी वंधि सु कही जै सारु ॥१॥
इम करवि विचारु संजमि सारु, पालेविणु जिम मोक्ख गया ।
ते गोयमकेसि चित्ति निवेसि, झायहु भवियाणंद मया ॥७०॥

५५. हेमतिलकसूरि-सन्धि । ४० गाथा । श्री नाहटा जी के संग्रह में ।

पाय पणवि श्रीवीरजिणंदह अनु श्रीगोयमसामि मुणिंदो ।
हेमतिलय सूरिहि गुण लेसो संधिवंधि हुउं किमपि भणेसो ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जसु महिम करन्तइ जणि गुणवंतइ जिणसासण उन्नोइ वओ।
सो गुरु णिय गच्छहं अणु मुणि सच्छहं संघसमण वच्छीय दियउ ।।४०।।

५६. नेमिनाथचतुष्पदिका—विनयचन्द्रसूरि। र. का. सं. १३५३। ४० पद्य। प्राचीन-गुर्जरकाव्य-संग्रह में प्रकाशित।

सोहगसुंदरु घणलायन्नु सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।
सखि पति राजल चडि उत्तरिय बारमास सुणि जिम वज्जरिय ।।१।।
निम्मल केवलनाणु लहेवि सिद्धी सामिणी राजलदेवि।
रयणसिंहसूरि पणमवि पाय बारह मास भणिया मइं भाय ।।४०।।
नेमिकुमरु सुमरवि गिरनारि सिद्धी राजल कन्नकुमारि।
इति श्रीविनयचन्द्रसूरिकृतनेमिनाथचतुष्पदिका।

५७. उवएसमालकहाणयछप्पय—रत्नसिंहसूरिशिष्य। ८१ छन्द। प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह में प्रकाशित।

विजयनरिंद जिणंदवीरहत्थिहिं वय लेविणु।
धम्मदासगणि नामि गामि नयरिहिं विहरइ पुणु।
नियपुत्तह रणसीहराय पडिबोहणसारिहिं।
करइ एस उवएसमालजिणवयणवियारिहिं।
खत्तियकुंडि जमालि वीरजामाइ खत्तिउ।
सुदंसणभत्तार सार वयभारपवित्तउ।
नवि मन्नइ किज्जंत किद्ध इय आगमवाणी।
निन्हवि तेण कुदिट्ठि दुट्ठि किय बहु गुणहाणी।
इणिपरि सिरिउवएसमालकहाणय।
तवसंजमसंतोसविणयविज्जाइ पहाणय।
सावयसंभरणत्थ अत्थपथ छप्पयछंदिहिं।
रयणसींहसूरीससीस पभणइ आणंदिहिं।

५८. समरारासु—अंबदेवसूरि। ११ भास। र. का. वि. सं. १३७१। प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह में प्रकाशित।

पहिलउ पणमिउ देव आदीसरु सेत्तुजसिहरे।
अनु अरिहंत सव्वे वि आराहउं बहुभत्तिभरे ।।१।।
वाजिय संखअसंख नादि काहल दुडुदुडिया।
घोडे चडइ सल्लारसार राउत सींगडिया।
तउ देवालउ जोत्ति वेगि घाघरिरवु झमकइ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ।।१।। ६,१
तासु सीसिहिं अंबदेवसूरिहिं रचियउए रचियउए रचियउ समरारासो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५९. सिरिथूलिभद्दफागु—जिनपद्मसूरि । २७ छन्द । प्रा. गु. का. सं. में प्रकाशित ।

काजलि अंजिवि नयणजुय सिरि संथउ फाडेई ।
वोरीयावडिकांचुलिय पुण उरमंडलि ताडेइ ॥१३॥
कन्नजुयलु जसु लहलहंत किर मयणहिंडोला ।
चंचल चपल तरंगचंग जसु नयणकचोला ।
सोहइ जासु कपोलपालि जणु गालिमसूरा ।
कोमल विमलु सुकंठु जासु वाजइ संखतूरा ॥१४॥

नंदउ सो सिरिथूलिभद्द जो जुगह पहाणो ।
मलियउ जिणि जगि मल्लसल्लरइवल्लहमाणो ।
खरतरगच्छि जिणपदमसूरि किय फागु रमेवउ ।
खेला नाचइं चैत्रमासि रंगिहि गावेवउ ॥ २७ ॥

सिरिथूलिभद्दफागु समत्तु ।

६०. जम्बूसामिचरिय—महेन्द्रसूरिशिष्य । ४१ पद्य । प्राचीन गु. का. सं. में प्रकाशित ।

जिण चउवीसइ पय नमेवि गुरुचलण नमेवि ।
जंबूसामिहिं तणउं चरिय भविउ निसुणेवि ।
करि सानिध सरसत्तिदेवि जिम रयं कहाणउं ।
जंबूसामिहिं गुणगहण संखेवि वखाणउं ॥१॥
महिंदसूरिगुरुसीस धम्म भणइ हो धामीऊह ।
चिंतउ रातिदिवसि जे सिद्धिहि ऊमाहीयाह ।
बारहवरससएहिं कवितु नीपनूं छासठए ।
सोलह विज्जाएवि दुरिय पणासउ सयलसंघ ॥४१॥

इति श्रीजम्बूस्वामिरास ।

६१. सप्तक्षेत्रिरासु—अज्ञात । ११९ पद्य । प्राचीन गु. का. सं. में प्रकाशित ।

सवि अरिहंत नमेवी सिद्ध सूरि उवझाय ।
पनरकर्मभूमिसाहू तीह पणमिय पाय ॥१॥
जां सिसि रवि गयणंगणिहि ऊगइ महिमंडलि ।
ता वरतउ एउ रासु भविय जिणसासणि ।
निम्मल ज ग्रह नक्षत्र तारिका व्यापइं ।
गयवंतु श्रीसंघ अनइ जिणसासणु ॥११९॥

इति सप्तक्षेत्ररासः समाप्तः ।

६२. कच्छूलीरास—प्रज्ञातिलकसूरि । प्राचीन गु. का. सं. में प्रकाशित ।

गणवइ जो जिम दुरीउविहंडणु रोलनिवारणु
तिहुयणमंडणु पणमवि सामीउ पासजिणु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासु सीसु चिरकालु प्रतपउ प्रज्ञातिलकसूरे।
जिणसासणिनहचंदु सुहगुरु भवीयहं कलपतरो।
ता जगे जयवंत उम्हाउ जां जगि ऊगइ सहसकरो।
तेरत्रिसठइ रासु कोरिंटावडि निम्मिउ।
जिणहरि दितसुणंतं मणवंछिय सवि पूरवउ।

६३. पद्मावती चौपई—जिनप्रभसूरि। ३७ पद। दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

जिणसासण अवधारि करेवि, गावहु सिरि पउमावइदेवि।
भवियलोय आणंद परेवि, दुलहउ सावय जम्म लहेवि ॥१॥
पउमावइ चउपई पढंत, होहि पुरिस तिहुयण सिरिकंत।
इम पभणइ नियजस कप्पूर, सुरहिय भवण जिणप्पहसूरि ॥३७॥

इति श्रीपद्मावती चौपई समाप्तः। संवत् १७०० वर्षे आगरा नगरे लिखिता।

६४. समाधिरास—चारितसेनमुनि। पत्र सं. ५२-५४। गुटका सं. ३७। दिल्ली।

चारित्तसेणु मुणि समाधि पढंतउ,
भवियहु करमु कलंकु डहंतउ ॥ संमाधी. ॥४७॥
अइसी समाधि जो अणुदिणु झावइ,
सो अजरामरु सिवसुहु पावइ ॥ संमाधी. ॥५०॥

६५. द्वादशानुप्रेक्षा—लक्ष्मीचन्द्र। ४७ दोहे। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

पणविवि सिद्ध महारिसिहिं जो परभावहं मुक्क।
परमाणंद परिट्ठियउ चउगइ गमणहं चुक्क ॥१॥
आसउ संसारहं मुणहिं, कारणु अण्णु ण कोइ।
इम जाणेप्पिणु जीव तुहुं, अप्पा अप्पउ जोइ ॥१६॥
जो परियाणइ अप्पयरु, जो परभाव चएवि।
सो संवरु जाण वि तुहुं, जिणवरु एम भणेइ ॥१७॥
अणुवेहा जिण भणिया, णाणिबालहि साहु।
ते भावि जुहि जीव तुहुं, जइ इंछहि सिवलाहु ॥१८॥

इति श्री लक्ष्मीचन्द्र कृत द्वादशानुप्रेक्षा समाप्तः।

६६. ३६ जम्बूचरित्र। पत्र सं. २०७-२०९। खेतरवसी भण्डार, पाटन।

पढमभवे भवदेवो गहियवओ पढमकप्पि सुरपवरो।
रायसुय सिवकुमारो कय-बारसवास-तव-सारो ॥१॥
बारस नवाणुए भद्दवसिय पडिव गुरि समुद्धरियं।
घन्नासीभासाए भणियब्वं संघभद्दकए ॥२०॥

जम्बूचरित्रं समाप्तं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७. ३७ सुकोशलचरित्र । पत्र सं. २०९-२१२ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

नंदउ सिरिवीसमु जिणिंदु मुणिसुव्वयसामिय
जासु तित्य-माहप्प होइ धामिउ सिवगामिउ ।
जयउ सुकोसलु मुणिगरिट्ठु संतुट्ठ चरित्तिहिं
तासु चरिउ संखेवि भणिसु जिणआगमजुत्तिहिं ॥२॥
तेर दुरुत्तरवरिसे सिरिवीरजिणिंदमोक्खकल्लाणे ।
कल्लाणं कुणउ सया पढंत—गुणंताण भव्वाणं ॥

६८. ३८ चैत्यपरिपाटी—जिनप्रभ । पत्र सं. २१२-२१४ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

जयइ जयइ जिणधम्मो विवेयरम्मो पणासियकुहंमो ।
उवसमपुर—पायारो पयडियनाणाइआयारो ॥१॥
त दुल्लहु लहिउ सुमाणुसजम्मु तह वि कह वि सिरिजिणवरधम्मु ।
तत्थ वि बोहि—त्रीउ पुण रम्मु जं निहणइ दुट्ठट्ठ वि कम्मु ॥३॥

६९. ३९ मोहराजविजय—जिनप्रभ । पत्र सं. २१५-२१६ खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

त भवियजण ! एकमणु कन्नु धरेउ
त जिणवरराय मोहरायजुज्झु सुणेउ ।
त जइ संवाहिरि इणि संसारि वट्टइ लोइ
त तइ सभिंतरि गुण—दोसंतरि जीवहं जोइ ॥२॥
त सम्यग बोधे पुरवर जिण अधिरोहु
त तिजग—वइरि मिच्छापुरि मोहराउ मोहु ।
त जिणवरसामि मणुयनामि ठविय लिखित्तु
त पनरसकम्मभूमि—पमाणु पवित्तु ॥३॥

७०. ५३ (१२) वइरसामिचरिउ—जिनप्रभसूरि । वि. सं. १३१६ । पत्र सं. १५७-१७८ ।
खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

अहु जण निसुणिज्जउ कन्नु धरिज्जउ वइरसामिमुणिवरचरिउ ।
मुणिवरवरदत्ति जिणवरभत्ति वयरसामिगणहरचरिउ ।
साहिज्जउ भावि मुंचउ पावि जिं तिहुयणु गुणगणभरिउ ।
वइरसामिचरित्रं समाप्तम् । श्लोक ३०० ॥

७१. ५६ (२०) धर्मसूरिस्तुति (बारह नावउं द्वादशमास अपभ्रंश) पत्र सं. २१६-२२१ ।
संघ भण्डार, पाटन ।

कुवलयदलसामल घणु गज्जइ नं मद्दलु मंडलझुणि छज्जइ ।
विज्जुलडी झबकिहिं लवइ मणहरु वित्थारेवि कलासु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नु करेविणु कलि केकारवु फिरि फिरि नाचहिं मोरला ।
पीपलि करिवि स पिंड पहिरि कन्हिहिं चल कुंडल ।
झलझलंत कंकण सनाह हत्थीहिं पुण हत्थल ॥४१॥
नवसरु मोत्तियहारु कंठि कलकंठि ठवेविणु ।
पाल विसाल चलंत चंचलु पायहि पहि पहिरेविणु ॥४२॥
माणिणि ! माण महंतु मयगल मउ मोडिवि ।
सहि ! मंडलि वणि पत्तौ आसाढ सु केसरि ॥४४॥
मेहुडलइ नवि गयणि घुडुक्कइ तहिं खणि विरहिणि हियउं खुडुक्कइ ।
पसरिउ इंद्धणुहु फुडु फारु किउ विज्जुलिय तरल झलकारु ॥४५।

७२. १५ (२) अन्तरंगसंधि—रत्नप्रभ (वि. सं. १३९२) । पत्र सं. १-१२ । तपागच्छ भण्डार, पाटन ।

पणमवि दुहखंडण दुरियविहंडण जगमंडण जिण सिद्धिठिय ।
मुणिकन्नरसायणु गुणगणभायणु अंतरंग मुणि संधि जिय ॥१॥
इह अत्थि गामु भववासनामु बहुजीवठामु विसयाभिरामु ।
दीसंति जत्थ अणदिट्ठछेह बहुरोगसोग दुहु जोग गेह ॥२॥
संवत् १३९२ वर्षे आषाढशुदि २ गुरौ ग्रंथाग्रश्लोक २०६ श्रीधर्मप्रभसूरि-रत्नप्रभकृतिरियं ।

७३. ५ (१४) स्थूलभद्र कडवक २ । गाथा १३, ८ ।

मढ विहार पायारह सोहिउ वर मन्दिर
पवर पुर अमरनाहु पिक्खिवि मोहिउ ।
इय एरिसु पाडलियपुरु जंबुदीव विक्खाउ
करइ रज्जु जियसत्तु तहिं नंदु महाबलु राउ ॥१॥

७४. २३२ नेमिनाथचरित्र—हरिभद्रसूरि । ३०४ ताड़पत्र । ३०-२ आकार । जेसलमेर बड़ा भण्डार ।

मह सुहु वियरउ विमलगुणरासिजलहिरयणिंदु ।
पणयसुरासुरनरनियरकयथुइ रिसहजिणिंदु ॥१॥
मणतणुवयणिहिं अणुदिणु विजणियपुलयपब्भारु ।
अणुसरिउण सुयदेवयह नाममंतु जयसारु ॥३॥
सोलुत्तर वारसइ कत्तियंमि तेरसिसमागमि
अस्सिणक्खित सोमद्दिणि सुप्पवित्तिलग्गंमि ।
एहु समत्थिउ कहवि परियणसाहज्जंमि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पच्चक्खरगणणाए सिलोगमाणेण इह पवंधंमि ।
अट्ठेवयस्सहस्सा बत्तीससिलोगया होंति ।।

इति श्रीचन्द्रसूरिक्रमकमलभसलश्रीहरिभद्रसूरिविरचितं नवभवनिबद्धं श्रीनेमिनाथ-चरित्रं समाप्तम् ।

७५. १३१. विलासवइकहा—साधारण सिद्धसेन। २०६ ताड़पत्र । आकार १३।। × २।।। जेसलमेर बड़ा भण्डार ।

एह कह निसुणेविणु सारु मुणेविणु सयलपमायइं परिहरहु ।
असुहहं मणु खंचहु जिणवरु अंचहु साहारणु वि रमणु वरहु ।।
इय विलासवइकहाए एगारसमा संधि संमत्ता । समत्ता विलासवइकहा ।

७६. १०५ (२२) जिनपंचकल्याणकस्तोत्र—मुनिचन्द्र । पद्य ३६ । पत्र सं. २१४–२१६ । संघवीपाडा भण्डार, पाटन ।

तित्थंकरकल्लाणइं सुक्खनिहाणइं भत्तिमंतु जो नरु वहइ ।
मुणिचंदु वलगुणसिद्धिठाणु सा सुहु लहइ ।।३६।।

७७. ५५ (१७) चतुर्विंशतिजिननमस्कार-शान्तिभद्र । गाथा २५ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

जे सुसावय साहुवर चित्तसुपसिद्धउ
सुपभवतूर (?) नमण निसिहि विरमि थिरु करहि अणुदिणु ।
चउवीस वि जिणवरहं सुप्पभायथुइ भणइ अणुदिणु
ते संसार–महोयहिहि उत्तारइ अप्पाणु
पावह दुक्खक्खउ करवि संतिभद्दु कल्लाणु ।।२५।।

७८. ४६. मुनिसुव्रतस्वामिस्तोत्र—जिनप्रभ । पत्र सं. २३२–२३४ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

इय सुव्वयणाहह नाणसणाहह जिणपहुसूरिहिं संथविय ।
पंच वि कल्लाणइं सुक्खनिहाणइं कल्लाणगु देयउ भविय ।।१३।।
इति मुनिसुव्रतस्वामिस्तोत्रं जन्माभिषेकं च भासरागेण ।।

७९. ४७. जिनजन्माभिषेक—जिनप्रभ । पत्र सं. २३४–२३६ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

एवं सिरिजिणपहु पहणियकुप्पहु तिहुयणगुरु जे संथुणइं ।
भत्तिहिं रोमंचिय वहुभवसंचियकम्मक्खउ ते लहु कुणइं ।।१५।।
छप्पन्नदिसाकुमारीजन्माभिषेक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८०. ४८. जिनजन्ममहोत्सवस्तवन--जिनप्रभ । पत्र सं. २३६–२३९ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

तउ विवहपयरिहिं मेरु सिहारि विहिणा विहिउ ।
जिणजम्मणमज्जणु तोसियसज्जणु कुणउ भविय भवभयरहिउ ॥२५॥

८१. २०. भव्यकुटुम्बचरित—जिनप्रभसूरि । पत्र सं. १४२–१४७ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

चउपइवंधेण इमं भवियकुडंवस्स संतियं चरियं ।
सेत्तुंजतित्थगएणं सिरिजिणपहसूरिणा रइयं ॥३७॥

८२. ७३ (२४) पार्श्वजिनजन्मकलश । पत्र सं. ३५०–३५१ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

अरि रि ! भवियहु ! भावु नियचित्ति य
पयडेविणु वयणु महु सुणहु ।
नियचित्तु निच्चलु परमेसरु
पासजिण–जंमकलसु हउं भणिसु निम्मलु ॥
पणयनरिंदा वंद्दियइंदा धमसूरिपय पणमेवि ।
त गणधरसारु नाणाधारु आणंदसूरि सुयदेवि ॥

८३. ७२ (१०) वज्रस्वामिचरित्र । पत्र सं. २०७–२३४ । खेतरवसी भण्डार, पाटन ।

मुणिवरवरदंत्ति गणहरभत्ति वइरसामिगणहरचरिउ ।
साहिज्जहु भावि मुच्चहु पावि जि तुह्यणु नियगुणभरिउ ॥९९॥
चरिउ सुसारउं भवियपियारउं वइरसामिगणहरचरिउ ।
जो पढइ कियायरु गुणरयणायरु सो लहु पावइ परमपउ ॥
वइरसामिसंधि समासः ।

८४. १७८. जिनवल्लभसूरिगीतानि । आकार २६. ५–११. ५ । पत्र सं. ४ । राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, चितौड़गढ़ ।

पणमवि सामिउ वीरजिणगणहरगोयमसामि ।
सुधरमसामि अनुलगि सरणु जुगप्रधानु सिवगामि ॥१॥
नंदउ विहि जिणमंदिरइं नंदउ विहि समुदाउ ।
नंदउ जिणयत्तिसूरिगुरु विहि जिणधम्मपसाउ ॥३५॥

इति श्रीगुरु जिनवल्लभसूरिगीतानि । श्री देवकपत्त ने श्रा. सहसादे पठनार्थं लिखितानि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८५. कुट्टणिरासय—तिल्हण । प्रकाशित परिषद्-पत्रिका, वर्ष ४, अंक ४ ।

छंदु लक्खणु णहु अलंकारु, णहु देसभासा मुणहु ।
सुकइ गुंथु णहु किंपि दिट्ठउ जडउ ।
जिम्व णवमुद्धअलुद्धरस, पियसंगे गच्छंति ।
तिम महुमइ पयवंध कहु, कुणइ डरंति डरंति ॥५॥

छप्पय—खण मुहु मुहु मेलवइ खणह भूभंग पयासइ ।
खण आलिंगणु करइ चंपि उरसिहु उल्हासइ ॥
खण सिक्कार हरसइ खण मं मं म पयासइ ।
खण खण गुट्टि करंत वयणअ मियह परिभासइ ॥
पयडय रसु से सह णेह भरु खइ रंग सिहु रयणि दिणु ।
भोलयउ छयलु सुजल्हु तिणि णहु जाणइ उव अंथवणु ॥१॥
तं खण कुट्टणि लग्गु पय, वुल्लिउ वहु संणेहु ।
अच्छ विठइ फुणि आइवउ, पहु तुम्हारउ गेहु ॥
आसा सण मज्जण सगुण हउं किव जंपउ जाह ।
तुव विणु मयणु विडंवियइ किम जीविव्वउ णाह ॥८॥

८६. उपदेशसन्धि—हेमसार कवि । प्रकाशित परिषद्-पत्रिका, वर्ष ४, अंक ३ ।

ससिहर सम वयणीय दीहर नयणीय, हंसगमणि सरसइ सुमरेवि
जिणधम्म पसिद्धिय बुद्धि समिद्धिय, भणि सुसंधि उवयेसवर ॥१॥
रे जीव तणी गति विसम जाणि, हिंडइ चउरासी लक्ख खाणि ।
जिम अंजुलि धारि उगलइ नीरु, तिम परियणधण अत्थिरु सरीरु ॥
झाइज्जहु इक्कु जि वीयराय, जिण आण धरी भरि चित्त भाउ ।
जिम वुद्धि धरंतह रयणि दीस, जिम पूजहिं सवि आसा जगीस ॥१८॥
उवएसह संधी निरमल वंधीय, हेमसारु इम रसि करए ।
जो पढइ पढावइ अरु मन भावइ, वसुह रिद्धि विद्धि सो लहइ ॥१९॥

८७. आनन्दश्रावकसन्धि—विनयचन्द्र (श्रीरत्नसिंहसूरिशिष्य)। नाहटा जी के संग्रह में ।

सिरि वीरजिणिंदह पणय सुरंदह, पणमवि गोयम गुणनिहिहि ।
आणंद सुसावय धम्म पभावइ, भणि ससंधि आगमविहिहि ॥१॥
सिरि रयणसिंह सुगुरु वएसो, सिरि विनयचंद तसु सीसि लेसी ।
अज्झयणं पढम इय सत्तभंगी, उद्धरिय संधिवंधेण रंगी ॥७॥

इति आनन्दश्रावकसन्धि समाप्त ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८८. १४१ (१२) लघु अजितशान्ति—वीरगणि । पत्र सं. २५१–२५२ । ८ पद ।

एहु संवच्छरे पक्खि चउमासए
अजियसंतित्थओ भणइ जो निसुणए ।
कहइ गणिवीरगणि भवियजण अग्गए
असहु तसु जाइ सुहु सयलु संपज्जए ॥८॥

८९. १५५ (१०) ज्ञानप्रकाशकुलक । गाथा ११४ । पत्र सं. २३४–२४५ ।

देवहं देवु सु जगी जयउ तिहुयणगुरु जिणराउ ।
अज्ज वि नाणपसाउ जसु पसरइ पयडपहावु ॥१॥

९०. २०२ (२४) मुनिचन्द्रस्तुति । पत्र सं. ९१–९४ । २५ दोहे ।

दूसमरयणिहिं सूर जिम्व तुह उट्ठिउ मुणिनाहु ।
सिरिमुणिचंद मुणिंद पर महु फेडइ कुग्गाहु ॥२५॥

९१. २०२ (२८) शान्तिजिनस्तुति । पत्र सं. ११०-११४ ।

संतिजिणेसर ! एत्तिलउं पइ पत्थेमि अणाहु ।
तिहुयणगुरु महु तुहि जि पर भवि भवि होज्जसु नाहु ॥

९२. २१० वासुपूज्यचरित्र—चन्द्रप्रभोपाध्याय । पत्र सं. ३१२ । अपूर्ण । आकार १६×२ । प्राकृत-अपभ्रंश ।

केंव वहेसउ अज्जु लगि नियभुयाबलगव्वु ।
मिलियए मज्झि विगुत्ताह अहह ! निप्फलु सव्वु ॥

९३. २१८ (३) नवफणश्रीपार्श्वनाथनमस्कार । गाथा ५ ।

जय चिंतामणि जयनाहु जय नवफणमंडिय
जय वाणारसिजाय कायजियनीलसिखंडिय
जय वामाएवि आसेसणकुलनहयलभूसण
जय देवासुर श्रमणसंघसंथुय धुयदूसण ।
ता देवदेव ! धरणिंदथुय कमठदप्प चूरंतु
पउमावइपणमियचलण मणवंछिय पूरंतु ॥

९४. २१८ (१३) जिनस्तोत्र । गाथा ९ ।

तह वि हु जिणवर ! कर किज्जउ एक्कउ पसाउ ।
अप्पण पायहं हिट्ठि पहु दिज्जउ मज्झ वि ठाउ ॥९॥

९५. ३३ सौभाग्यसुन्दरीकथा । संघवी पाडा भण्डार, पाटन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९६. ५९६ सूक्तश्रेणि । राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़ ।

जीवदया जिणधम्मो सावयजम्मो गुरूणपयभत्ती ।
एअं रयणचउक्कं पुन्नेहिं विण न पावंति ॥२३॥
जं अप्पह न सुहाइ तं पुण परइ न छिअइ ।
धम्मह पहहु मूलु काहुं वलि वलि पुच्छिअइ ॥२४॥
धणु चिंततउ धम्मु करि धम्मे णय धणु होइ ।
धणु चिंततउ जइ मरइ दुन्हवि इक्क न होइ ॥२५॥
हाथ घसइ भुइं आहणइ जीभं तालुं दिन्तु ।
मरणह वेलां संभरइ मइं नहु कीधउ धम्मु ॥७०॥

९७. नीलंजसा पाथडी । निजी संग्रह में ।

अहिणवरसभाव धरंति तहिं, खयकालसमय महियलि घुलिया ।
गय कहिंमि ण दीसइ सुरजुवइ, घण समइ चुक्क णं विज्जुलिया ।
णीलंजस जंपाणेहिं विमुक्क, तं जिणहो जाय मणे गरुय संक ।
चिंतइ संसारि अणिच्चु सव्वु, सो मूढउ जो उव्वहइ गव्वु ।
किमिउलसंकुले दुगंध देहिं, सो मूढउ जोरइ करइ देहिं ।
णिरु मेल्लिवि जोव्वणु सयणु मग्गु, सो मूढउ जो णवि धम्मि लग्गु ।
णिय पुत्तकलत्तइं णियधराइं, सो मूढउ जो मण्णइं थिराइं ।
हयगय-रहवर-किंकर सयाइं, भणु केण मरंतइं सिहु गयाइं ।
धणधण्णहि रक्खइं भूसणाइं, णिवसणइं मणोज्जइ आसणाइं ।
भणु मंड धरंतहं किहि वसेण, नट्ठइ ण काइ असमंजसेण ।
पंचेंदिय सोक्खह कारणेण, आयरइ पाउ परमायरेण ।
पावेण तेण पावइ ण सुक्खु, केवलु अणुमग्गिउ लहइ दुक्खु ।
जाणतु गलंतु अणवरउ माउ, जाणइ होसइ सयणहं विओउ ।
जाणइ छंडेसमि एहु काउ, णहु होउ तोवि वइराउ भाउ ।
मोहिज्जइ मोहिं अइघणेण, घर घरिणि सुयाइं णिबंधणेण ।
चिंततु एम पंजलिय रेहिं, संबोहिउ लोयंतिय—सुरेहिं ।
इत्थंतरि आइय सयलदेव, जिणचरणकमलकय परमसेव ।
घत्ता—आयहि ण्हावेप्पिणु जिण धवलु वत्थाहरणहिं भूसियउ ।
पुणु थोत्तु सहासिहिं मणहरहिं भत्तिए सुहिउ णमंसियउ ॥
इति नीलंजसा पाथडी समाप्ता ।

९८. ५६ (१४) नवकारफलकुलक । पत्र सं. ३९-४२ । गाथा ३० ।

पणमेवि पाय परमेसराण उसभाइसयलतित्थेसराण ।
पणमउ पक्खालियपावमलु जण निसुणहु जिणनवकारफलु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९९. ५६ (१६) ऋषभजिनस्तुति । पत्र सं. ४४-४७ । गाथा २६ ।

तं निपाइउ धम्मविहि मेलाविउ संसारु ।
इंदु जोएवा आइयउ रिसहेसर घरवारि ॥२६॥

१००. ५६ (१७) सीतासत । पत्र सं. ४७-४९ । गाथा २० ।

पूरवि दसरथु जाणिय एकेगइ वरु मागेइ ।
रज्जु भरह दियावियए रामलक्खण संजुत्त ।

१०१. १०३ (१४) संजममंजरी—महेश्वरसूरि । पत्र सं. २०७-२१३ । गाथा ३५ ।

संजमु सुरसत्थिहिं थुयउ संजमु मुक्खदुवारु ।
जहि न संजमु मणि धरिउ तहुं दुत्तरु संसारु ॥२॥
समणहं भूसण गयवसण संजममंजरि एह ।
कहइ महेसरसूरिगुरु कन्नि कुणंत सुणेह ॥३५॥

१०२. ११६ (५) शकुनविचार । पत्र सं. ४५-४७ ।

वाम सियाली होइ सुह दाहिण दुक्ख करेइ ।
पिट्ठट्ठिय बीहामणी अग्गट्ठिय मारेइ ॥१॥
जंबूरासह सणोइं जइ निग्गमि वामाइं ।
पइसंतह जइ दाहिणइं फुडु साहइं कज्जाइं ॥२॥
वामी होविणु दाहिणी जइ सूयरि गच्छेइ ।
तो आभरणविभूसिया ककवितिय दावेइ ॥३॥

१०३. ११६ (१६) भूमिज्ञान ।

खत्तु खणेविणु पूरियइ जइ मट्टी वड्ढेइ ।
निद्धा भूमि सलक्खणी फलु निवसंतह देह ॥१॥
दर—उद्देही—कोलिय—किमि-कीडा-अलि—सप्प ।
रक्खसभूमि भयावणी घरि न वसिज्जइ वप्प ॥

१०४. १३३ (१०) वीरविज्ञप्तिका । पत्र सं. १२८ मात्र (१) । गाथा १३ ।

जा चंद दिवायरु नंदउ जिणहरु पावउ सिवसुहु सयलजणु ।
जगडिजंतउ भवि मोहमहानिवि रक्खि रक्खि जिण ! तुह सरणु ॥१३॥

१०५. भावनासन्धिप्रकरण—जयदेव मुनि । ६ कडवक । प्रकाशित ।

णिम्मलगुण भूरिहिं सिव दिन्न सूरिहिं, पढमसीसु जयदेव मुणि ।
किय भावणसंधी भावु सुबंधी, णिसुणवि अन्न वि धरउ मणि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०६. आत्मसंबोधकाव्य—३ सन्धि । निजी संग्रह में ।

जय मंगलगारउ वीरु भडारउ, भुवणु सरणु केवलणयणु ।
लोगोत्तमगोत्तमु संजयसोत्तमु, आराहमि तह जिणवयणु ॥
चउवीसमु जिणु हयपंचवाणु तिहुवण सिरिसेहणु वड्ढमाणु ।
चउगइ भवगमणागमण चुक्कु, कम्मट्ठणिविडवंधणविमुक्क ॥
दिढु करि समत्तु लहेवि णाणु, वउ किज्जइ कय णिव्वुइ णिहाणु ।
णियसत्तिहि अणुसारेण लोइ, पालिज्जइ दिढु वउ गुरु णिओइ ॥
घत्ता—समत्तवलेण णाणु लहेवि चरेवि जणु ।
साहिज्जइ मोक्खु भव्वेहि भवदुह अवहरणु ॥ ११ ॥
इय अप्पसंबोहकव्वे सयलजणमणसवणसुहयरे अवलावालसुहवुज्झ पयडत्थे तइओ संधी परिच्छेओ समत्तो ॥३॥ लिपि संवत् १६३५, भाद्रपदसुदि तीज, मंगलवार ।

१०७ सुप्पयदोहा—सुप्रभाचार्य । ७५ दोहे । निजी संग्रह में ।

सुप्पउ भणइ म परिहरहु, पर उवयारि चरित्तु ।
ससि सूरहं हुइ अत्थवणु, अण्णहं कवणु थिरत्तु ॥ ३ ॥
जइ दिंतहं सुप्पउ भणइ, संपइ जाइत जाउ ।
छुडु निम्मलु धम्मेण सहु, घर मंडिवि जसु ठाउ ॥ ७४ ॥
इहु घरु घरणी एहु सुहु, इहु वंधउ गिहरंगि ।
मोहु ण डावइ माणसुहं, णच्चावइ वहु भंगि ॥
मोहु गह गहियउ णच्चइ, हियवइ ठियउ जि किंपि ।
तेण अप्पाणउं वेवइ, णच्चावइ वहु भंगि भंगि कलग्गी थिय ।
तहिं जिणि हिंडइ संसारु, मोक्खु णहु लहइ खणु वि इय ॥ ७५ ॥
इति सुप्पयदोहा समाप्तः ।

१०८. चैतिरासा—ब्र. उंदू । पत्र सं. ३५–३७ । गुटका सं. ३७ । दिल्ली ।

घण पिउ पूजिवि एक ठाइं कुसुमंजलि दिण्णी ।
पूसहं पोसिउ सयलु लोउ सा सीलि सउण्णी ॥ १० ॥
घनि जननी घनि वापु जेण, सुह लक्खण जाइ ।
घनि कणि पुत्तहं आगली, धनि जिनि करि लाइ ॥ १२ ॥
तोल्हउ दे गुण आगली, फागुण पूनी आसा ।
वंभयारि कवि उंदू, गाए वारहमासा ॥ इति ॥

१०९. २४३ (५) धर्मोपदेश । गाथा ७ ।

जेण न चिंतिउ गुरु वयणु अब्भसिउ न जिणधम्मु ।
काइं किज्जइ तिणि पुणहि वंध बहुविहु कम्मु ॥ ७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११०. २४८ (५) सुभद्राचरित—अभयगणि । पत्र सं. १०१–१०९ ।

अन्नु वि सीलु विसिट्ठउ पालइ जो किर इच्छइ सिवपुरि आलउ ।
जोउं सुभद्दह चरिउं पढउ मणभाविहिं सो सीलं पालंतउ सलहउ ॥ ५ ॥
सीलं पालिवि सिद्धह गच्छइ अभयगणी वि ठाउं तं इच्छइ ।
संवच्छर इगसट्ठे आसोये मासे कि............॥

१११. ३०७ (२) सुलसाचरित्र—देवचन्द्रसूरि । र. का. वि. सं. ११९१ ।
गाथा १७ । पत्र सं. ४३ (२) ।

पणमवि तित्थेसरु वीरजिणेसरु भणमि सुलसाविचरिउ ।
समत्तसमन्निउ विवुहहि वन्निउ दंसणनाणगुणावरिउ ॥

११२. ३०७ (५) अंजनासुन्दरीकथा । पत्र सं. ५४–५५ । अपूर्ण ।

कुल भय विह वंसं पुंनिमहि अन्नु हि अम्मिउयत्ताइं ।
जण ! निसुणहु अंजणसुंदरिहि जगे सुहदुक्खाइं पत्ताइं ॥
पणमवि मुणिसुव्वयसामियहु नेव्वाणसिद्धिसुहगामियहो ।
जिणसासणभत्तिय एकमण कहु पुन्नपवित्त सुणेहु जण ॥

११३. ३०६ (६) जन्माभिषेक । पत्र सं. १–८ ।

कंपिउ रयणासणु तवनिन्नासणु मिलियछप्पन्नदिसाकुमारीए ।
तिसलाए सुइकम्मं विहियं जम्मंमि जस्स सो जयउ ॥ १ ॥
सो जयउ जस्स समकालचलियसिंहासणेहिं सक्केहिं ।
विहिओ जम्मणमहो सुमेरुसिहरम्मि मिलिएहिं ॥ २ ॥

११४. ३११ (१०) नर्मदासुन्दरीसन्धि—जिनप्रभ । वि० सं० १३२८ । पत्र
सं. ९९--१०६ । ७१ पद ।

पणमवि पणइंदह वीरजिणंदह चरणकमलु सिवलच्छिकुलु ।
सिरिनमयासुंदरिगुणजलसुरसरि किं पि थुणिवि लिउं जम्मफलु ॥ २ ॥
तेरस सय अडवीसे वरिसे सिरिजिणपहुप्पसाएण ।
एसा संधी विहिया जिणिंदवयणाणुसारेणं ॥ ७१ ॥
श्रीनर्मदासुंदरीमहासतीसंधि समाप्ता ।

११५. जिनेश्वरसूरि विवाहला—

अंब पभणइ माइ सुणि, परिणिसु संजम लच्छि ।
इक्कु जुए पुहविहि सलहियइ, जायउ लखमिणि कुच्छि ॥ १५ ॥
कुसलिहि खेमहि जानउत्त पहुतिय खेड मझारि ।
उच्छवु हुयउ अइ पवरो, नाचइ फरफर नारि ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संतिजिणेसर वर भुयणि, मांडिउ नंदि सुवेहि ।
वरिसहि भविय दाणजलि, जिम गयणंगणि मेह ॥ २२ ॥

११६. श्रावकाचारधर्मदोहा—देवसेनसूरि । पत्र सं. ११०–१३२ । २२५ दोहे । सम्भवनाथ जी का मन्दिर, उदयपुर ।

नवकारेप्पिणु पंचगुरु, दूरदलियदुहकम्मु ।
संखेविं पयडक्खरहिं, अक्खमि सावयधम्मु ॥ १ ॥
दंसणणाणु चरित्ततउ, रिसिगुरुजिणवरदेउ ।
वोहि समाहिए सिद्दु मरणु, भवि भविदुज्जउ एउ ॥ २२५ ॥

११७. कलिकुंडपूजाजयमाला—भ. यशःकीर्ति गुटका में लिखित । सरस्वती-भण्डार, ऋषभदेव जी ।

वर सम्मत्त विहूसणहो, भवियण जिणवर समरणे ।
णासियपाउ असेसलहु, तिमु जिम देवायर वि अरणे ॥ १ ॥
सुदुद्धर अंजण पुव्वयकाउ, दिसा करि तासण मेह णिणाउ ।
सुदुपुवि बिम्बुण देउ करेंदु, मणामि अणंतो देउ जिणंदु ॥ १ ॥
पस तसमि विय देउ समूहु, महाबल लोह लोलाविह जिहु ।
सरोसमु देउ कमणमयंदु । मणामि ॥ २ ॥

११८. सेणियचरिय—जयमित्रहल्ल । ११ परिच्छेद । भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना ।

पणवेवि अणिंदहो चरमजिणिंदहो वीरहो दंसणणाणवहा ।
सेणियहो णरिंदहु कुवलयचंदहो णिसुणहो भवियहो पवरकहा ॥
अह सेणियरायहो लच्छि सहायहो सयलु सउणउ सुहयरु ।
कुवलय आसासणु तमणिण्णासणु उयउ अरियणहं हिमयरु ॥
घत्ता-परमेट्ठि पयासणु णिरुवमु सासणु, इंदे वणिय जासु गुण ।
जिण णवेवि पयत्तें कहसि हिययत्तें, थुइ अणमिय सुणेहु जणहु ॥

११९. भरतजयमाला—१ कडवक । गुटका सं. ५४ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

णउणिधि हरहुं तइं रयण समत्थइं चाउरंगु परियणु घणउ ।
जिणि माया छंडिय दुरिय विहंडिय भरहेसरु तपसरणि गयउ ॥१॥

१२०. चर्यागीति-कोश । प्रकाशित, शान्तिनिकेतन, १९५६ ।

जिम जले पणिअ टलिआ भेउ न जाअ ।
तिम मय रअण समरसे गअण समाअ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२१. नेमिनाहचरिउ—हरिभद्रसूरि । प्रकाशित प्रथम भाग, अहमदाबाद ।

इय सुणेविणु वीर जिणइंद
अक्खाणउं संखमुणि अप्पपंचमु विगरुय हरिसेण ॥१९२७॥

१२२. नेमिनाथफागु—राजशेखरसूरि । २७ पद्य । प्रकाशित ।

प्रारम्भ—सिद्धि जेहिं सइ वरवरिय ते तित्थयर नमेवि ।
फागुबंधि पहु नेमिजिणुगुण गाएसउं केवि ॥१॥
अन्तिम—राजलदेविसउं सिद्धि गयउ सो देउ थुणीजइ ।
मलहारिहिं रायसिहरसूरि किउ फागु रमीजइ ॥२७॥

१२३. आगम के अष्टपद—सोड्ढल । ८ कडवक ।

तमतमणरयहं मग्गु कहव पह मासहं थक्कइ ।
पुणु तम णरयहु चारि विण्णि धूमप्पह चुक्कइ ।
णरय चउत्थइ इक्कु मासु पुणु अद्धु णिरुत्तउ ।
सक्करपह दिण सत्त रहइ मग्गु वि जिणउत्तउ ।
चउवीस मुहुत्त पढम णरइ सुकइ सुड्ढु मग्गु वि रहइ ।
पुणु वहहि णिरंतरु रयणि दिणु केवलक्खु जिणवरु कहइ ॥४॥

१२४. पार्श्वनाथभवान्तर—जयकीर्ति ।

मरुभूइ मरिवि उप्पण्णु गयवरु कमठु कुक्कुडु अहि थिउ ।
वनि भमइ मइगलि दिट्ठु मुणिवरु सुद्धु सावउ वउ दिउ ।
तहिं सप्पि भक्खिउ पालि अणसणु सहसरारि उप्पण्णउ ।
कुक्कुडु पापी वइरभावहि णरयदुक्खु णिसण्णउ ॥

१२५. गौतमरासा—

जंबुदीवि सिरि भरहखित्ति खोणीतलमंडणु ।
मगहदेस सेणियनरेस रिउदलबलखंडणु ।
घणवरगुव्वर नाम गामु जहिं गुणगणसज्जा,
वप्पु वसे वसुभूइ तत्थ जसु पुहवी भज्जा ।

१२६. भरतबाहुबलि सम्बन्ध—५ कडवक । दि. जैन तेरहपन्थी, बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

वणु जंतु मुयंतु नरिंदसिरि, महि महंतु अहिमाणिउ ।
साकेयहे राउ विसणमणु, मंतिहिं मंडए आणिउ ॥

१२७. योगसार—श्रुतकीर्ति । २ सन्धि । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

पणविवि जिणवीरहु णाणगहीरहु, तह गिर गणि गोयमह समु ।
जह जोउ पउत्तउ तिजय पवित्तउ, अक्खमि भवियहु तं जि कमु ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सव्वह धम्मजीउ जगि सारउ, जो भव्वयण भवोवहि तारउ ।
सो लइं सिद्धिय सिद्ध अणंतइं, जम्म ण मरण भवोवहि चत्तइं ।।

१२८. सुदंसणपाथडी—५ कडवक । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

लहेप्पिणु माणसु दुल्लहु जम्मु, सुही वहु जीउ ण चिंतइ धम्मु ।
छणम्मि छणम्मि पहिट्टु चलेइ, ण किंपि वि आउ गलंति कलेइ ।
तुमं चिरु जाउ पहिट्टु हवेइ, मरेहि सुणेप्पिणु रोसु करेइ ।
ण जाणइं मज्झु पडेसइ कालु, अचिंतउ णावइ मच्छहु जालु ।

१२९. अणथमिय संधि—हरिचंद अग्रवाल । १६ कडवक । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

अयरवालरवंसें उप्पण्णइं हरियंदेण भत्तिए ।
जिणु पणवेवि पयडिउ पद्धडिया वंधेण ।।

१३०. मणुयसंधि—पाहल कवि । ८ कडवक । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

करि करिण पसंगि अइपयंडु, मुग्गरघाएण किउ खंडु खंडु ।
महुयहु घाणंदिय गंधलुद्धु, सो मुवउ सरोरुह मज्झे वुद्धु ।
णयणिंदिय देस वसंगएण, अप्पाणउ दद्धु पयंगएण ।
परिभमइं कुरंगउ ता मरण्णु, गेय झुणि जाम ण देइ कण्णु ।

१३१. शिवकुमार की जयमाल—९ कडवक । आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

वयनिम्मलु अज्जिय तवफलु, वरिससहस चउसट्ठि थिउ ।
जिणदिट्ठउ आगमि सिट्ठउ, आउसंति सन्नासु किउ ।।९।।
एरिसु तवफलेण वंभोत्तरि तणु कय सुरहि वाउसो ।
इहु सो विज्जुमालि हुउ सुरवरु दससायर थिराउसो ।।

१३२. णवकारपाथडी—७ कडवक । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

जय जयहि जिणेसर पढम जिणेसर, रिसहणाहपय संथुणिवि ।
सरसइ पणवेप्पिणु कर जोडेप्पिणु, अक्खमि हउं णवयारफलु ।
जिणधम्मु वियाणिवि णिच्छउ जाणिवि, एउ परमत्थु चित्त धरइ ।
णवयारहो फलु अक्खमि गुज्झु ण रक्खमि, हउं पभणमि हउं तुज्झ मइ ।

१३३. मुनिसुव्रतानुप्रेक्षा—२२ पद्य । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

णविवि चलणमुणिसुव्वयहो, सुरनरखयरमहोरगमहियहो ।
सयल विमल केवलगुणसहियहो, वारह अणुवेक्खउ भणमि ।
भव्वयणह णयण विणए सहियहो, णविवि चलणमुणिसुव्वयहो ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३४. द्वादशानुप्रेक्षा—लक्ष्मीचन्द । ४५ दोहे । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

पणविवि सिद्ध महारिसिहि, जे परभावह मुक्क ।
परमानंद परिट्ठिया, चउगइगमणहं चुक्क ॥१॥
ए अणुपेहा जिणु भणइं णाणी वोल्लइ साहु ।
ते भाविज्जहिं जीव तुहु, जइ चाहहि सिवलाहु ॥४५॥

१३५. आणंदा—महानन्द । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

गुरु जिणवरु गुरु सिद्ध सिउ, गुरु रयणत्तय सारु ।
सो दरिसावइ अप्पपरु आणंदा, भवजल पावइ पारु ॥३६॥
कुगुरुह पूजि म सिर धुणहु, तीरथ काइं भमेहु ।
देउ सचेयणु संघ गुरु, आणंदा जो दरिसावहि भेव ॥३७॥

१३६. पुष्पांजलिकथा—भ. गुणभद्र । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

सिरि मलयकित्ति पयभत्तियइ रइय कहा णियसत्तिए ।
गुणभद्द गणीसें अप्पहिय भव्वह भोयहं अइमाहिए ॥८॥

१३७. रत्नत्रयकथा—भ. गुणभद्र । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

सिरि मलयकित्ति पयभत्तिए एम जिणवर गुण अणुरत्तएण ।
गुणभद्देहिं रइय एह कह, णंदउ णासिय जम्मदुहा ॥७॥

१३८. दशलक्षणकथा—७ कडवक । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

जिणणाह करहि दय महु कज्जय मय, एत्तिउ लहु संपज्जउ ।
रयणत्तउ सारउ भवदुहदारउ, जिणवर सामिय दिज्जउ ॥७॥

१३९. अणंतवयकहा—८ कडवक । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

एत्तिउ महादिज्जउ लहु संपज्जउ, केवलणाणु सरणु विमलु ।
णउ अण्णु जि मग्गमि जिणपइ लग्गमि भवि भवि वोहि होउ सयलु ॥८॥

१४०. चन्दणछट्ठिकहा—गुणभद्र । ६ कडवक । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

सिरिमलयकित्ति मुणिवरहुपय, णियमणि झाइवि विगयरय ।
गुणभद्दगणीसें रइय इह, चंदणछट्ठिहिं सरस कह ॥६॥

१४१. निर्दुःखसप्तमीकथा—भ. गुणभद्र । ५ कडवक । श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर ।

गोवग्गिरिणयरि णिवसंत एण, मलयकित्तिपयभत्तएण ।
गुणभद्दसूरि णामेण इय,. णिद्दुक्खिसत्तमि रइय ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४२. सुगन्धदसमीकथा—भ. गुणभद्र। ८ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

सिरिमलयकित्तिगुरुपय णविविं, सिरि गुणभद्दें रइय सुह।
संखेवें कह जिह गणहरिण, णिय मइ अणुसारेण तिह ॥८॥

१४३. मउडसत्तमीकहा—४ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

पणविवि सिरि रिसह जु पयजुयलु, जम्मजरा मरणत्तिहरु।
आहासमि जिम जिणि लद्ध हलु, मउडाइहि सत्तमिहिं वरु ॥१॥

१४४. नरगउतारीकथा—भ. गुणभद्र। ४ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

सिरि मलयकित्तिपयपंकयहं, भसलें गुणभद्दमुणीसरेण।
विरइय कह इह भवियणगणहं, णियमइ अणुसारें दयधरेण ॥४॥

१४५. त्रिकालचतुर्विंशतिकथा—४ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

जिणवरु किज्जउ दय महु मणि धरि मय एत्तिउ मग्गिउ देहि लहु।
जहिं जम्मु ण कम्मु पाउ ण धम्मु, तित्थु पराणहिं मज्झु तुहुं ॥४॥

१४६. अक्षयनिधानकथा—गुणभद्र। ३ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

गुरुभत्तें धम्मासत्तें मलयकित्तिमुणि सीसें।
गुणभद्दें कोमलसद्दें कह कहा विमल मणीसें ॥३॥

१४७. षोडशकारणकथा—७ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

जीवंधरसामि सिवउरगामि एत्तिउ लहु महु दिज्जउ।
जहि गउ तुहु ठाणि मइं वि पराणि अण्णु ण मग्गमि विज्जउ ॥७॥

१४८. लब्धिविधानकथा—९ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

सिरि गोयमसामि एत्तिउ लहु महु देहि तुहुं।
जहि जम्मु ण गामि मइं वि पराणहिं तित्थु लहु ॥९॥

१४९. श्रवणद्वादशी—भ. गुणभद्र। ७ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

सिरि गुणभद्दें गणीसरेण यह कय पण्णणुसारेण।
जिण एत्तिउ मग्गिउ देहि महु जरजम्मण मरणु हरेहि लहु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५०. मुक्तावलीकथा—कडवक ११। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

जो विहिथिवि वसइ एह विहि, सो कमेण जिह पउ मरहु।
सिवसोक्खु लहेवि सइं उत्तरेवि, भवसमुद्दु दुग्गहु लहु ॥११॥

१५१. निर्झरपंचमीविधानकथा—श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

माणु म करहु म रूसहु मणु खंचहु अचलु।
जे ण भणंति खडारा पंचम्मि पंच पहु,
अम्हहं ते दरिसावहु अविचल सिद्धिपहु।

१५२. सुखसम्पत्तिविधानकथा—७ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

जो पढइ सुणइं मणि भावइं जिणु आराहइ, सुहसंपइ सो णरु लहइ।
णाणु वि उप्पज्जइ भवदुहु खिज्जइ, सिद्धि विलासिणि सो रमइ ॥७॥

१५३. चन्दायनव्रतकथा—भ. गुणभद्र। २ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

इय चंदायणवउ अक्खिउ कय सिउ मलयभत्तिए।
गुणभद्दगणीसें विमलमुणीसें, भव्वयणहं णिय सत्तिए ॥२॥

१५४. आकाशपंचमीकथा—भ. गुणभद्र। ६ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

कह अक्खिय जिह मइं लक्खिय, मलयकित्ति पयभत्तें।
गुणभद्दें कोमलसद्दें मुत्ति सुहायय सत्तें ॥६॥

१५५. भिल्लाष्टमीकथा—१० कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

सिरि वीर जिणेसर भासियउ गोयम कहिउ विचारि।
अट्ठमि वय उववास कह जिणसासणे परिवारि ॥१०॥

१५६. रोहिणीकथा—९ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

णंदउ सिरि जिणसंघं णंदउ तह भूमिवालु णिविग्घं।
णंदउ लक्खणु लक्खं दिवु सया कप्पतरु व जइ तिक्खं ॥९॥

१५७. जिणरत्तिकहा—८ कडवक। श्री दि. जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर।

लक्खणु छंदु ण जाणउ सरसइं देवि सुरेसरि।
ता कइयणु जंपइ हिय आसंकइ देहि वोहि परमेसरि ॥८॥

१५८. सिंहसंबोधनजयमाल—३ कडवक। श्री पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

भो भो पंचाणण भवदुहमाणण, किं न वियाणहि पुव्वभओ।
मारीच वि हुंतउ निउ भरहह सुउ एवहि, जायउ तुह जि मयो ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५९. अर्हंकार अक्षर की पूजा—उ ६१ क और ख। ६॥×५। श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

ण च डायणि सायणि परहवेइ जोयणि मुंचवि सायइ।
दालिद्दु दुक्खयणउ हक्कइ जहिं इह मंसयत्ता चइ॥

१६०. गणधरवलयपूजा—उ ६२ क। ६॥×५। श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

वरगणिंद समरंतहं फिट्टइ वाहिअसे पलउ।
वहु पावपणासइ हो पलगि महापुण सवि सुहजणाण॥१०॥

१६१. क्षेत्रपालपूजा—उ ६५ क। ७×५॥। श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

जिण अगवाणी वरेप्पिणु भावधरेप्पिणु घर घर थापें भाव धरे।
दुहयणदुहणासण पापपणासण विघ्नपयं पयसिद्ध परे॥८॥

१६२. अनुप्रेक्षा—पं. जगसी। १६ पद्य। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

चउगइ संसार दुक्खु चउरासी, जोणि लक्खु गिल्हइ मेल्हइ जीउ सरीरयहो।
सत्तु वि मित्तु उपज्जइ राउवइ रंकु, छाजइ संसारि समुदि वन्हदुहु सहइ।
एकिलउ सहाइ हीणु नरयह जाइ दीणु, मोक्खह कारण जाणि भासिय जिणिंद णाणि॥५॥

१६३. दशलाक्षणिक जयमाल—१० कडवक। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

उत्तम खम मद्दउ अज्जउ सच्चउ, पुणु सउव्वु संजमु सुतउ।
चाउ कि आकिंचणु छ वंभचेरु धम्मु जि अक्खउ।
जिणणाह महिज्जइ मुणि पणविज्जइ, दहलक्खणु पालियइ णिरु।
भो खेमसीह सुय भव्व विणयजुय, होलि वम्ह इहु करहि थिरु॥१०॥

१६४. क्षमावाणी अर्घ—गुटका सं. ६३। ६।×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

कुसुमावलि दिण्णउ फल संपुण्णउ सोहइ थाल सुवण्णमउ।

१६५. सिद्धपूजाजयमाल—गुटका सं. ६३। ६।×५॥। ११ कडवक। श्री दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

विसेसेण वि कहिय वुहा, जो पढे पढावइ णियमण भावइ सो णर पावइ सिद्ध सुहं॥११॥

१६६. सप्तऋषिपूजा—गुटका सं. ६३। ६।×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली।

परिसिवरा तवलच्छीधरा मणवयकायतिसुद्धिहिं।
जो झायइ सो वइ मंडिज्जइ वसुमहिहिं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६७. सम्बोधिरसायन—३५ दोहे। गुटका सं. ३८। वे. सं. २७६। पत्रसं. १२८–१३३। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

प्रारम्भिक—सावकुल कहमि वि लहइ जम्मु,
जइ जीवह पालिसि जिनह धम्मु।
जिम जिम भव भव वनि लहेसि दुख।
तिम तिम पछितावइ पडिसु मुख॥ १॥

अन्तिम—
बाहिर अब्भंतर तव वेह, णो करि पुन्नह संबोउ कम्महाणि।
अह पालि न सक्कइ जइ चारु, तउ दिढ करि सावयधम्म चित्त॥ ३५॥

१६८. दशलाक्षणिक जयमाला—आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

इय काओण णिज्जरं जे हणंति भवपंजरं, णिरोय जरामरं ते लहंति सुखंवरं।
जे ण मोक्खफलु तं पाविज्जे, सो धम्माधिउ पहुउ गिज्जइ।
खम खमायलु तुंगइ देहउ, मद्दव पालउ अज्जव साहउ॥

१६९. हरिवंशमध्ये नेमिनिर्वाणकाव्य—स्वयम्भू। पत्र सं० ९३। ६॥×५। श्री दि. जैन पंचायती मन्दिर, दिल्ली।

अन्तिम—
अइसय संपत्तउ वड्ढियउ नव केवललद्धिय लद्धियउ।
तइलोकपहुत्तण धारएण सयमेव सयंभु भडारएण॥ ४०॥ सन्धि २
इति हरिवंशमध्ये स्वयंभू कृत नेमिनाथ निर्वाणगमणं समाप्तः।

१७०. विज्जुच्चरजयमाल—१५ पद्य। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

इय चिंतिव्वउ रयणदिणु दिढ सम्मत्त चित्ति दय संजमु।
भवि भवि सामिउ परमजिणु, होउ होउ सम्माहिय महु मरणु॥ १३॥

१७१. आदित्यवारकथा—पं. सुरजण। गुटका सं. २९६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

पासजिणिंदपसायहं दिवसिह इउ कहइ।
पंडिय सुरिजणु पासहं भत्तउ वउ लहइ॥
जो यहु पढइ पढावइ णिसुणइ कन्नु दइ।
सो जसुकित्ति पसंसिय पावइ परम गइ॥

१७२. कालावली की जयमाल—गुटका सं. २९६। ६ कडवक। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

इगवीस सहासइ वरिसइ, तासु पमाणु पयासिउ।
छह कालहु एहु समासें, माणु जिणिंदें भासियउ॥ ६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७३. बुद्धिरसायण दोहडा—६७ दोहे। गुटका सं. २९६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

णेमीसुर हउं पयसरणु, सरसइ केरउ दासु।
उ णमचरित्तु पयासियउ, वुधजण करहु म हासि ॥ ६६ ॥
पढतहं सुणतहं जेवि णर, लिहिवि लिहावइ देहिं।
ते सुहु भुंजहिं विविह परि, जिणवरु एम भणेइ ॥ ६७ ॥
इति वुद्धिरसायणउ णमचरित्तदोहडा समाप्ताः।

१७४. नेमीश्वरजयमाल—गुटका सं. २९६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

घायपहंजण भवदुहभंजण, भवियणकमलदिणेसर।
सिव ए विहिणंदण.णयणाणंदण ॥ जय जत्थ णेमि जिणेसर।
जिणपुंगव णेमिकुमार णमो, सुरवइ सय वंदिय पाय णमो।
मरगयमणि सावल गत्त णमो, सहसट्ठसुलक्खण जुत्त णमो ॥

१७५. सत्पुरीयउत्साह—

वहुएहि तारायणेहि रवि पसरु किं भिज्जइ।
वहुएहि वि विसहरेहि मिलिवि किम गरुडु गिलिज्जइ ॥

१७६. वारहनावउं—जिनधर्मसूरि (१३वीं शताब्दी)।

तिहुयणमणि चूडामणिहिं वारहनावउं धम्मसुरनाहह।
निसुणहु सुयणहु नाणसणाहह पहिलउ सावण सिरिपुरिय ॥
कुवलयदलसामण घणु गज्जइ नं मद्दल-मंडल झुणि छज्जइ।

१७७. द्वादशभावनाविचार—केटलाग ऑव संस्कृत एंड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द राजस्थान, भाग ३ अ, जोधपुर, १९६७, पृ. ७५।

अन्तिम—

इअ वारह भावण सुणवि राउ, मण मज्झविअं भिउं भववि राउ।
रज्जवि कुणंतु चिंतयइ गाउ, परहरवि कुगइ कारण पमाउ ॥१४॥

१७८. मालारोहिणी—ब्रह्म नेमिदत्त। गुटका सं. १७। दि. जैन पाटोदी मन्दिर, शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

पणवेप्पिणु णिम्मलु णासिय कलिमलु, वीयराय जयतारउ।
पुणु अक्खउं छन्दुवि मुत्तियदामुवि, भवियहो मणह पियारउ।
× × ×
घणु जोव्वणु कंचणु रयणु परियणु भवणु वि सव्वु।
जलवुव्वुय करि कण्ण जिय चंचलु म करहु गव्वु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७९. शान्तिनाथदेवरास—उपाध्याय लक्ष्मीतिलक। प्रकाशित सम्मेलन-पत्रिका, ४७, ४, पृ. ३७-४५।

एहु रासु वहु भासु लच्छितिलयगणि निम्मयउ।
ते लहंति सिववासु जे नियमणि ऊलटि दियहि।।
महि कामिणि रवि इंदु कुंडलु जुयलि ण जास हुइ।
ताम संति जिणचंदु अनुइउ रासु वि चिरु जयउ।।६०।।

१८०. श्रावकाचार—देवसेनसूरि। २५० दोहे। कारंजा भण्डार में।

णमकारेप्पिणु पंचगुरु, दूरि दलिय दुहकम्मु।
संखेवे पयडक्खरहिं, अक्खमि सावयधम्मु।।

१८१. भावनासन्धि—जयदेवगणि। ६ कडवक।' जैन गूर्जर कविओ से उद्धृत।

पणमवि पुणसायर भुवणदिवायर, जिणचउवीसइ इक्कमणि।
अप्पं पडिवोहइ मोह निरोहइ, कोइ भव्व भावण विसणु।।१।।
निम्मलगुणभूरिहिं सिवदिवसूरिहिं पढमसीसु जयदेवमुणि।
किय भावणसंधी सिवभावु सुगंधी निसुणउ अन्नुवि धरउ मणि।।६२।।

१८२. श्रावकविधिप्रकरण—३२ गाथा। जैन गूर्जर कविओ से उद्धृत।

इय आगमविहि सावगई, पद दिणु किरिया सारु।
जाणिउ जिणपहि रइ करह, जिम छिन्नउ संसारु।।३२।।

१८३. आदिजिनकलश—जैन गूर्जर कविओ से उद्धृत।

वड्ढमाणजिणु पणविवि भावें, कलिमलकलुए विवज्जिउ पावें।
संचालेवि अइरावउ गइंदु, जसु जम्मण्हवणि आयउ सुरिंदु।
घत्ता—परमेट्ठि पयासणु णिरुवमु सासणु, इंदे वणिय जासु गुण।
जिण णवेवि पयत्तें कहसि हिययत्तें, थुइ अणमिय सुणेहु जणहु।।

१८४. कसायपाथडी—गुटका सं. ४९। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

इय मूल कसाइहिं जणिय पसाइहिं, हउं चउगइ संतत्तउ।
एवहिं धुव मेलमि भवसुह पेलमि, जिणतवयरणह सत्तउ।।

१८५. अनुप्रेक्षा—ईसर। गुटका सं. ५४। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

पुत्तकलत्तु सरीरसंपइ जीव कोर न तेरउ,
अण्णु पुग्गलु जडु अचेतनु कहाइ सु तुज्झ मेलउ।
तू ज्ञानवंतु महंतु चेतनु सुद्धु अप्पा जोइ,
अणत्तणु प्रेक्षा कहइ जियडा अण्णु पुग्गलु जोइ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८६. अनुप्रेक्षा—रइधू। ७ कडवक। गुटका सं. ५४। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

जाणिए हउं इहु देहु, मोहु चएप्पिणु तहु उवरि।
तहिं ठिउ विगय वियप्पु, झाइज्जइ चेयण णवरि ॥७॥

१८७. ज्ञानपिंडसार—२० कडवक। गुटका सं. ५४। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

अहु अहु सत्थवाह कुलभूसणु, णिसुणि धम्म हउं कहमि अहिंसणु।
विणु कज्जेण जीउ जे मारहिं, कुंतलउडि असिघाय पहारहिं ॥

१८८. चतुर्गति की पद्धडी—कडवक ४। गुटका सं. ५४। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

चउगइ संसारभमंतहं दुक्खइं कहमि तुहारइ,
जइ सक्कइ विहि मेलाइवि तो मेरुहें गरुयारइ।

१८९. नेमीश्वर नियंछण—कडवक ४०। गुटका सं. ५४। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

अइसय संपत्तिउ वढ्ढियउ, णवकेवल लद्धिउ लद्धियओ।
तइलोयपहुत्तण धारयण, सयमेव सयंभु भगरयओ ॥४०॥

१९०. णाणपिंड की पाथडी—२० कडवक। गुटका सं. ५४। श्री दि. जैन पाटोदी मन्दिर, जयपुर।

जे कह हिअ दिट्ठु वि दिट्ठउ, असुवउ सुवउ कहंति।
ते अंध वहिर णर पाविय, दुक्किय महिहि भमंति ॥

१९१. अष्टाह्निकापूजा—गुटका सं. २९। १८ पद्य। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

आरतिय जोवई कम्मइ धोवइ सग्गापवग्गह लहुहु लहइ।
जं जं मण भावइ तं सुह पावइ दीणु विकासु ण भासइ ॥१८॥

१९२. चिन्तामणिपार्श्वनाथ पूजा—सोमसेन। उ ४६ ख। ९॥ × ६। ले. का. सं. १९०१, माघ कृ. ७, वुधवार। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

तेसु पासजिण ता तणउ भिच्चु, इम भणइ सोमसेणय सच्चु।
पुज्जणाणुवंतु पणवउ तिकाल, भवणउ त हरखु हियहु दयाल।

१९३. आदिनाथ की आरती—गुटका सं. २५। ६। × ५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली।

इह जो भवियण भावण भावहि....सो वरियं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९४. बीसविहरमाणपूजा—गुटका सं. २५ । ६।×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

ए बीस जिणेसुर....परमपयं ।

१९५. पंचमेरुपूजा—गुटका सं. २५ । ६।×५॥। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

इय थुणवि जिनेसुर....सिव सुहाई सो पावइ ।

१९६. षोडशकारणपूजा—गुटका सं. २९ । ७॥×६। श्री दि. जैन नया मन्दिर, दिल्ली ।

ए सोलहकारण कम्मवियारण....सिद्धवरंगन हिययवरा ॥१॥

१९७. पोसहरास—श्री ज्ञानभूषण गुरु । गुटका सं. २९६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

भव मझारि पुनरपि न आवइ, जेह वउफलु जस गमइ ते नर
पोसउ काइं न भावइ ।

एणि परि पोसउ धरहु, जे नर नारि सुजाण—
श्रीज्ञानभूषण गुरु इम भणइ ते नर करहु वखाणु ॥१०१॥

१९८. सप्ततत्त्व—गुटका सं. २९६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

जो नरु इसु कहुं पढइ पढावइ
तिसु कहु दुरिउ न आवइ एकु खिणु,
जो नर सत्त तच्च मनु लावइ
सो नरु हो सिवपुरि पावइ छोडि तणु ॥२०॥ इति सप्ततत्त्व समाप्तः ।

१९९. अनुप्रेक्षा—१२ कडवक । गुटका सं. २९६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

विसयविरत्तु महंतु निम्मलु धम्मु जिय दय सारहो,
मरणु होइ संन्यास सेती सव्व भयखयकारहो ।
वारह परिस्सहा रातिं दिवसहिं नित्त हियडा भावहिं,
वोधनुपरेक्खा कहइ जियडा मुकतिरमणी पावहो ॥१२॥

२००. दशधर्म—ब्रह्ममुनि । गुटका सं. २९६ । १० पद्य । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

इहु नवपयारि जु करइ दिढु करि, धम्मु दहविह भासए ।
ब्रह्म परम मुणिंद भासहि, सो जिणागमि कीजए ॥१०॥

२०१. समाधि—५० पद्य । गुटका सं. २९६ । आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर ।

जो अणुदिणु झावइ, सो अजरामरु सिवसुहु पावइ ।
सम्माधी जिणदेवहं दिट्ठी, जो करई सो सम्माइट्ठी ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०२. पंचकल्याणकरास—मुनि विनयचंद। २४ पद्य। गुटका सं. २९६। आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

तिहु आयंविलु जिणु भणइ, चउहिमि होइ उववासु गिहत्थहं।
अहवा सयलह खुवणविहि, विणयचंद मुणि कहिउ समत्थहं॥

२०३. लक्ष्मीवल्लभ— × । पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली।

इम वीरजिणवर नायदिणयर सयललोयसुहंकरो।

२०४. जिनमाला—नेमिदत्त। भानपुरा के भण्डार के हस्तलिखित गुटके में। २५ छन्द।

सयल जिणेसर पयकमल पणविवि जगि जयकार।
फुल्लमाल जिणवर तणी पभणउं भवियणतार॥१॥
सिरि रिसभ अजिय संभव अभिणंदण सुमति जिणेसरु पापणिकंदण।
पदमप्पह जिण णामें गज्जउं, सिरि सुपासु चंदप्पहु पुज्जउ॥२॥
पुप्फयंतु सीयलु पुज्जिज्जइ, जिणि सेयांसु मणिहिं भाविज्जइ।
वासुपुज्जु जिणपुज्जु करेप्पिणु, विमलु अणंतु धम्मु झाएप्पिणु॥३॥
सांतिकुंथुअरमल्लिजिणेसरु, मुणिसुव्वय परमेसरु।
नमि नेमीसरपाय पुज्जेसिउ, भवसायरहुं पाणिय देसिउं॥४॥
पासणाह भवपासणिवारणु, वड्ढमाणजिणु तिहुवणतारणु।
ए चउवीस जिणेसर वंदिवि, सिवि गामिणि सारद अहिणंदिवि॥५॥
सिरिमूलसंघ महिमारयणायर, गुरु णिग्गंथ णमउं सुयसायर।
सिरिजिणफुल्लमाल वक्खाणउं, नरभव तणउं सार फल माणउं॥६॥

आर्या—

भो भवियण भव भवहरण तारण चरण समत्थ।
जाती कुसुम करंज लिहि पुज्जहु जिण बोहत्थ॥७॥

त्रिभंगी छन्द—

जाती सेवत्ती वरमालती चंपय जुत्तो विकसंती।
ववर श्रीमाला गंधविसाला कुज्जय धवला सोभंती॥
रत्तुप्पल फुल्लहि कमनवल्लहि जूहीजुल्लहि जयवंती।
मचकुंदकयंवहि दमणयकुंदहि नाना फुल्लहि महकंती॥८॥
सग्गमोक्खसुहकारिणी मालजिणिंदह सार।
विणउ करेप्पिणु मंगियइ जिम लागइ भवपार॥९॥

मौक्तिकदाम छन्द—

सुमोग्गर फुल्ल महक्कइ माल, मधुक्कर ढुक्कहि गंधरसाल।
सुपाडल पारियजाइ विचित्त, जिणेसर पुज्जहु लोयपवित्त॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सयल सुराधिप पुज्जिउ, पुज्जहु सिरि जिणदेउ ।
धणकणजणसंपय लहहु, दुक्ख तणउ होइ छेउ ॥११॥

मौक्तिकदाम छन्द—

सुरासुरकिण्णर खेयर भूरि, जिणिंदु पयच्चहिं णहिं नारि ।
सुअच्छर गावहिं सोक्खधाम, जिणिंदहं सोहइ मोत्तियदाम ॥१२॥

२०५. श्री कमलजयमाला—

पणवेप्पिणु भावि विमलसहावि भत्तीए संतिजिणेसरहो ।
निसुणिज्जउ भवियउ भवदुहखवियउ पुणु अक्खमि नवकारफलु ॥
नवकारविहूणउ जीव तुहुं भवि भवि संपत्तु अणंत दुहुं ।
एकिंदिय जोणिहिं परिभमीउ वियलेंदिय बहुदुक्खइं गमीउ ।
अलहंतउ पुणु नवकार तुहुं वेंदिय जोणियहिं पत्तु दुहुं ।

२०६. पात्रपरीक्षा—७ सन्धि । दि. जैन शास्त्र-भण्डार, भानपुरा के हस्तलिखित गुटके में ।

पणविवि तित्थंकर तिजयसुहंकर वाहिए सरिवर णाणणिहि ।
गणहर आयरियइं जस्स वि फुरियइं वोच्छमि पत्तपरिक्खविहि ॥
पढमजिणंद तिजयवर पत्तइं केवलणाणपरमगुणजुत्तइं ।
जहि वरणंत चतुट्ठय लद्धइं पुज्ज णिज्ज ते तिजयपसिद्धइं ।
ठिय समभाइं ण अण्णहु अंचहिं अप्पउ अप्पसरूवें संचहिं ।
तिजयणाह सुरणरह पहाणइं करहि जिणंद पंचकल्लाणइं ।
गुरगणहर आयरिय पवित्तइं तहविहि दाणपूयफल उत्तइं ।

२०७. चच्चरी—श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में । ३० पद ।

भगति करिवि पहु रिसहजिण वीरहचलण नमेवि ।
हुउं चालिउ मणि भाउ करि दुइ जिण मणि सुमरेवि ॥१॥
गाँवि नयरि पुरि जिणभवणि जे चाचर पभणंति ।
चउगइ गमणु निवारि नर ते सिवसुहु पावंति ॥३०॥

२०८. दिघम सबरीभास—श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में । १६ पद ।

गयगमणि बाली मयणची आली,
दिघमि निय-नयणु लेवनि निहाली ।

२०९. जिनचंद्रसूरिफागु—श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में । ५० पद ।

प्रारम्भिक—

अरे पणमवि सामिउ संति जु सिववाउलि उरि हारु ।
अरे अणहिलवाडामंडणउ सवव ह तिहुयणसारु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम—

सिरि जिणचंदसूरि फागिहिं गायहिं जे अति भावि।
तें बाउल अरु पुरुसता विलसहि सिवसुह सावि ।।५०।।

२१०. छहकालचक्कुसमासु—कइपरमेसर। एक हस्तलिखित गुटके से। ६ कडवक।

उप्पण्णु तित्थु तित्थयरदेव, चक्केसरहलहरमहिस–सेव।
तिक्खड णाह पडिवासुदेव, चउवीस महातहि कामदेव।।
आगमु पुराणु चउसट्ठि भेय, केवलि परमेसर रिसि अणेय।
णवणारायणु एयारह वि रुद्दु, उप्पण्णु पयड जिह जगि समुद्दु।।

घत्ता—हलहरकेसव कित्तिय धम्म पयत्त ण लित्थइ।
अइसइ केवलणाण हवइ इह कालि चउत्थइ ।।४।।

पंचमउ कालु दुसमहु रउद्दु, होइय सय दुहसम्मुहु।
तहेव खयर होसिय लोय ताम, गय वरिस सहसइ कइस जाम।
उच्चत्थु तित्थु आहुट्ठ हत्थु, जीवेसहि वीसासपणि रद्ध।
कंदलिय णरवइ अत्थलुद्ध, होएसहिं अवरोपरु सक्रुद्ध।
लुट्टेसहि पट्टणगामदेसु, दंडीसहिय पामरजण असेसु।
कंदरगिरिवण चरणण पवेसि, णिव सेसहि णर मिलयाहि देसि।
उच्च असोयह सहिंवि विम्ह गाम, आसातरवरहो सहिय गाम।
सज्जेसहि मठदेवलविहार, पूरेसहि सरवरजलअपार।

घत्ता—जणु होसइ दुट्ठ हे भत्तउ, जीवु म होसइ पावमइ।
उवहासु करेसहि जिणवरहो, परघणमहिला सत्त अहो ।।५।।

अइदूसहु दुसमु भीमकालु, होएसइ छट्ठउ दुहविसालु।
सोलह संवच्छर आउतित्थु, उच्चु वि तिहि होसइ एकु हत्थु।
तहि कालि णाहि वउणियमु धम्मु, जणु सयलु करेसहि असुहकम्मु।
णिवसेसइ गिरिगुहकंदरेहि, जलथलदुग्गम्मि वणंतरेहि।
धणधण्णरहिय दुव्वलसरीर, आहारकंदउंवरकरीर।
कयविक्कयवरववहारचुक्क, रसतेलहीणपंगुरणमुक्क।
कम्मह अणिट्ठ पाविट्ठ दुट्ठ, गलगंडवाहि संगहिय धिट्ठ।
खरफरस परोप्पर अप्पचित्त, होसहि अवरोव्वरु कुहियगत्त।
धम्मत्थविवज्जिय दुक्खजालु, छट्ठउ अइ दूसहु कहिउ कालु।

घत्ता—इगवीससहासइ वरिसइं, तासु पमाणु पयासिउ।
छहकालहु एहु समासु, माणु जिणदेवभासियउ ।।

इय छक्कालुचक्कु संमत्तो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२११. त्रिशत्चतुर्विंशतितीर्थंकरपूजाजयमाल—कवि सहणपाल। प्रकाशित 'जैन-सन्देश', शोधांक २१, २० मई, १९६५, पृ. २३।

सुणि सवणि सुघोणिग विणयवाणि, महु दासहु कज्जुमहापवाणि।
लोयसिरि चडावहि णाणतेय, महु विग्गहु वरगुण अट्ठभेय॥
सहसत्ति सम्पहुकरि पसाउ, पहु सव्वभव्व सावय सहाउ।
विज्जहुणियवारइ बुहविपास, करजोइमु चिर करताल णास।
मिच्छत्त महण सुरव्वणाम, सयसत्तवीस अत्तरकघाम।
सासय सिरिमुहुभोग वण्ण भालु, घरघरणि पयंपइ 'सहणपालु'।
घत्ता—पुच्छियहु लिहिय जारसी, मुणिय णामकुसुम पद्धडिय मुणे।
गुंफिय वारासरि मणकमले, संठिय चलणद्दय अद्धतणे॥३०॥
इति तीस चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा।

२१२. सीमंधरस्वामीस्तोत्र। प्रकाशित 'जैनयुग', पुस्तक ५, अंक १–३, वि. सं. १९८५-८६, पृ. ५६-५७। २० पद।

नमि नमि सुर असुर नरवंडि वंदी पयं
रयणियर करनियर कित्तिकरपूरियं
पंचसई घणुघणुह परिमाण परिमंडियं
थुणह भत्तीई सीमंधरसामीयं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरानी हिन्दी की रचनाओं के कतिपय अंश

१. हरिषेणचरिउ—कवि शंकर। प्रकाशित, जैन-सन्देश, शोधांक ६, ४ फ़रवरी, १९६०, पृ. २१७–२०। र. का. वि. सं. १५२६।

जं चिरकाल वयण मइ वुत्तु, हास-कोडि इह कोह संजुत्तु।
तं महु अज्जु खमहु णिरु सव्वु, चढि विमाण जाहि घर वप्पु ॥६३४॥
इह संबोह मंति पाठयउ, आपुणु दिक्ख लइवि संठियउ।
हारटोर अंवर सुविशेष, उत्तारिय आभरण विशेष ॥६३५॥
अंसु-पवाह-णयण परिचवइ, गह भरि आयउ किंपि ण लवइ।
ताम णरेसरु दिढु कर चित्तु, पुच्छइ मंति कहहि जं चित्तु ॥६४२॥
ता मंती सयलु वि अक्खियउ, एकु वि गुज्झु ण तह रक्खियउ।
जिम कइलास सिहरि संपत्तु, तिम संसारह भयउ विरत्तु ॥६४३॥
इयर अंतेवर पहुंती आइ, जयचंदा कहु लेहु बचाइ।
करुणपलाउ करंती तहां, चक्कवट्टि हइ मुच्छिउ जहां ॥६४९॥
हा ! पिय, पिय किं कियउ अजुत्तु, जइ वि तवोहण संठिउ पुत्तु।
काहे राजभंगु तुम कियउ, पुत्तवियोग जीउ किं दियउ ॥६५०॥

२. सदयवत्सवीरप्रबन्ध—भीम। प्रकाशित।

अडयल्ल : जिम जिम केसरिपइ ऊहटइ, जिम जिम विसहर नूलीवटही।
दीनवयण जिम जंपइ सूरु, देसि देसि कीधइ बहु पूरु ॥

३. सदैवच्छ सावलिंगा चउपई—मुनि केशव। सम्पादक—डॉ. मंजुललाल मजूमदार। प्रकाशित, सा. रा. रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वीकानेर।

कर जोडी मुहतो कहइ, सुणि ओझा सुविचार।
एक भणावो अम्ह तणी, पुत्री रति अणुहार ॥
दृढ़ कच्छा कर वरसणा, वोलता मूंठ मिट्ठ।
रणं सूरा जगि वल्लहा, ते मइं विरला दिट्ठ।

४. वसन्तविलास— × । सं. प्रा. कान्तिलाल बलदेवराम व्यास, वम्बई, द्वि. सं., १९५७।

नयर निरोपीय ती वनु जीवनु तणउं युवान।
वासभुवनि तिहां विलसइं जलसइं अलीअल आण ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामुकजनमन जीवनु ती वनु नगर सुरंगु ।
राजु करइ अविभंगिहिं रंगिहिं राउ अनंगु ॥१६॥

५. प्रद्युम्नचरित—सधारु । प्रकाशित ।

सो सधार पणमइ सुरसुति ।
रहटमाल जिउ यह जीउ फिरइ, तिसकउ अंत न कोउ लहइ ।

६. राउल वेल—रोडा । प्रकाशित ।

पारडी आंतरै थणहरु कनसउ, सरय जलय बिच चांदा जइसउ ।
सूतेर हारु रोमावलि कलिअउ, जणि गंगहि जलु जउणाहि मिलिअउ ।

७. पृथ्वीराजरासो—चन्दवरदाई । प्रकाशित ।

हहकंत कूदन्त नंचे कमंथं
कडक्कंत वज्जंत कुट्टन्त संघं
लहक्कंत लूटंत तूटंत भूमं
झुकं तै घुकंतै दोऊ वथ्थ झूमं
दडक्कंत दीसंत पीसंत दंसं ।

८. माधवानल कामकन्दला—गणपति । सम्पादक एन. आर. मजूमदार । प्रकाशित, ओरियंटल रिसर्च इंस्टीटयूट, बड़ौदा ।

अपनी तलि अवला इसी, नारि न बीजी कोई ।
विह बावी जग मोहवी, मोहण वल्ली सोह ॥२,६७॥
निर्मल मोती नासिका, नयणे कज्जल-रेह ।
भमहि धनुष शर पूरियां, सुहड सहइ नहीं तेह ॥२,८४॥

९. ढोलामारू रा दोहा—× । प्रकाशित ।

जिणि देखें सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
उआं लगे मो लग्गसी, ऊही लाख पसाउ ॥
हइ रे जीव निलज्ज तूं, निकस्यू जात न तोहि ।
प्रिय विछुड़त निकस्यउ नहीं, रह्यउ लजावण मोहि ॥३७३॥
विरह वियापी रयणि भरि, प्रीतम विणु तन खीण ।
वीण अलापी देखि ससि, किस गुण मेल्ही वीण ॥५६९॥

१०. कुतुबशतक—× । प्रकाशित, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

साहिब सौं सूरत्तियां, हूं मालन इहि कम्म ।
जिउं किउं दक्खावल्लिया, जउ रवि लग्गइ अंब ॥९॥
केसा के कसि बंधियां, के छुट्टियां रुलंति ।
जाणे सप्पणि अप्पणा, चर चिंटुआ भखंति ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जउ जोरां तउ तुज्झ ही, जउ गोरां तउ तुज्झ ।
एह करंदा मुज्झ हइ, अउरु करंदा बुज्झ ॥३७॥
साहिजादे साहिबियां, साहि करंदा लल्लि ।
लज्जा लोयन नच्चणां, लोइ हुंसदे कल्हि ॥३४॥
मइ सउणा सुणि दिक्खिया, आज अणंदी वेलि ।
साहिबियां सर मद्धरां, हंस करंदा केलि ।६३॥

११. श्री शान्तिनाथदेवरास—उपाध्याय लक्ष्मीतिलक । प्रकाशित, सम्मेलन-पत्रिका, भा० ४७, अंक ४ ।

संतिजिणेसर चरण कमलु, कमलह आवासू ।
उत्तंसिय निय उत्तमंग, सुर हिय दस आसू ॥
सवणमुहूसवु चरिउ तासु, विरइमु संखेवी ।
नाचहु भवियहु भाव सारु, सिंगारु करेवी ॥१॥
अत्थि एत्थु हत्थिणागपुरु, कुरु मंडल-मंडणु ।
अच्चब्भुय जसु रिद्धि पिक्खि, संकिउ संकंदिणु ॥
धाइउ नियपुरि सरइ तत्थ, संमंतु संभालइ ।
घरदेउल आराम देव, देवी अट्टालय ॥२॥
एहु रासु बहु भासु 'लच्छितिलय' गणि निम्मयिउ ।
ते लहंति सिववासु जे नियमणि ऊलटि दियहि ॥५९॥
महि कामिणि रवि इंदु, कुंडलजुयलिण जास हइ ।
ताम संतिजिणचंदु, अनुइउ रासु वि चिरुजयउ ॥६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट (१)

संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कतिपय अपभ्रंश पद्य

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र, सम्पादित—मनमोहन घोष, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९५६।

मोरल्लउ णच्चन्तओ मेहागमे संभन्तओ ।३२, ६४
एए गज्जन्ता तोयं मुंचन्ता ।
लोयं छादन्ता मेहा संपत्ता ॥३२, ६५
मेहणिरुद्धं पेक्खिअ वोम्मं ।
पत्थिअदारा अंसुकिलिण्णा ॥३२,६७
पवणहओ सलिलधरो ।
भमइ णहे अहियसमो ॥३२, ६९
मोहराअदो णट्ठजोण्हओ ।
णिच्चणिप्पहो एस चन्दओ ॥
एसो मेहादो णद्दन्तो अचलणिहो
लीला उक्कोलं दाणन्तो सहि रुचिरो ।
वाआलं खे पिच्छाणो पवणजवो
संसारन्तो विज्जुज्जोदो भमदि दुदं ॥३२,१६६

आ० भरतमुनि द्वारा रचित ये ध्रुवागीतियाँ हैं। नाटकों में ऐसी गीतियों की रचना प्रायः बोलियों में हुई है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार अश्वघोष तथा कालिदास ने भी प्राकृतप्रभावापन्न अपभ्रंश के कुछ अंश रचे थे, जिन के निदर्शन आज भी उन की रचनाओं में विकीर्ण हैं। विक्रमोर्वशीय के अन्तर्गत चर्चरी रचना भी अपभ्रंश की है। इसी प्रकार तन्त्र-मन्त्र के ग्रन्थों में भी अपभ्रंश के पद्य मिलते हैं।

महाकवि कालिदासकृत विक्रमोर्वशीय नाटक, सं. एम. आर. काले, बम्बई, ए. आर. सेठ एंड कं., बम्बई २।

मइं जाणिअ मिअलोअणि णिसिअरु कोइ हरेइ ।
जाव णु णव-तडिसामल धाराहरु वरिसेइ ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गन्धुम्माइअमहुअरगीएहिं,
वज्जन्तेहिं परहुअतूरेहिं।
पसरिअपवणुव्वेल्लिरपल्लवणिअरु।
सुललिअविविहपआरहिंणच्चइं कप्पअरु ॥२॥

बहिण पइं इअ अब्भत्थिमि आअक्खहि मंता।
एत्थु रण्णे भमन्ते जइ तुअं दिट्ठी सा महु कंता॥
णिसम्महि मिअंकसरिसे वअणे हंसगइं।
ए चिण्हे जाणिहसि आअक्खिउ तुज्झु मइं ॥३॥

परहुअ महुर-पलाविणि कन्ति,
णन्दण-वण सच्छन्द भमन्ति।
जइं पइं पिअअम सा महु दिट्ठि,
ता आअक्खहि महु परपुट्ठि ॥४॥

रे रे हंसा किं गोविज्जइ।
गइ अणुसारें मइं लक्खिज्जइ॥
कइं पइं सिक्खिउ ए गइलालस।
सा पइं दिट्ठी जहणभरालस ॥५॥

हउं पइं पुच्छिमि अक्खहि गअ-वरु।
ललिअ-पहारे णासिअ-तरु-वरु॥
दूर-विणिज्जिअ ससहर-कंती।
दिट्ठी पिअ पइं संमुह जंती ॥६॥

सुरसुन्दरि जहण-भरालस पीणुत्तुंगघणत्थणि।
थिरजोव्वण तणुसरीरि हंस-गइं॥
गअणुज्जल-काणणे मिअ-लोअणि भमन्ते
दिट्ठी पइं तह विरह-समुद्दन्तरें उत्तारहि मइं ॥७।

लए पेक्खिविणु हिअएं भावमि।
जइ विहिजोए पुणु तहिं पावमि॥
ता रण्णे विणु करिमि णिब्भन्ती।
पुणु णइ मेल्लइं ताह कअन्ती ॥८॥

मोरा परहुअ हंस विहंगम।
अलि गअ पव्वअ सरिअ कुरंगम॥
तुज्झह कारणें रण्ण भमन्ते।
को णहु पुच्छिउ मइं रोअन्ते ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथासप्तशती—हाल कवि । निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३ ।

अग्घाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्हि जणिअरोमंचो ।
जाआकवोलसरिसं पेच्छइ पहिओ महुअपुप्फं ॥७,३९
ण अ दिट्टिं णेइ मुहं ण अ छिविउं देइ णालवइ किं पि ।
तह वि हु किं पि रहस्सं णववहुसंगो पिओ होइ ॥ ७,४५

बालचरित—भास । प्रकाशक—मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९५९ ।

एसोम्हि जुद्धसज्जो मत्तो हत्थी व दप्पसम्पुण्णो ।
भज्जेमि अज्ज बालं दामोदलं लंगमज्झम्मि ॥ ५,४
लोमहयमुट्ठिहत्थो णामेण य मुट्ठिओ लुट्ठि ।
पादेमि अज्ज लाभं गिलिवलकूटं जहा वज्जो ॥ ५,५
(वस्तुतः यह प्राकृत भाषा है)

तन्त्रसार—अभिनवगुप्त । सं. पं. मुकुन्दराम शास्त्री । काश्मीर संस्कृतग्रन्थावलि, श्रीनगर, १९१८ ।

जह जह जस्सु जहिं चिव पफुरइ अज्जत्रसाउ ।
तह तह तस्सु तहिं चिव तारिसु होइ पहाउ ॥ आ. ४,१
सुण्णउ रविससि दहन सउ उस्सउ एहु सवीरु ।
उहि अच्छन्तउ परमपउ पावइ अचिरे वीरु ।। आह्निक ५

मृच्छकटिक—शूद्रक । प्रकाशक—खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, बनारस, १९५३ ।

चन्दनक—अरे रे, पेक्ख पेक्ख ।

ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअमग्गस्स ।
एदं दाव विआरह कस्स कहिं पावसिओ पवहणो त्ति ॥ ६,१२
'माथुर—अले, विप्पदीवु पादु । पडिमाशुण्णु देउलु । धुत्तु जूदकरु विप्पदोवेहिं पादेहिं देउलं पविट्ठो । —द्वितीय अंक ।
शकार—णिक्कम ले । अले चाण्डाला, किं विलम्बेध । भालेध एदम् ।
(अपभ्रंशपाठकेषु शकारीभाषापाठको राष्ट्रियः । चाण्डालीभाषापाठको चाण्डालो । ढक्कभाषापाठको माथुरद्यूतकरो । —पृथ्वीधर)

चतुर्भाणी-सं. श्री मोतीचन्द्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय प्रा. लि., बम्बई, १९५९

उहि माणुसोक्ति भट्टाउहेण णवि लिच्छइ आउहेण य ।
सोण्णर तस्स कम्मसिद्धि विघसु खलु भुंजति सुकरासिद्धि ॥
(यह भी प्राकृत है ।) —पादताडितकम्, ६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्वन्यालोक—आनन्दवर्द्धन ।

खणपाहुणिआ देअर एसा जामाए किंपि ते भणिया ।
रुअइ पडोहरवलही घरम्मि अणुणिज्जउ वराई ॥ ३,४४
सिहिपिंछ कण्णपूरा जाआ वाहस्स गव्विरी भमइ ।
मुत्ताफलरइअपसाहणाणं मज्झं सवत्तीणम् ॥ २,२४
महु महु त्ति भणंतियहो वज्जइ कालु जणस्सु ।
तो वि ण देउ जणद्दणउ गोअरि होइ मणस्सु ॥ ५ ॥

दशरूपक—धनंजय । प्रकाशक—चौखम्भा विद्याभवन, बनारस, वि. सं. २०११ ।

दुल्लह जणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा ।
पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवर एक्कम ॥
जं किं पि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहा तहच्चेअ ।
णिज्झाअ णेहमुद्धं वअस्स मुद्धं णिअच्छेहि ॥

शृंगारप्रकाश—महाराजा भोज । सं. जी. आर. जोसयर, मैसूर, १९५५ ।

तह कमलक्कमलचंदो चंदमुहि तुज्झमुहअंदो ।
कमलं उण कमलच्छिअ चंदोचंदोच्चिअवराओ ॥ सप्तम प्रकाश,
चुंबिज्जइ सहहुत्तं अपवाहिज्जइ सहस्ससअहुत्तं ।
रमिअ पुणो विरमिज्जइ पिएजणे णत्थि पुणरुत्तं ॥ वहीं,
गअणं च मत्तमेहं धारालुलिअज्जणाइ णवणाइ ।
णिरहंकारमिअंका हरंति नीलाओ विअ णिसाओ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट (२)

प्राकृत साहित्य में उपलब्ध कतिपय अपभ्रंश पद्य

कोद्धायओ को समचित्त
काहो वणाहिं काहो दिज्जउ वित्त।
को उग्घाडउ परिहियउ परिणिउ को व कुमारु
पडियउ जीव खडप्फडेहिं वंधइ पावह भारु ॥६॥

—सूत्रकृतांग (शीलांकाचार्य)

पासि कप्पि चउरंसिय रेवा-पय पुण्णियं
सेडियं च गेण्हेप्पि ससि-प्पभ-वण्णियं।
मइं सुयं पि एक्कलियं सयणि निवण्णियं
सव्व-रत्ति घोसेइ समाण-सवण्णियं ॥१॥

—वसुदेवहिंडी (संघदास गणि)

णंदो राया णवि जाणइ जं सगडालो करेहिइ
नंदो रायां मारेविणु सिरियं रज्जे ठवेहिइ ॥२॥

—आवश्यकचूर्णि (जिनदासमहत्तर गणि)

जो जसु माणुसु वल्लहउ तं जइ अण्णु रमेइ
जइ सो जाणइ जीवइ वि तो तहु पाण लएइ ॥३॥

—कुवलयमालकहा (उद्योतन सूरि)

जहिं बिल्ल-पलासह तरुवराहं, पायउ जइ महिगउ होइ ताहं।
अह खंजरीडसंजोउ होइ, ता तत्थ निरुत्तु निहाणु जोइ।
जो पायउ रत्तइं रसिण जुत्तु, सो रयणह निहि अक्खइ निरुत्तु।
पीइं रसेण कंचणु विसिट्ठु, धवलइ कलहोउ मुणिंदि सिट्ठु।
हुं होसइ रयणनिहाणु एत्थु, झिसि जोइवि तो तिं खणिउ तेत्थु।
उवलद्धु समुग्गउ रयणजुत्तु, तं पेच्छिउ हरिसिउ तासु चित्तु ॥
तो गिण्हिहि हत्थि छाइवि वत्थि, चलिउ जाव सो नियनयरह।
ता पत्तउ चोरिहिं पहरणघोरिहिं, हुयउ घरह न बारह ॥६॥

—आख्यानकमणिकोश, १३, ६ (सोमप्रभाख्यानक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरकुंडलहाराभरणु लेवि, उज्जाणि नट्ठु भडुयणु छलेवि ।
तत्थेव देविमंदिरि पविट्ठु, तसु पासि दच्छु मिल्लिवि वइट्ठु ।
तो तेण पयंपिउ संभमेण, हुउं चोरु न वंभणु कारणेण ।
देसंतरि पत्थिउ पयइसच्छु, इह सुत्तह केणइ मुक्क दच्छु ।।
तो तक्करु वंधिवि वंभणु रुंधिवि, दो वि नोय रायह भवणु ।
तेंहिं अक्खिउ रायह निवनयपायहं, देव ! चोरु आयहं कवणु ।।१५।। वहीं.

श्रेष्ठिपुत्रजन्मोत्सववर्णन—

वज्जंतचारुतूरयं नच्चंतनारिपूरयं, गायंततारगायणं ढुक्कंतसाहुवायणं ।
तुप्पिज्जमाणचट्टयं, पढंतभूरिभट्टयं, आवंतअक्खवत्तयं हीरंतपुन्नवत्तयं ।
किज्जंतबालरक्खयं पूइज्जमाणपक्खयं, सुव्वंतविद्धिसद्दयं संतुट्ठपीठमद्दयं ।
ओलग्गमाणसेवयं संथुव्वमाणदेवयं, आवंतभूरिपाउलं तोसिज्जमाणराउलं ।
सिज्झंतभत्तपाणयं दिज्जंतदीणदाणयं, मुच्चंतगोत्तिवंधणं किज्जंतरुट्ठसंधणं ।
वग्गंतचारुचारणं संजायलोयसारणं, तुप्पंतसाहुपत्तयं लब्भंतभूरिभत्तयं ।
इयवहुविहविच्छडिण रंजियसयलजणु, विलसिरकित्तिकुलंगणनिम्मलकुल-भवणु ।
नर-नारियण-नरेसरमणह सुहावणउं, विहवमहाभरिमिब्भि किउ वद्धावणउं ।।

—पत्र २६६, पद्य ३२, वहीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट (३)

अपभ्रंश के शिलालेख

अपभ्रंश भाषा में लिखे हुए तीन शिलालेख मिलते हैं। प्रथम मध्य प्रदेश के दमोह ज़िले में हटा तहसील से आठ मील दूर जटाशंकर नामक निर्जन स्थान से प्राप्त हुआ है और अन्य दो मध्य प्रदेश की धारा नगरी (धार) से। इन दिनों प्रथम शिलालेख नागपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है और तृतीय प्रिन्स ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम, बम्बई में है। प्रथम शिलालेख का सर्वप्रथम परिचय स्वर्गीय रायबहादुर डॉ. हीरालाल जी ने 'लिस्ट ऑव इन्स्क्रिप्सन्स इन सी. पी. एंड बरार' में दिया था। इस का विस्तृत परिचय काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका के छठे भाग में वि. सं. १९८२ में प्रकाशित हुआ था। शिलालेख के कुछ अंश भी ना. प्र. पत्रिका में प्रकाशित हो चुके थे, किन्तु इस लेख को सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित करने का श्रेय श्री बालचन्द्र जैन, सहायक संचालक, म. प्र., भोपाल को है। लेखक को उन से ही यह लेख प्राप्त हुआ, जिसे अविकल रूप से दिया जा रहा है।

शिलालेख की लिपि और भाषा

यह शिलालेख साढ़े ग्यारह इंच चौड़े और पौने चार फ़ुट ऊँचे पत्थर पर खुदा हुआ है। इस में ४० पंक्तियाँ हैं, किन्तु नीचे का भाग दोनों ओर से थोड़ा-थोड़ा टूट गया है।

अक्षरों की बनावट के आधार पर शिलालेख को १२ वीं शताब्दी का माना जा सकता है। इस की भाषा अपभ्रंश और संस्कृत है। पहले अपभ्रंश में लिखा गया है और फिर उसी का संस्कृत में अनुवाद है। संस्कृत भाग में गलतियाँ बहुत हैं।

विवरण

प्रशस्ति का प्रारम्भ शिवजी की स्तुति से होता है। चौथी पंक्ति में कवि रल्ह का नाम आता है, जो इस प्रशस्ति के रचयिता कवि हैं। पाँचवीं पंक्ति में विजयसिंह नामक नृप का उल्लेख है, जो भुम्भुकदेव का भक्त था।

प्रशस्ति से जो इतिहास सम्बन्धी सूचनाएँ मिलती हैं वे इस प्रकार हैं—विश्वामित्र गोत्र में गण्ड और (उन के बेटे) वध्घड हुए। वध्घड का बेटा विजयपाल था। विजयपाल के बेटे भुवनपाल ने काई नामक प्रतापी राजा को संग्राम में जीत लिया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुवनपाल के बेटे हर्षराज ने कलचुरि, गूजर, शशधर और दक्षिणपति—इन चार राजाओं को पराजित किया था। हर्षराज का बेटा विजयसिंह था। वह भुम्भुकदेव का भक्त था और बड़ा धार्मिक पुरुष था। विजयसिंह ने दक्षिण की फ़ौज को महागढ़ दुर्ग के निकट हराया था। उस ने चित्तौड़ में भी लड़ाई लड़ी थी। दिल्ली की सेना को भी उस ने पराजित किया था और गूजरों को गोदह (गोधरा) तक खदेड़ दिया था।

संस्कृत में लिखे गये विवरण में उपर्युक्त बातें दोहरायी गयी हैं। इस भाग में हर्षराज द्वारा जीते गये चार राजाओं के नाम इस प्रकार कहे गये हैं—कलिंजरेश, डाहलिक, गुर्जर और दक्षिणपति।

प्रशस्ति के वर्णन के अनुसार यह राजवंश कोई प्रतापी और प्रभावशाली वंश जान पड़ता है, किन्तु अन्यत्र कहीं इस वंश का वर्णन नहीं मिलता और न ही इस के दूसरे कोई शिलालेख आदि ही प्राप्त हो सके हैं। स्वर्गीय रायबहादुर हीरालाल का मत था कि ये लोग राजा नहीं थे, क्योंकि प्रशस्ति में उन के नामों के साथ राजकीय उपाधि आदि नहीं मिलती। किन्तु रायबहादुर का उपर्युक्त कथन उचित प्रतीत नहीं होता है। शिलालेखों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ बड़े-बड़े इतिहास प्रसिद्ध राजवंशों के राजाओं के नाम के साथ राजकीय पदवियों का प्रयोग नहीं हुआ है।

प्रशस्ति में चित्तौड़, दिल्ली तथा दक्षिण की विजय का उल्लेख मिलता है, जो निश्चय से यह बताता है कि प्रस्तुत राजवंश का प्रभाव दूर-दूर क्षेत्रों तक विस्तृत था। इस के अलावा पड़ोसी कलचुरि और चन्देल राजा भी उन से दबते थे। गूजर राजा का गोधरा तक खदेड़ा जाना भी प्रस्तुत राजवंश की शक्ति की महत्ता का सूचक है। इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि विजयसिंह इतना प्रतापी होने पर भी अत्यन्त धार्मिक वृत्ति का था। कवि ने उस के बारे में लिखा है कि वह त्यागी, शूर, सुलक्षण और सर्वगुणसम्पन्न था, शक्ति और पौरुष में उस के समान दूसरा कोई न था। वह धर्मात्मा ऐसा था कि लोग उस के सामने राम और युधिष्ठिर को भूल गये थे।

शिलालेख का मूल पाठ

१. ऽ।। ॐ नमः सि (शि) वाय ।। अम ? य वीजक विलासवास गौरीस ई–
२. स हर अमर सजुरजरमरण-थल सरवर सुमेस ।। गौ
३. रिकंत अंधअ भिणत कलिकुट्ठविणासण सुहकरण रोरघ
४. डगडुंअ विद्धंस ।। सुहकरण चरण तिभुवणहरण सुकवि रल्ह
५. परिसुक्खइ भुंभुकदेव सुपसाउ करि विजयसीहु तुअ पअ नव
६. इ ।। विसामित्त गोत्त उत्तिम चरित विमल पवित्तो गंण [।] अरअ घ–
७. उघडणो संसिजप वध्घडो भुवाण ।। वघड पटि परिट्ठिअउ ख–
८. त्तिउ विजयपालु [।] जेणे काइउ रणि निजिणिउ तह सुत
९. भुवणपालु ।। कलचुरि गुजर ससहरह दक्षिणवइ सुपअण्ड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. चहुराअह रणि विजिणण हरिसराअ भुवदंड ॥ संगुरि भंगरि
११. रण रहसु गतहरिस हअ कियथु (त्थु) [।] हय इम पट्टि पर सुहड स–
१२. मुहुन कोवि समथु (त्थु) ॥ वघ्घडु विजयपालो हुवणवालु भुवण
१३. मअणि हरिसराअ भरधवलो विजयसीहु धुरधरणो ॥ चा
१४. ई सूरो सुहवो सेलखणक अकुशलो गुहिलौतो सव्वगु–
१५. णो [॥] सुअ संगरि हसिराअ [स्त] ग भुंभुकदेव सोणौर पौर मुं–
१६ ग सगु उद्धरिओ विजयसीहुं वरहम्म धोरिउ धम्म भंदणो
१७. धीरो । [।] जेणे रंजिउ जगपउ रणि दुग्गा (ग्ग) महागढ़ हेट्ठि [।] वि
१८. जयसीहु तुरअ ठिअह अरिअण तिअहिं नयट्ठि । [।] विजयसी
१९. ह रहि अरि सिर कप्परि [।] मारिअ दक्षिणदल खल वप्परि [॥] दुर्ग्ग–
२०. महागढ तलिअ भिडअउ [।] सहइ त कोइ हअपट्ठिहि चढिअ
२१. उ ॥ जो चित्तौडहं जुज्झिअउ जिणे ढिलीदलु जितु [।] सो सुपसं–
२२. सहिं रल्ह कई हरिसराअ निअ सुतु ॥ भुंभुकदेवह पअणुसरअउ [।]
२३. सत्तिण पौरिस तिमुवणु हरअउ [॥] धम्मिण राम जुहिट्ठिल भुले–
२४. उ विजयसीहु वलिवा अतवलउ [॥] खेदिअ गूजर गौदहइ
२५. कीय अथियं मारि विजयसीह कित संभहुल पौरिस कह संसा–
२६. रि ॥ भुंभुकदेवह पअ पणवि पअडि आकित्ति समत्थ विजयसीह
२७. दिढ चित्तु करि आरंभिअ सुपसत्थ ॥ मंगलं महाश्री : ॥ सु (शु) भं भवत (तु)
२८. ॐ नत्ता (त्वा) गणाधिपं वाणीं विरिंचिं कृष्णमुमापतिं प्रारंभितमहाश्ला (श्लो)
२९. कां निर्व्विघ्नां वो प्रस (सा) दतः ॥ विस्वमित्रे (विश्वामित्रे) सुभे (शुभे) गोत्र (गोत्रे) महाथं (महार्थे) द्वव्वड़ पु ।
३०. रौ ? (रा) पुतै (पुत्रौ) च राज्ञ [:] गण्डाय (गण्डस्य) गजघटा निर्म्मदीकृता ॥ तन्मूर्तें (मूर्तिः) समुत्पतो (समुत्पन्नः)
३१. विजयपालो महाबलः स्वभुजदंडचंडाभ्यां क्षत्रियः (या) समरे जिताः ॥
३२. काई नामा महावीर्यं [:] समरे येन निर्जितं (तः) संश्रितं (तो) डे (भो) जदेवेन भुवन
३३. पालेन धीमत (ता) ॥ श्रीहर्षरज (राज) तव विक्रमतीक्ष्णत (ता) पः सोढुं न शक्य
३४. : समरे रिपवः प्रचण्डा [:] आकुलिगतपौरुष [वीर्य] हीनः (नाः) स्पृ–
३५. शंति ते चरणपंकज (जे) जीवनाय ॥ जित्ता (त्वा) कलिंजरेसं (शं) सवलबलिन
३६. मजितं च डाहलिकं दर्प्पिष्टं (दर्प्पिणं तं) साहरीत्यं तमपि कुशमारातिनं (मरातिं)
३७. [श्री] गुर्जरं जित्वा श्रीदक्षिणो (णे) शं निजभुजबलैः सद्बोधसंसिद्धयै
३८. ज्ञात्वा श्रीकाल (ला) ग्निरुद्रसमुमख्यो ? प्राणमोक्षं च चक्रे । तस्यात्मजो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९. विजयसिंह क्षितौ प्रसिद्धः सत्येन धर्म्मं (धर्म्मेण) यससा (यशसा) दृढ-
विक्रमेण [भुं]
४०. भुकदेवचरणांबुजध्यानभत्का (भक्त्या) प्रासादकीर्तितकलिकुल–
४१. लेन ॥ श्रीविजयसिंहगुणकीर्त्तिलता निवद्धा [श्रीरल्ह]
४२. रुमिताग्र........लंकारवद्धा ॥....स (श) ते वद्धा....
४३. ....गुणदानजनातुरागै ॥....रद्भुजदण्डचणि....
४४. ....कीर्त्तितरो : फलै सुप्रवु........
४५. ....र्णिर्निर्जित्य............

एक अन्य शिलालेख धार से प्राप्त हुआ है। यह शिलालेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका में वर्ष ५५, अंक १–२ में प्रकाशित हो चुका है। लेख स्लेट-पत्थर पर उत्कीर्ण है। लेख की भाषा अपभ्रंश के निकट है। अनुमानतः यह दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध या ग्यारहवीं के प्रारम्भ का लिखा हुआ जान पड़ता है। मूल लेख की लम्बाई १५ इंच तथा चौड़ाई १२ इंच के लगभग है। लेख त्रुटित तथा अपूर्ण कोई काव्य है।

शिलालेख का मूल पाठ

१. ल्लवि उंदेइने अवसाण। मेल्लवई अम्मणातंम........
२. णरायाण। ॥१२॥ हिअएवसि उणमए एत्वले यंने अ........
३. इमुद्दे अम्हे कज्जस्स जस्मवादित्ता ते नु हसिद्देइ........
४. उण अद्दयं दंझडिज्जं तो न सोहेई ॥ २३ ॥ माणो........
५. णो विंदुमाणेणं अज्जं गहि उदुजंपए ए अं........उ........
६. णेहिं कमुद्दा मोण सुहाणं कज्ज परि........डिए........दुव........
७. ....दईऊ। महिलाणं होई हेर्षे (?) माणो पडिहा........
८. माणो तपिई मुद्दे मंपिदुरा खसे तहय पुण दई
९. तीए विदु पडिगहि उतहा पूणो काय रोविहिउ।....
१०. ॥३१॥ झडिज्जं तो विइहंमाणो नय जाई लडह........
११. ....माणोतणे इमुद्दे अवहिर सुमंदु एत्थ पडिग....
१२. जेत्ताण ॥८३॥ लक्षय तुल्लं मुद्देतं मंइई उणत........
१३. ....हसिउ। तुहहि अयं मई नायं हि अयत्थंतु हनसि........
१४. ....रई आई। सयवारं आवत्ती जेणं ए आ........
१५. ....इहं सुणम्वि ॥ ४ ॥ पिह तुहा........
१६. ....ए अंमुद्दा दुअब्भेसई........
१७. .... ? ? ? ....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोडाकृत राउल वेल

ग्यारहवीं शताब्दी का लिखा हुआ यह शिलालेख प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, वम्बई में विद्यमान है, जो वहाँ धार (मालवा) से लाया गया था। यह एक शृंगारिक काव्य है। इसका आकार ४५" × ३३" है। लेख भग्न अवस्था में है। त्रुटित अंश वहुत हैं। डॉ. ह. चू. भायाणी का मत है कि यह शिलाखण्ड बीच का भाग है। इस के आगे-पीछे दो अन्य शिलाखण्ड रहे होंगे। किन्तु डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसे पूर्ण शिलालेख मानते हैं। इस शिलालेख की भाषा स्पष्ट रूप से परवर्ती अपभ्रंश है, जिस में विभिन्न प्रान्तों की सात नायिकाओं का वर्णन है। रचना सुन्दर और साहित्यिक है। इस का विस्तृत परिचय 'भारतीय विद्या', 'हिन्दी अनुशीलन', और 'भारतीय-साहित्य', आदि पत्रिकाओं में तथा "राउल वेल और उस की भाषा" (सं. डॉ. माता-प्रसाद गुप्त) में प्रकाशित हो चुका है। यह शिलालेख मूल रूप में वहीं से दिया जा रहा है।

शिलालेख का मूलपाठ

(१) (ऊं) नमः सिध (द्धे) (भ्यः ।।)
रोडे (डें) राउल वेल वखाणा (णी)।
जइ ——— इ आपणु ज (णी) ।।
जा (जौ) जेम्व जाणइ सो तेम्व वखाणइ।
हासे (सें) तोसे (सें) राजइ राणइ ।।
— — — — — — — — — —(।) — — (२) भा (ल) उ भावइं ।।
आंखिहिं काजल तरलउ दीजइ। (आ) छउ तुछउ फूलु — — जइ ।।
अहरु तंबोलें मणु मणु रातउ। सोह देइ कवि आन ि— — — (।।)
— — — — — — —(।) — (३) तुम — स तम्बहीं मोहंथि ।।
जाला कांठी गलइ सुहावइ। आनु कि — — — इं ताकरि (पां) वइ ।।
एहइ तरुणिहुं माण्डणु भालउ। जं जसु रूचइ सो — — — (।।)
— — — — — — — —(।) — — (४) लो ता—मांडीजइ ।।
रातऊ कंचआ अति सुठु चांगउ। गाढउ वाधउ — — — इ आंगउ ।।
—दुहां पहिरणु भालउ भावइ। तासु सोह कि कछडा पांव (इ ।।)
— — — — — — — — (।) — — —(म) (५) णु मणु—।।
विणु आहरणें जी पायेन्हु सोह। आन वनां तहं मोहिं अति कोह ।।
अइ (सी) वेटिया जा घरु आवइ। ताहि कि तूलिम्ब कोऊ पांवइ ।।
[।। ० ।। ० ।। ० ।।]
— — — — —।) — (६) हुं वेस न (ण ?) — क देखसि ।।
वलिअहि वाध लिअहि जे चांगिम्ब। ते वानतु को— —वी (?) वागिम्ब ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—अहि आंतु जें विअइल फूल्लें। अछउ ताउं कि तेंह चें वोल्लें।
— — — — — — — —।) — — — आ (७) छहिं गोह ॥
का (नि) हिं घडिवनहं चि जे रेख। ते ची (चि) न्तवंतहं आनिक ओख ॥
———कचि कांठी कांठिहि सोहइ। लोकहं ची दिठि मांड चि खोहइ ॥
आंगिहिं ला f— — — -— (।) — — — — — ——डा ॥
पडिह (८) कांचू वोडा लाठा (आ) निकु वानू जो स्थु घेठा ॥
आविलु काछडा दढ गाढा। आनिकु जोवण ऊ (ज ?) रु थाढा ॥
हाथिहिं रीठे ऊजल लान्ह। जी पुडि तागे आविल सान्ह ॥
— — — — —पाटी गाढी। जणु काम्वे (९) — —ली माढी ॥
पाईहिं पाहंसिया निरु चांगा। लोणचि आनि (क) मांडी आंगा ॥
गोल्ले आ (नं) दिअ तुझचि देसु। आनिक तेंह चा तो वेस।
चा वल भण हुणि तो मेढी झंखइ। ते आपुली गम्वारिम्व आख (१०) इ ॥
अइसी— — —तरुणिम्व मांडी। पातली को भाउअ छांडी ॥
— —कचि अइसी राउल सो (ही)। देखत तोही मयणुव मोही ॥
॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥
एहु कानोडउं का इसस झांखइ। वेसु अम्हाणउं ना जउ देख (११) इ ॥
आउंडउ जो राउ (ल सो) हइ। थइ नउ सो स्थु कोक्कु न मोहइ ॥
डहरउ आंखिहिं काज (ल) दीनउ। जो जाणइ सो थइ नउ वानउ ॥
करडिम्व अनु कांचडिअउ कानहिं। काइं करेवउ सोहहिं आ (१२) नहिं ॥
गलइ पुलूकी भावइ (?) कांठी। कासु तणी साहर इन ढिठी ॥
लांवझ लांवउ कांचू रात (उ)। कोकु न देखतु करइ उमातउ।
थणहिं सो ऊंचउ किअउ राउल। तरुणा जोवन्त करइ सो वाउल ॥
वाह (१३) डिअउ सो म्वालउ दीहउ। (म्वाल)उ आथि न तहुं जणु चाहउ॥
(हा) थहिं माठिअउ सुठु सोहहिं। (ते) थु खूता जण सयलइ चाहहिं ॥
पहिरण फरहरें पर सोहइ। राउल-- दीसतु सउ जण मोहइ ॥
झुणि नेउरा (१४) णी कान सुहावइ। अरो (?) रक—कासु न भावइ ॥
हांसगइ जा चालति अइसी। सा वाखर णहुं राउल कइसी ॥
जहि घरे अइसी ओलंग पइसइ। त घरु राउल जइसउं दीसइ ॥
॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥
(१५) केहा टेल्लिपुतु तुहुं झांखहि। अ— —दु वेहु तुहुं आख (हि) ॥
वेहु एक्कु सो स्थ वन्निज्जइ। (जो ?) अक्खंदहं ही आ भिज्जइ ॥
अड्ढा केह पाहु जो वढ्ढा। सो प्पर तेहा गोरीं लढ्ढा ॥
चंद सावाणा टीहा कियइ (जें महुं) (१६) एक्केणवि मंडियइ ॥
अंघिहिं कयल डहरा दित्ता। जो (नि) हालि करि मयणू मत्ता ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कंय्यडिअहि सोहहिं दुइ गन्न । म (मं) डन संडन डहि परे अन्न ॥
कढी कंढि जलाली सोहइ । एहा तेहा सउ जणु मोह (१७) इ ॥
आधूघाडें थणहिं जो कंय्यू । सो सन्नाहु अणंग हो नं—॥
(कं) य्यू वियय्यहिं जे थण दीसहिं । ते निहालि सव वत्थु उवीसहिं ॥
गोरइ अंगि वेरंगा कंय्यू । संझहि जोन्हहिं नं संगउं हू ॥
पहिरणु घाघरेहिं जो केरा । कछ (१८) डा वछडा डहि पर इतरा ॥
सूथना झि क—इला प (हिं) र णु । पाखइं पाखउ धावइ तसु जणु ॥
एहा वेहु सुहावा टेल्ल । आन्न तु संदा डहि परइ वोल्ल ॥
एही टविकणि पइसति सोहइ । सा निहालि जणु मल म (१९) ल चाहइ ॥

॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥

कीस रे वंडिरो टाक तु (वो) ल (सि) राहू आगें वानतु भूलसि ॥
तंइ की कतहू वेस रे दीठे । जेहर तेहर वानसि धैठे ।
गौड सुआणु स तइं कत दीठे । ते देखि वेस कि भावंथि मीठे ॥
ते (वे ?) (२०) डेन्हु वाधेन्हु केसं ज ल डहिम्व । खोंपवली एक हु रे—सम्व ॥
खोंपहि ऊपरं अम्वेअल कइसे । रवि जणि राहूं घेतले जइसे ॥
दिठहुल फूल अम्हारे म्वाझथि । ते देखि तरुणे सावइ मूझथि ॥
तूछे फूल तारे मण (२१) हारें । रयणिमुहां जणु गणिए तारे ॥
रे रे वव्वर देखु रे तूं चा (हिं) । तारि निलाडी सरिसी काहु ॥
भउहीं तु रूरीं देखु वव्वर कइसी । ताहि काम्ब करी धणु अडणीं जइसीं ॥
अरे अरे वव्वर देखसि न टीका । चांदहि ऊपर एह (२२) भइ टीका ॥
वेटुला टीका केहर (भा) वइ । मुह ससि ओलगं च–ा नावइ ॥
विणु वनवारां अछण नो वारसि । बुद्धि रे वंडिरो आपणी हारसि ॥
कानन्हु पहिले ताडर पात । जणु सोहइं एवं सोह रे पात ॥
गूआ रांगे द (२३) सण रे राते । आंट कुडीपुत त—माते ॥
काठहि मांडणु पा (च ?) लर तागु । सो लहि मयणहि एवं भैअल लागु ॥
मासें सोना जालउ कीजइ । मोत्ता सरसो हुतें हू हसीजइ ॥
गंठिआ तागउ गलेहिं सो भूस (२४) णु । जो देखि वंडिरो को न (मू?) झइ जणु ।
सू तु तरीअन्हु करउ (जो) हारु । सो देखि हारन्हु भउ अवहारु । (।)
थणहर माझें जो हारु सुतेरउ । सोहन्हु सवन्हु सोए कुज ठेरउ ॥
पारडी आंतरे थणहरु कइसउ । (२५) सरय जलय विच चांदा जइसउ ॥
सूतेर हारु रोमावलि कलिअ (उ) जणि गांगहि जलु जउणहिं मिलिअउ । (।)
पैहिअल वाही जै चंदहाइं । वीजेर चादहि ते चंदहाइं ॥
आंगहिं मांडणु अंगेर उजालु । काठी (२६) वेंटी वंडिरो आलु ॥
काछां (पै) हरण केरि ज सोह । आन सराहंत सुणि मोहि अति कोह ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि उढण सेंदूरी सोलदही कीजइ । रूउ देखि तारु सव जणु खीजइ ॥
धवलर कापड ओढिअल कइसे । मुहससि (२७) जोन्ह पसारेल जइसे ॥
अइसो उवेसु जो गउडिन्हु केरउ । छाडि सो वान त दिठ सवु तोरऊ । (।)
जेहर रूचइ तेहर वोलु । तारे वेसहि आथि कि मोलु ॥
अइसी गउडि ज राउलें पइसइ । सो जणु ला (२८) छि माडेउ दीसइ ।
॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥
गौड तुहुं एकु को पनु अउरु वर क । रि ?)
को तई सहुं भइं वोलइ ।
ज पुणु मालवी उवेसु हि आवंतु काम्वदेउ जाउं आपणाह हथिआर हु भूलइ ।
इहां अम्हार (२९) इ दुभगी खोंप करिउ वाझइ ।
तहि सारिखउं कहा इउं आथि एउ कि सी (झ) इ ।
खोंपहि ऊपरि सोलडहउ दीनउ वानु तें किसउ भावइ ।
जिसउ सिंदूरिअउ रजायसु काम्वदेवह करउ नावइ ।
नि (३०) लाडु रतु रूरउ सुपवाणु न सान्ह उंन ऊंचउ ।
सो देखिउ आठम्विहि करउ चां (दु) इसउ भावइ ।
केर एहु ओडिअउ जूनउ ठेंचउ ।
भउंह हुं र दुई तु रूरीहिं सान्हीहिं आडाहं आंखिहिं करइं गुणइं
ज (३१) इसउ काम्व करउ (ध) णुहुं चडावियउ ।
निडालि टीकें तु रूरे कीएं तें काम्वह अ-य-
संकरी हि भालिहि करउ काजु पावियउ ।
सान्हाहं पुडहं नाकु तु रूरउ सुरेखु ।
सोइर वानाहं सवहं ऊतरिअउ (३२) अइसउ करिउ तुहुं (?) लेखु ।
आंखिर फाटा तीखा ऊजला तरला तें वानति जीभ इ (सी ?) खूझइ ।
तइसउ हथिआरु पाविउ काम्वदेउ जगही काइं करिसी ।
अइसउ वृहस्पति हो नउ मू (सू ?) झइ ।
(३३) आंखिहिं र तु रूरउ काजलु दीनउ कइसउ ।
जणु चाखुहु करइं भयइं कियउ''''''''जिसउ ।
पूनिवहि करउ चांदु फाडिउ हरिणु पाखइ घालिउ ।
दुई कपोल जिसा किआ ।
ते देख तहं (३४) सवहं तरुणाहं ।
अपांविवे करी खणुसइं धस धस पर्डाहं हिआ ।
कनवासहीं कानहीं वा (न ?) इ करउ खूटउ बोलु ।
कें कें केतउ न खपिअउ एहि जगी (गि ?) आथि न मोलु ।
तेन्हर पइहिया घडिव (३५) न किसा भावंथि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ज) णु पूनिव हि पूनिव हि करा चांद कोडइ तहि करउ ।
सुहावउ वोलु सुणण का (ज) फेडि उआया नावंथि ।
तेहि करइ तलि लईं उपइलें ओठइं सकवि सोह लाघी ।
ज वींवी फलहं (?) प (३६) वालाहं असो (अ) पल्लवहं तें तूसिउ विलधी ।
समुदाइ कज मुह करी सोभ सजइ ।
कोइ प (यह ?) णु हरइ त उपमानु करहुं ।
वूधि आपणी अछइ स कूडी वानणी ।
त । (ि) ह करी करिउ सहीं अवहरहुं ।
(३७) तं एकावलि—इ एक वाधी सइ र इसी भावइ ।
जणु मुह चंदु ओलग णहं नखत वाल सतावीस ।
हा—री आई अइसउ नावइ ।
थण र पहुला ऊंचा वाटुला पीणा
सोनाह करा मंगल कलस जिसा भा (३८) वहिं ।
आनु कि काम्वदेवह कराह धरह
वारि ओडु तास सोह पावहिं ।
तिवलिहि मांझि रौमराइ स किसी धरइ ।
ज सोहहि करइ पाखइ दुहुं आधहं जूझ तहं निवाडउ करइ ।
तहं मांडणु सात (३९)·········उ मुणाणि हुं
मोती हुं करउ एकु जि हारु ।
स सोह देख तहं अइसउ भावइ ।
अणसारउ अ (णसार) उ हुअउ एहु संसारु ।
त पुणु जवहीं ते हाथहीं पायहीं पइह्लिआ सोना केरा चूडा ।
स देखि (४०) तुम्हा (रा) जे वेस ते सव भावहिं कूडा ।
ते रत (त्त) इसी वोड वाही पडि करी पइह्ली ज कांचुली ।
सइ र आन सोह कवि वहइ ।
अरे काम्वदेवइं सनाहु कियउ ।
त एवं तुम्ह नही छोडि कउ इसउ तिहु (४१) (वन ?) ही कहइ ॥
पइह्लणहं निरी पइह्लिआह काछडइं सहु ज सौह ।
स कि कउणू वेसु पांवइ ।
आ—चंग ि–थि वि अरे गौड हो गोल्ला हो ।
वोलउ जौ जसु भावइ ॥
तें पुणु·········टी एक आवलि ।
(४२)·········ी व ताहि करी सोह को पाम्वइ ।
जवाध ताह काम्वदूमह आलवालु जइसी भावइ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पार्यहिं र रतूपल—जिआ ।
जे लोकहिं लाछिहि करउ निवासु भणिउ (सु) णि (आ) ॥
............वाटुलाहं ऊजला (४३) (हं)
........करी ज............ी ।
तेई र सवहीं वैसहं करी ज लाछि स अवहरी ॥
कापडहि र करउ ज गोरी तहि सिंदू (री) हि वैसु ।
ज साम्वली तहि र पाटणी हि करउ ।
आ—मं......................हं ।
को स सोभ धर (४४) उ........छाय तेइं पर लाधी ।
जहिं आवंति रति आपणइ हिअइ अति सुठु खूधी ।
तुम्हहिं सरिसउ वोलहिं को जूझइ ।
म.........................
आ (४५) नु........इ वानइ जो वथुं काजह मांझ वूझइ ॥
एह इसी सुवेस जहिं आवउ पइसइ ।
—(रा ?) उलु वूचइ ।
अउरु भाणउ को क............हु त............रुच (४६) इ (॥)
॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥
रोडें राउल वेल वखा (णी) ।
(सा) तहं भासहं जइसी जाणी ॥
एउ निसुणत........त.............।
............उ (?) हासें तोसें सोइ (॥)
—ी.......... .. इ (४७)................(।)
ध................ी ....(॥)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट (४)

अपभ्रंश गद्य

अपभ्रंश का गद्य बहुत कम मिलता है। इस के कतिपय निदर्शन उद्योतनसूरि कृत 'कुवलयमालाकथा', संस्कृत के रूपक तथा तन्त्र-ग्रन्थों में विकीर्ण मिलते हैं। अपभ्रंश गद्य की अभी तक कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिल सकी है। इस का प्रयोग अधिकतर टीका के रूप में किया जाता रहा है। अपभ्रंश गद्य का एक श्रेष्ठ निदर्शन है–

"मायंगु संपत्तु। अच्चंत मयमत्तु। मेहुव्व गज्जंतु। सेलुव्व पज्झरंतु। गिरिसेल पाडंतु। मंदिरइं साडंतु। सखरइं फोडंतु। ....यर मोडंतु। गिरि ओगेहंतु। जणु सयलु खोहंतु। पडिकरडि जोडंतु। नारियणु मोहंतु। बहुजीव नासंतु। हयथट्ट वग्गंतु। (१) आइवेगि धावंतु। धर थरथरावंतु। चल्लहु खल्लंतु। घुम्मंतु। तम्मंतु। दारंतु मारंतु। थूरंतु। चूरंतु। विंधंतु। रुंधंतु। पाडंतु। चडंतु। तोडंतु। रोडंतु। छोडंतु। विहडंतु। सियदंतु। अदंतु। अच्चंतु। बलवंतु। नामेण ससिकंतु। पुरि भमइ विक्कंतु। तेण गइंदेण। कयकडमद्देण। विहिउ पुरिहिं हल्लोहल्लउ। नं सुरेण। दुट्ठेण। अइआ-रुट्ठेण। आढत्तउ नयरिहिं पलउ (१)....

(संघवी पाडा भंडार, पाटण, पु. सं. ३०७ से उद्धृत)

"धर्मु आथि, धर्मु कीज। धर्में बाढत पापु ओहट जीभें चाखत आछ। पीठिं चडाव। बोलें बोल। बोलत आछ। हाथें ले। पढि पांडे भा। देखि देखि तूस। लै लै पला। मारि मारि खा। सोंअरि सोंअरि रोवा। पढवे किंह आछ। जेंवण दे। ओझा पास वीदा ले। सुकुलि गाइ लउडें हाकु। केई ए ईहां बाह्मण थापे।"

(दामोदर विरचित उक्तिव्यक्तिप्रकरण से)

इसी प्रकार बालावबोध टीका और बालशिक्षा आदि रचनाओं में अपभ्रंश गद्य स्फुट रूप से मिलता है। अभी तक इस दिशा में अपभ्रंश गद्य के संकलन का कोई कार्य नहीं किया गया है। लेखक प्रयत्नशील है। अतः शीघ्र ही अपभ्रंश गद्य विषयक रचना प्रकाश में आ सकेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट (५)

विशिष्ट शोध-निबन्धों तथा पुस्तकों की सूची

१. डॉ. स्टीवेन्सन : आब्जर्वेशन ऑन द मराठी लैंग्वेज, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, न्यू सीरीज़, लन्दन, जिल्द ७, पृ. ८४-९१, १८४१ ई.।

२. जे. स्टीवेन्सन डी. डी. : ए कम्पेरेटिव वोकेबुलरी ऑव द नॉन-संस्कृत वोकेवल्स ऑव द वर्नाक्युलर लैंग्वेजेज़ ऑव इंडिया, द जर्नल ऑव द बॉम्बे ब्रान्च ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द ४, सं. १५, पृ. ११७-१३१, १८५२ ई.।

३. जॉन बीम्स : ऑन द ट्रीटमेन्ट ऑव द नेक्सस इन द निओ-आर्यन लैंग्वेजेज़ ऑव इंडिया, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, न्यू सीरीज़, लन्दन, जिल्द ५, भाग १, पृ. १४९-१६३, १८७० ई.।

४. —पश्चिम हिन्दुस्ताननी भाषाओ, बुद्धिप्रकाश (गुजराती में), जिल्द ३७, सं. ९, पृ. २१७-२२४, सितम्बर, १८९०, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद।

५. —पश्चिम हिन्दुस्ताननी भाषाओ, बुद्धिप्रकाश (गुजराती में), जिल्द ३७, सं. १०, ३७, ११, जिल्द ३७, सं. १२, क्रमशः पृ. २५५-२६१, अक्तूबर, १८९०, पृ. २८०-२८२, नवम्बर, १८९०, पृ. ३११-३१३, दिसम्बर, १८९० ई.।

६. —पश्चिम हिन्दुस्ताननी भाषाओ, बुद्धिप्रकाश (गुजराती में), जिल्द ३८, सं. १, ३८,४, जिल्द ३८, सं. ५, क्रमशः पृ. २२-२४, जनवरी, १८९१, पृ. ७८-८१, अप्रैल, १८९१, पृ. ११०-११२, मई, १८९१ ई.।

७. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : द माडर्न इण्डो-आर्यन पोलाइट इम्पेरेटिव, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. १६२-१६३, १९१०।

८. एफ. ई. पार्जिटर : चूलिका पैशाचिक प्राकृत, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ७११-७१३, १९१२।

९. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : द प्रोननसिएशन ऑव प्राकृत पेलेटल्स, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज, लन्दन, पृ. ३९१-३९५, १९१३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. आर. एल. टर्नर : द इण्डो-आर्यन नसल्स इन गुजराती, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. १७-३४, १९१५।

११. आर. एल. टर्नर : द इण्डो-जर्मेनिक एक्सेन्ट इन मराठी, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. २०३-२५१, १९१६।

१२. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : द प्राकृत विभाषाज, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ४८९-५१७, १९१८।

१३. आर. सेवेल : द डेट्स इन मेरुतुंगाज "प्रबन्ध चिन्तामणि", द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ३३३-३४२, १९२०।

१४. आर. एल. टर्नर : गुजराती फोनोलॉजी, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ३२२-३६५, ५०५-५४४, १९२१।

१५. स्टेन कोनो : राजशेखर ऑन द होम ऑव पैशाची, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज, लन्दन, पृ. २४४-२४५, १९२१।

१६. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : राजशेखर ऑन द होम ऑव पैशाची, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज, लन्दन, पृ. ४२४-४२८, १९२१।

१७. जार्ज ए. ग्रियर्सन: स्पोन्टेनियस नेसेलाइजेशन इन द इण्डो-आर्यन लैंग्वेजेज़, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़ लन्दन, पृ. ३८१-३८८,१९२२।

१८. हीरालाल जैन : महाकवि पुष्पदन्त के समय पर विचार, जैन साहित्य संशोधक, खंड २, अंक ३, पृ. १४५-१५६, १९२३।

१९. मुनि जिनविजय जी : अध्यापक कॉवेल लिखित प्राकृत-व्याकरण-संक्षिप्त परिचय, जैन साहित्य संशोधक, खंड २, अंक १, परिशिष्ट पृ. १-१४, १९२३।

२०. पं. रामचन्द्र शुक्ल : बुद्धचरित (भूमिका), वि. सं. १९७९।

२१. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : प्राकृतिक, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. २१५-२३६, अप्रैल, १९२५।

२२. मुनि महाराज श्री कल्याणविजय जी : मागधी भाषा (गुजराती में), जैन युग, पुस्तक १, सं. १, पृ. ९-१४, वि. सं. १९८१, पु. १, सं. २, पृ. ४९-५६, वि. सं. १९८१ (१९२५ ई.)।

२३. हर्मन जेकोबी : मागधी छन्द शास्त्र (गुजराती अनुवाद), जैन युग, पु. १, सं. ३, पृ. ११४, वि. सं. १९८२ (१९२६ ई.)।

२४. पं. बेचरदास जीवराज दोशी : प्राकृत पाठावली (गुजराती में), जैन युग, पु. ३, सं. १-२, भाद्रपद-आश्विन, वि. सं. १९८३ (१९२७ ई.)।

२५. रा. भो. गि कापड़ीआ : श्रीहेमचन्द्राचार्यनुं प्राकृतव्याकरण, जैन युग, पु. ३, सं. ३-४, कार्तिक-मार्गशीर्ष, वि. सं. १९८३ (१९२७ ई.)।

२६. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : ऑन द ओल्ड नॉर्थ-वेस्टर्न प्राकृत, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ८४९-८५२, १९२७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन : दर्दिक इन्टरवोकेलिक कान्सोनेन्ट्स, डी>एल, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, वहीं, पृ. ८५३, १९२७।

२८. एल. डी. बर्नेट : ए प्ल्यूरल फॉर्म इन द प्राकृत ऑव खोतान, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, वहीं, पृ. ८४८, १९२७।

२९. आचार्य श्री जिनविजय जी : कुवलयमाला (गुजराती में), जैन साहित्य संशोधक, खंड ३, अंक २, पृ. १६९-१९४, वीर नि. सं. २४५३ (१९२७ ई.)।

३०. महाकवि धनपाल कृत सत्यपुरीय-श्रीमहावीर उत्साह, जैन साहित्य संशोधक, खंड ३, अंक ३, पृ २४१-२४३, वीर नि. सं. २४५३ (१९२७ ई.)।

३१. एफ. डब्ल्यू. थॉमस : ए प्ल्यूरल फॉर्म इन द प्राकृत ऑव खोतान, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज़, लन्दन, पृ. ३९९, १९२८।

३२. भावनासंधिप्रकरणम् (एक अपभ्रंश काव्य), जैन युग (गुजराती में), पु. ४. सं. ६-८, पृ. ३१४-३१७, माघ-चैत, वि. सं. १९८५ (१९२९ ई.)।

३३. तंत्रो (सं.) : अपभ्रंशमां सीमंधरस्वामी स्तोत्र (गुजराती में), जैन युग, पु. ५, सं. १-३, वि. सं. १९८५-८६।

३४. रामलाल चुनीलाल मोदी : पाटणना ग्रंथकारो, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), जिल्द ७७, सं. २, पृ. ३३-४१, फ़रवरी, १९३०।

३५. रा. मणिलाल छब्रिराम भट्ट : पृथ्वीराजरासो वि. इतिहास, बुद्धिप्रकाश, गुजराती-लेख, ज़िल्द ७७, सं. २, पृ. ५१-५३, फ़रवरी, १९३०।

३६. चतुरभाई पुरुषोत्तमदास पटेल : केटलाक नानार्थ शब्दोनी व्युत्पत्ति, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), जिल्द ७८, सं. १०, पृ. ३०१, ३०३, अक्तूबर, १९३१।

३७. चतुरभाई पुरुषोत्तमदास पटेल : 'पूगवुं' शब्दनी व्युत्पत्ति, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), जिल्द ७८, सं. ६, पृ. १७६, जून, १९३१।

३८. चतुरभाई पुरुषोत्तमदास पटेल : वसुदेवहिंडीनुं अवलोकन, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), ज़िल्द ७९, सं. १-२, पृ. २८-३६, जन.-फ़रवरी, १९३२।

३९. चतुरभाई पुरुषोत्तमदास पटेल : केटलाग नानार्थ शब्दोनी व्युत्पत्ति, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), जिल्द ७९, सं. ४, पृ. १०६-१०८, अप्रैल, १९३२, जिल्द ७९, सं. ५-६, पृ. १४७-१४९, मई-जून, १९३२।

४०. मनमोहन घोष : महाराष्ट्री, ए लेटर फेज ऑव शौरसेनी, जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द २३, पृ. १-२४, १९३३।

४१. मधुसूदन चिमनलाल मोदी : जूना गुजराती दूहा, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), पु. ८०, सं. १-३, पृ. ७१-८४, जन.-मार्च, १९३३, पु. ८०, सं. ४-६, पृ. १८८-२०५, अप्रैल-जून, १९३३।

४२. मधुसूदन चिमनलाल मोदी : वनराजि वर्णन (गुजराती में), बुद्धिप्रकाश, पु. ८०, सं. ३, पृ २३३-२४६, जुला.-सितम्बर, १९३३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३. मधुसूदन चिमनलाल मोदी : प्राचीन गुजराती गद्य अने तेनी पूर्व पीठिका, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), पु. ८१, सं. ३, पृ. २५७-२७२, जुलाई-सितम्बर, १९३४।

४४. चतुरभाई पुरुषोत्तमदास पटेल : वर्तमान कालनो "इये" प्रत्यय, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), पु. ८१, सं. ४, पृ. ४६१-४६७, अक्तूबर-दिसम्बर, १९३४।

४५. प्रो. सुनीतिकुमार चटर्जी : नॉन-आर्यन एलीमेन्ट्स इन इण्डो-आर्यन, द जर्नल ऑव द ग्रेटर इण्डिया सोसायटी, कलकत्ता, जिल्द ३, पृ. ४३-४९, १९३६।

४६. एस. पारिख : उत्तर अपभ्रंशकालीन लोकभाषा, हिन्दुस्तानी, पृ. २७३, १९३६।

४७. डॉ. भो. जे. संडेसरा—जिनप्रभाचार्य कृत 'भव्यचरित'—तेरमां सेकानुं एक अपभ्रंश रूपक, फार्बस, गुजराती सभा का त्रैमासिक, जुलाई-सितम्बर, १९३६।

४८. पं. बेचरदास जीवराज दोशी : शब्दोनी व्युत्पत्तिओ अने समजुती, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), पु. ८४, सं. ३, पृ. २५२-२६२, जुलाई-सितम्बर, १९३७, पु. ८६, सं. १, पृ. २४-२८, जनवरी-मार्च १९३९।

४९. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : सम इटिमोलॉजीकल नोट्स, न्यू इंडियन एन्टिक्वेरी, ज़िल्द २, सं० ७, पृ० ४२१-४२७, अक्तूबर, १९३९।

५०. पं. बेचरदास जीवराज दोशी : देश्य प्राकृत अने तेना शब्दोनां मूल, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), वर्ष ८, पृ. ९५-१०२, १९४१, पृ. १८५-१९०, वहीं।

५१. हरिवल्लभ चू. भायाणी : हुं, एक अने होवुंनां भारत-युरोपीय मूलस्वरूपो, बुद्धिप्रकाश, पु. ८९, सं. ४, पृ. २३७-२४८, अक्तूबर-दिसम्बर, १९४२।

५२. हरिवल्लभ चू. भायाणी : वाग्व्यापार-जुगार, बुद्धिप्रकाश (गुजराती), पु. ९४, सं. १, पृ. ४५-४६, जन.-मार्च, १९४७।

५३. प्रो. एच. आर. कापडिया : द रामायण एंड द जैन राइटर्स, जर्नल ऑव द ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, जिल्द १, सं. २, पृ. ११५-११८, दिसम्बर, १९५१।

५४. प्रो. एस. एन. घोषाल : रिफ़ेन्सेज टु अदर वर्क्स इन द प्राकृत पैंगल एन अपभ्रंश-टेक्स्ट, जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ोदा, जिल्द २, सं. २, पृ. १७४-१७६, दिसम्बर, १९५२।

५५. डॉ. भो. जे. संडेसरा : द स्थूलभद्रफागु (१३३४ ई.) ऑव जिनपद्मसूरि एंड द नेमिनाथफागु (१३४९ ई.), ऑव राजशेखरसूरि, जर्नल ऑव द ओ. इं, बड़ौदा, जिल्द २, सं. ३, पृ. २७७-२८६, मार्च, १९५३।

५६. प्रो. एस. एन. घोषाल : डॉ. एच. जेकोबीज़ इन्ट्रोडक्शन टु द भविसयत्तकहा, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द २, सं. ४, पृ. ३४६-३५८, जून, १९५३, जिल्द ३, सं. १, पृ. ८४-९४, सितम्बर, १९५३, ज़िल्द ३, सं. २, पृ. १६४-१६८, दिसम्बर, १९५३।

५७. ज्यूल्स ब्लाख : प्राकृत cia लैटिन quidem, लैंग्वेज, जर्नल ऑव द लिंग्विस्टिक सोसायटी ऑव अमरीका, जिल्द २९, सं. २, भाग १-२, अप्रैल-जून, १९५३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८. ब्रोस, के.: अपभ्रंश स्टडीज (१), जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी जिल्द ७४, सं. १, पृ. १-५, जन.-मार्च, १९५४।
५९. ब्रोस, के. अपभ्रंश स्टडीज (२), जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द ७४, सं. ३, पृ. १४२-१४६, जुलाई-सितम्बर, १९५४।
६०. डब्ल्यू. नॉर्मन ब्राउन : प्राकृत वणदव "Tree sap, self-control" लैंग्वेज, जिल्द ३०, सं. १, भाग १, जन.-मार्च, १९५४।
६१. डॉ. भो. जे. संडेसरा : शब्द अने अर्थ, बम्बई विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९५४।
६२. प्रो. एस. एन. घोषाल : डॉ. एच. जेकोबीज इन्ट्रोडक्शन टु द भविसयत्तकहा, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ३, सं. ३, पृ. २६९-२७६, मार्च, १९५४, जिल्द ३, सं. ४, पृ. ३४५-३५६, जून, १९५४, जिल्द ४, सं. १, पृ. ३७-४५, सितम्बर, १९५४।
६३. ब्रोस, के. डे : ए द्रैविडियन टर्न इन अपभ्रंश, द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, लन्दन, भा. १, २, १९५४।
६४. द क्रॉनालॉजी ऑव द प्राकृतपैंगल एंड द छन्दकोश, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ४, सं. ४, १९५५।
६५. प्रो. एस. एन. घोषाल : डॉ. एच. जेकोबीज इन्ट्रोडक्शन टु द भविसयत्तकहा, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ४, सं. २-३, पृ. १७६-१८९, दिसम्बर, १९५४, मार्च, १९५५, जिल्द ४, सं. ४, पृ. ३५८-३७१, जून, १९५५, जिल्द ५, सं. १, पृ. २९-४३, सितम्बर, १९५५, जिल्द ५, सं. २, पृ. १४०-१६८, दिसम्बर, १९५५।
६६. वासुदेवशरण अग्रवाल : नाइत्त इन अपभ्रंश लिटरेचर, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ५, सं. १, पृ. १०३-१०४, सितम्बर, १९५५।
६७. एल. ए. श्वार्जश्चाइल्ड : सम फॉर्म्स ऑव द एब्सोल्यूटिव इन मिडिल इण्डो-आर्यन, जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द ७६, सं. २, पृ. १११-११४, अप्रैल-जून, १९५६।
६८. डॉ. एच. एल. जैन : पैरेलेलिज्म ऑव टेल्स बिटवीन अपभ्रंश एंड वेस्टर्न लिटरेचर, जर्नल ऑव द यूनीवर्सिटी ऑव बिहार, पटना, जिल्द १, मार्च, १९५६।
६९. एस. एन. घोषाल : डॉ. एच. जेकोबीज इन्ट्रोडक्शन टु द सनत्कुमारचरितम्, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ६, सं. १, पृ. ३-२१, सितम्बर, १९५६।
७०. एस. एन. घोषाल : ए नोट ऑन द नसल्स इन कान्टेक्ट विद एस्पिरेट्स इन प्राकृत, जर्नल ऑव द ओ. इं, बड़ौदा, जिल्द ५, सं. ४, पृ. ३६०-३६५, जून, १९५६।
७१. एस. एन. घोषाल : डॉ. एच. जेकोबीज इन्ट्रोडक्शन टु द सनत्कुमारचरितम्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द ६, सं. २-३, पृ. ८९-१०१, दिसम्बर, १९५६, मार्च, १९५७।

७२. एफ. बी. जे. कुइपर : द पैशाची फ्रेगमेन्ट ऑव द कुवलयमाला, इण्डो-ईरानियन जर्नल, जिल्द १, सं. १, १९५७।

७३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : सूरपूर्व ब्रजभाषा और उस का साहित्य, १९५८।

७४. एस. एन. घोषाल : ऑन एक्सेन्ट इन द क्लॉसिकल संस्कृत एंड द प्राकृत डायलेक्ट्स, मूल लेखक हर्मन जेकोबी, जर्मन से अनुवाद, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द १०, सं. १, पृ. २४-५२, सितम्बर, १९६०।

७५. के. डी. ब्रीस : अपभ्रंश स्टडीज़ (४), जर्नल ऑव द अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, जिल्द ८१, सं. १, पृ १३-२१, जन.-मार्च, १९६१।

७६. के. आर. नार्मन : मिडिल इण्डो-आर्यन स्टडीज़, जर्नल ऑव द ओ. इं, बड़ौदा, जिल्द ९, सं. ३, पृ. २६८-२७३, मार्च, १९६०, (२) जिल्द १०, सं. ४, पृ. ३४८-३५२, जून, १९६१, (३) जिल्द ११, सं. ४, पृ. ३२२-३२७, ४ जून, १९६२, (४) जिल्द १३, सं. ३, पृ. २०८-२१३, मार्च, १९६४।

७७. एस. एन. घोषाल : द एस्पिरेट एच ऑफ्टर द अनुस्वार एंड इट्स ट्रान्सफार्मेशन इन प्राकृत, जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ौदा, जिल्द १३, सं. ३, पृ. २१४-२१९, मार्च, १९६४।

७८. आर. एल. टर्नर : ए कम्पेरेटिव डिक्शनरी ऑव द इण्डो-आर्यन लैंग्वेजेज़, लन्दन, १९६२-६४।

७९. दलसुखभाई मालवणिआ : कुवलयमालाकथा अने तेनां संध्या वर्णनो (गुजराती में), स्वाध्याय, ओ. इं, बड़ौदा, जिल्द १, पृ. ५-११, १९६४।

८०. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह : चाचर-चर्चरी—एक अध्ययन, (गुजराती में), वहीं, पृ. २८-४८।

८१. हरिवल्लभ चू. भायाणी : प्रा. विगुत्त, गु. विगूत, विगूय वगेरे, (गुजराती में), वहीं, पृ. १२-१५।

८२. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : लैंग्वेजेज़ एंड डायलेक्ट्स यूज्ड इन द कुवलयमाला, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द १४, सं. ३-४, पृ. ३१७-३२५, मार्च-जून, १९६५।

८३. के. आर. नॉर्मन : मिडिल इण्डो-आर्यन स्टडीज़ (५), जिल्द १५, सं. २, पृ. ११३-११७, दिसम्बर, १९६५, (६) जिल्द १६, सं. २, पृ. ११३-११९, दिसम्बर, १९६६।

८४. डॉ. वासुदेवसिंह : अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद, शोधप्रबन्ध, प्रकाशित, वि. सं. २०२२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८५. एस. एन. घोषाल : द अपभ्रंश एलीमेन्ट्स इन द मृच्छकटिक, जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ौदा, जिल्द १६, सं. २, पृ. १२४-१३०, दिसम्बर, १९६६।
८६. एस. एन. घोषाल : द जेनेटिव इन द रोल ऑव द नॉन-जेनेटिव, जिल्द १६, सं. ४, पृ. २९६-३१४, जून, १९६७।
८७. भरतराम मेहता : स्वयंभू कृत अपभ्रंश रामायण (गुजराती में), बुद्धिप्रकाश, ११४, ७, पृ. २१०-२१४, जुलाई, १९६७।
८८. मुनिराज श्रीपुण्यविजय जी : केटलॉग ऑव संस्कृत एंड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स : श्री आ. देवसूरीज कलेक्शन एंड आ. क्षान्तिसूरीज कलेक्शन, चतुर्थ भाग, ला. द. शोध-संस्थान, अहमदाबाद, १९६८।
८९. एस. एन. घोषाल : द प्लूरल फॉर्म्स एज द बेसिस ऑव द स्टेम्स, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द १७, सं. ३, पृ. २४०-२४६, मार्च, १९६८।
९०. एच. सी. भायाणी : अबाउट द लैंग्वेज ऑव द शूद्रककथा, जर्नल ऑव द ओ. इं., बड़ौदा, जिल्द १८, सं. ४, जून, १९६९।
९१. एस. एन. घोपाल : द आर्ष प्राकृत एज हेमचन्द्र वियूड इट, वहीं, पृ. ३०४-३१४, जून, १९६९।
९२. के. आर. नार्मन : मिडिल इण्डो-आर्यन स्टडीज़ (७), जर्नल ऑव द ओ. इं. बड़ौदा, जिल्द १८, सं. ३, पृ. २२५-२३१, मार्च, १९६९।
९३. आर. एन. दांडेकर एंड ए. एम. घाटगे (सं.) : प्रोसीडिंग्स ऑव द सेमीनार इन प्राकृत स्टडीज़ (जून २३-२७, १९६९), पूना यूनिवर्सिटी, १९७०।
९४. डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' : अपभ्रंश-साहित्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९७०।
९५. डॉ. बालमुकुन्द : हिन्दी क्रिया : स्वरूप और विश्लेषण, आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी, १९७०।
९६. डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल : राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, पंचम भाग, जयपुर, १९७२।
९७. अगरचन्द नाहटा (सं.) : प्राचीन गुर्जर काव्यसंचय, १९७२।
९८. अगरचन्द नाहटा (सं.) : मरु-गुर्जर जैन कवि और उन की रचनाएँ, १९७२।
९९. मधुसूदन चिमनलाल मोदी (सं.) : श्री अमरकीर्ति विरचित 'षट्कर्मोपदेश', सटिप्पण सम्पादित, गायकवाड ओरियंटल सीरीज़, बड़ौदा से प्रकाशित, १९७२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

...हत्य

...भग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक-साहित्य का निर्माण

•

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

•

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi